सफल जीवन की दिशा धारा

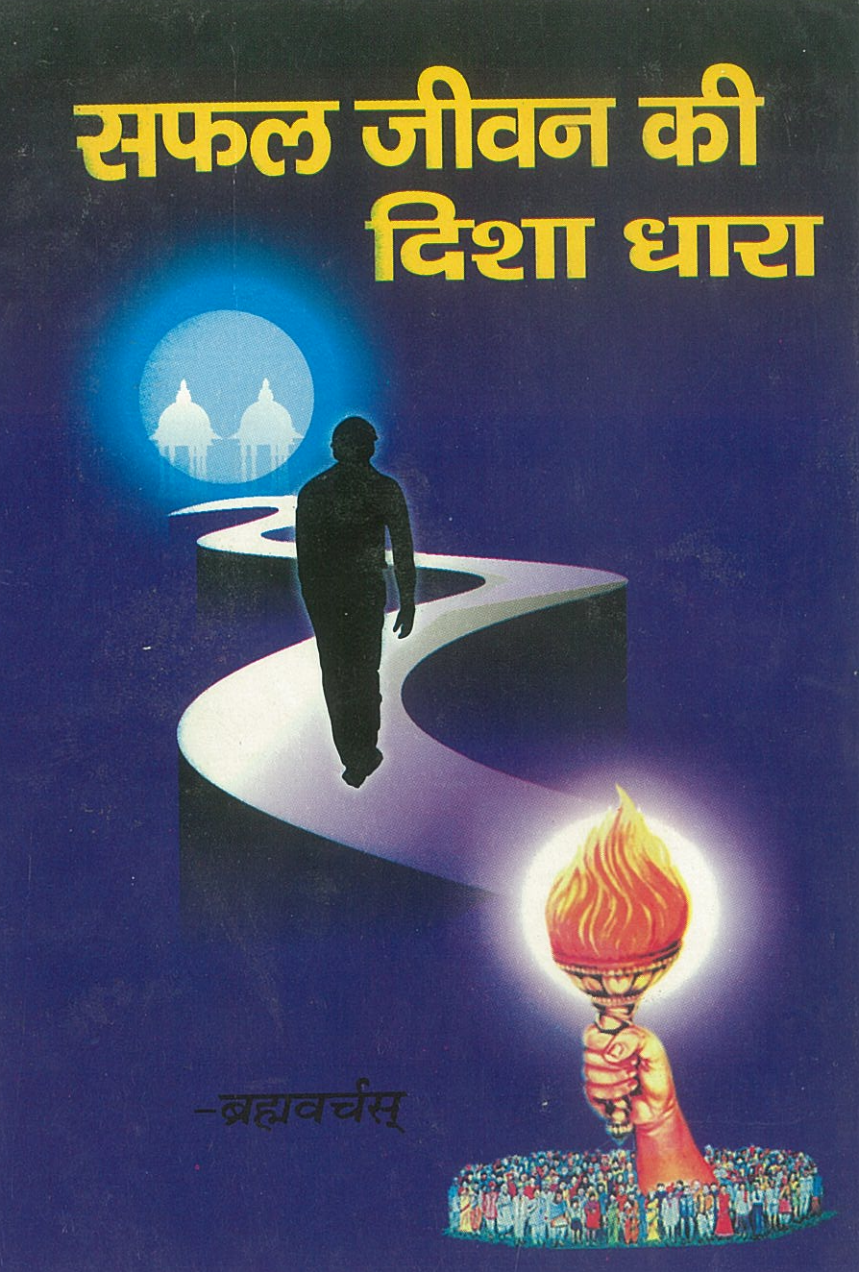

-ब्रह्मवर्चस्

सफल जीवन
की
दिशा धारा

(छात्र एवं युवा वर्ग के लिए अत्यंत उपयोगी,
अनुपम एवं संग्रहणीय ग्रंथ)

लेखक :
~~ब्रह्मवर्चस~~

गायत्री परिवार साहित्य विक्रय केन्द्र
४, तृप्ता सदन, शांता वाडी,
बांम्बे बाजार के पास की गल्ली,
जे. पी., रोड,अंधेरी (प.), मुंबई-58.
फोन:26250289/26245707,मो.:9820418659.

प्रकाशक :
युग निर्माण योजना
गायत्री तपोभूमि, मथुरा-३
फोन : (०५६५) ५३०१२८, ५३०३९९
फैक्स : ०५६५-५३०२००

२००८ मूल्य : ३४.०० रुपये

आत्म-निवेदन

शक्ति तो आखिर शक्ति ही है। उसका सदुपयोग हो जाए, विधेयात्मक कार्यों में लग जाए, उसका सकारात्मक नियोजन हो जाए तो निर्माण के क्षेत्र में चमत्कार दिखाई देने लगता है और यदि उसी शक्ति का दुरुपयोग हो जाए, वह निषेधात्मक कार्यों में लग जाए, उसका नकारात्मक नियोजन हो जाए, तो विध्वंस के क्षेत्र में हा-हाकार मचा सकती है। युवावस्था जीवन का वसंत काल है, ऊर्जा, शक्ति, उत्साह और उमंग से भरपूर जीवन, बचपन और वयस्कावस्था की संधि वेला। इस संधि काल में साधना करना ऋषियों ने अनिवार्य माना है। युवावस्था में यदि जीवन निर्माण का सही मार्गदर्शन मिल जाए तो जीवन के उपवन में अनेकानेक उपलब्धियों के पुष्प खिलते चले जाते हैं। इस अवस्था को भविष्य निर्माण की आधारशिला कहा जा सकता है। उपयुक्त दिशा निर्देशों के अभाव में, उपयुक्त मार्गदर्शन के अभाव में एवं उपयुक्त साथियों के अभाव में जीवन अनगढ़ बनता चला जाता है। भविष्य में जब युवावस्था की भूलों के परिणामस्वरूप जीवन श्रेष्ठ नहीं बन पाता तो भूलों का अहसास होता है, लेकिन तब तक गाड़ी छूट चुकी होती है। वयस्क होने तक बन चुकी आदतें पक चुकी होती हैं। अब उनमें कोई परिवर्तन करना अत्यंत कठिन होता है। जीवन के इस संधि काल को एक महत्त्वपूर्ण संस्कार-महोत्सव के रूप में मनाना चाहिए। इस

काल में उचित और श्रेष्ठ मार्गदर्शन का मिलना किसी के लिए भी सौभाग्य की बात हो सकती है। इसी उद्देश्य से इस पुस्तक का प्रकाशन आवश्यक समझा गया। व्यक्तित्व निर्माण के क्षेत्र में ऋषियों की शोधों के आधार पर उनकी प्रभावशाली कठोर साधना से उत्पन्न कल्याणकारी चिंतन को इस पुस्तक में सँजोया गया है। छात्र वर्ग एवं युवा वर्ग के लिए यह ग्रंथ उनके श्रेष्ठ व्यक्तित्व के निर्माण में संजीवनी का कार्य करेगा, उन्हें गलत मार्ग पर भटकने से रोकेगा। युवा वर्ग को इस ग्रंथ का स्वाध्याय सतत करते रहना चाहिए, ताकि उनका चिंतन उत्कृष्ट बना रहे। जैसा चिंतन होगा, वैसे कर्म होते चलेंगे और वैसा ही जीवन बनता चला जाएगा।

इस ग्रंथ के प्रकाशन में हमारी यही भावना और कामना है कि इस ग्रंथ के स्वाध्याय से श्रेष्ठ युवाओं का निर्माण होगा। वेदमूर्ति, तपोनिष्ठ, युगऋषि परमपूज्य गुरुदेव पं० श्रीराम शर्मा आचार्य जी की तपश्चर्या एवं उच्चस्तरीय साधनाओं की शक्ति से निःसृत चिंतन से युवा वर्ग लाभान्वित होगा ही, साथ ही उनके आशीर्वाद से युवाओं का जीवन श्रेष्ठ मार्ग पर चल पड़ेगा। युवा संगठनों को यह पुस्तक सभी छात्रों एवं युवाओं तक पहुँचाकर उन्हें स्वाध्याय हेतु प्रेरित करना चाहिए।

छात्रों एवं युवाओं के उज्ज्वल भविष्य की शुभकामनाओं के साथ.....

व्यवस्थापक

युग निर्माण योजना, मथुरा

अनुक्रमणिका

१.	विद्यार्थी जीवन	६
२.	जीवन लक्ष्य का निर्धारण	११
३.	सफलता की जननी संकल्प शक्ति	१७
४.	शक्तियों का सदुपयोग ही संयम	२८
५.	समय संपदा का सदुपयोग	३१
६.	अनुशासन और नियमितता	३८
७.	विचार शक्ति को परिष्कृत करें	४४
८.	स्वाध्याय में कभी प्रमाद न करें	५१
९.	इंद्रिय संयम से शक्ति भंडार बढ़ाइए	५८
१०.	ब्रह्मचर्य	६३
११.	साधन संपदा का सदुपयोग करें	६९
१२.	खरच करने से पहले सोचिए	७४
१३.	कर्म करो-कर्मयोगी बनो	७९
१४.	उन्नति के तीन गुण	८८
१५.	उन्नति के चार चरण	९७
१६.	अपना दृष्टिकोण सुधारें	१०३
१७.	गुण-कर्म-स्वभाव की श्रेष्ठता	१०९
१८.	सद्‌गुण बढ़ाएँ, सुसंस्कृत बनें	११४
१९.	शिष्टाचार अपनाएँ-सम्मान पाएँ	११८
२०.	आंतरिक दुर्बलताओं से लड़ पड़िए	१२८

२१. सफलता के पाँच सूत्र	१४६
२२. चरित्र-हमारी बहुमूल्य संपत्ति	१५४
२३. निश्चित फलदायी जीवन-साधना	१६०
२४. सर्वसुलभ साधना-सेवा	१६६
२५. विपत्तियों से डरिए नहीं, जूझिए	१७१
२६. शिक्षा ही नहीं विद्या भी	१८०
२७. वेशभूषा की शालीनता	१८४
२८. व्यसनों के पिशाच से बचें	१९१
२९. सच्चे मित्र बनें-बनाएँ	२१२
३०. पारिवारिकता, सामाजिकता एवं राष्ट्रीयता	२१६
३१. प्रतिभा संवर्द्धन हेतु निर्धारित विज्ञान सम्मत प्रयोग-उपचार	२२३
३२. स्व-संकेत साधना	२३१
३३. स्वस्थ रहें-मजबूत बनें	२३७
३४. प्रज्ञायोग-व्यायाम	२४६
३५. भारतीय संस्कृति का स्वरूप और उसकी विशेषताएँ	२६०
३६. मार्ग अनेक-मंजिल एक	२६५
३७. अपना मूल्यांकन भी करते रहें	२६९
३८. युग निर्माण सत्संकल्प	२७१

विद्यार्थी जीवन

(छात्र अपना भविष्य निर्माण आप करें)

विद्यार्थी जीवन, जीवन का सुनहरा काल है। Student life is the Golden period of life. कुछ सीखने, कुछ जानने, कुछ बनने का सतत सार्थक प्रयास इसी समय में होता है। एक विद्यार्थी के क्या लक्षण होते हैं, वह नीचे श्लोक में दिए हुए हैं।

काकचेष्टा वकोध्यानं श्वाननिद्रा तथैव च।
अल्पाहारी, गृहत्यागी विद्यार्थी पंचलक्षणम्॥

(१) काक (कौआ) चेष्टा–कौआ दूर आसमान में स्वच्छंद उड़ान भरते हुए भी अपनी तीव्र दृष्टि द्वारा जमीन पर पड़े किसी खाद्य पदार्थ को देख चपलतापूर्वक वहाँ पहुँच जाता है तथा अपना लक्ष्य प्राप्त कर लेता है। उसी प्रकार विद्यार्थी भी ज्ञान की प्राप्ति हेतु तीव्र जिज्ञासा रखे तथा अपने लक्ष्य को प्राप्त करता चले।

(२) वकोध्यानम्–बगुला तालाब या नदी के किनारे एक पैर पर खड़ा रहकर ध्यान मग्न रहता है। मछली आने पर तुरंत उन्हें अपना ग्रास बनाकर पुनः ध्यानस्थ हो जाता है। विद्यार्थी भी विद्या अध्ययन में लगा रहे तथा ज्ञान-विज्ञान की बातों को ग्रहण करते हुए निरंतर प्रगति पथ पर बढ़ता रहे।

(३) श्वान (कुत्ता) निद्रा–जैसे सोए हुए कुत्ते के पास से धीरे-से गुजरने पर भी वह जग जाता है, उसी प्रकार विद्यार्थी भी अपने जीवन-लक्ष्य को प्राप्त करने में सदैव सावधान व जागरूक रहे। उसकी नींद सात्विक है।

(४) अल्पाहारी–विद्यार्थी जीवन साधना एवं तपस्या का जीवन है। एक अध्ययनशील विद्यार्थी सदा सादा-सात्विक तथा अल्प भोजन लेने वाला होता है। तामसिक, राजसिक तथा अधिक आहार वाले विद्यार्थी की जीवनी-शक्ति का बड़ा भाग भोजन पचाने में, नींद, आलस्य तथा तन-मन की बीमारियों का सामना करने में खरच हो जाता है। विद्यार्थी जीवन की सफलता के लिए स्वास्थ्य के प्राकृतिक नियमों का पालन अति आवश्यक है।

(५) गृहत्यागी–एक आदर्श विद्यार्थी विद्यार्जन हेतु गृह-त्याग में संतोष करता। विद्या प्राप्त करना तप करने जैसा है, न कि मौज-मस्ती करना। सुखों का त्याग आवश्यक है।

एक लड़का सड़क के लैंप के सहारे पढ़ रहा था। एक परिचित ने कहा–''इतना कष्ट उठाने से तो नौकरी कर लो।'' विद्यार्थी बोला–''महोदय! आप नहीं जानते, यह मेरी साधना का, कसौटी का समय है। कठिनाई है तो क्या, बौद्धिक क्षमताएँ अब न बढ़ाई गईं तो फिर ऐसा अवसर कब मिलेगा?'' इस तरह का उत्तर देने वाले महान शिक्षा शास्त्री ईश्वरचंद्र विद्यासागर थे।

प्रत्येक छात्र को यह अनुभव करना चाहिए कि वह एक ऐसी अवधि में होकर गुजर रहा है, जो उसके भाग्य और भविष्य निर्माण करने की निर्णायक भूमिका अदा करेगी। व्यक्ति की सारी गरिमा उसके गुण-कर्म-स्वभाव पर निर्भर है। क्या बाह्य क्या आंतरिक दोनों ही क्षेत्रों की प्रगति इस बात पर निर्भर है कि किसी का व्यक्तित्व किस स्तर का है। धन, विद्या, सम्मान, पद, स्वास्थ्य, मित्रता सिर्फ उन्हीं को मिलती है, जिन्होंने अपना व्यक्तित्व, गुण, कर्म, स्वभाव सही ढंग से ढाला और विनिर्मित किया है।

इन्हीं दिनों श्रेष्ठ विचार, सद्भावनाओं एवं सत्प्रवृत्तियों का अभ्यास किया जाता रहे तो उसका प्रभाव जीवनभर बना रहता है और सुख-शांति की संभावनाएँ साकार होती हैं। इन्हीं दिनों में जोश अधिक होश कम रहने के कारण अवांछनीय प्रवृत्तियों में

अधिक आकर्षण-मनोरंजन महसूस होता है और मनोवृत्तियाँ पानी की तरह नीचे की ओर शीघ्र ही गिर जाती हैं और जीवनभर पीछा नहीं छोड़तीं। कहना न होगा कि ऐसा व्यक्ति शोक-संताप भरी परिस्थितियाँ उत्पन्न करता हुआ अभिशाप जैसा नारकीय जीवन जीता है।

इन्हीं दिनों मित्रों का आकर्षण अपनी चरमसीमा पर रहता है। अच्छे साथी मिले तो विकास एवं प्रसन्नता की वृद्धि में सहायता ही मिलती है। हर समझदार छात्र का कर्त्तव्य है कि मित्रता से पूर्व हजार बार सोचे। कहीं मित्रता के बहाने उसे आवारागर्दी की ओर तो घसीटा नहीं जा रहा है, जिससे वे शिक्षा से वंचित रह जाएँ, स्वास्थ्य खो दें, स्वभाव बिगाड़ लें और सम्मान तथा विश्वास गँवा बैठें। कुसंग से बहुत सावधान रहें। सच्चरित्र मित्रों, श्रेष्ठ पुस्तकों और सर्वशक्तिमान परमात्मा का ही संग करें। सद्विचारों की नोटबुक बनाएँ। जब भी कोई अच्छी बात पढ़ें, सुनें तो नोट करें। समय-समय पर दोहराएँ। आदर्श व्यक्तियों का, महापुरुषों का ध्यान व उनके चरित्र का चिंतन-मनन करें।

एरिस्ट्रायस की धार्मिक विषयों में बड़ी रुचि थी, अतएव उसके आग्रह पर उसके पिता ने उसे जीनो की पाठशाला भेज दिया। जब वह लौटा, तो पिता ने पूछा-"वहाँ क्या सीखा?" उसने उत्तर दिया-"बाद में ज्ञात हो जाएगा।" एक दिन किसी बात पर रुष्ट होकर पिता ने उसे खूब पीटा। उसने कोई प्रतिवाद नहीं किया, न कोई उत्तर दिया। पिटने के बाद फिर से दत्तचित्त हो अपने काम में लग गया। न आत्महत्या की धमकी दी, न घर से भागने की। पिता का हृदय भर आया। उसने पुत्र से क्षमा माँगी, तब पुत्र एरिट्रायस ने कहा-"पिताजी! मुझे मेरे गुरु ने नैतिकता, सदाचार, सहिष्णुता और ध्येय-निष्ठा सिखाई है। मैंने उसी का पालन किया।" पिता का हृदय ऐसे शिक्षक के प्रति कृतज्ञता से भर गया।

स्वास्थ्य संरक्षण के लिए यही समय सबसे अधिक उपयुक्त है। प्राकृतिक नियमों, आहार-विहार, सोने-जागने आदि का यदि ठीक ध्यान रखा जाए तो तंदुरुस्ती ऐसी बन जाएगी जो जीवनभर साथ दे। स्वास्थ्य जीवन की सबसे पहली आवश्यकता है। एक स्वस्थ व्यक्ति ही जीवन का आनंद ले सकता है, त्याग, तपस्या, मेहनत कर सकता है। इन दिनों ब्रह्मचर्य और सद्विचारों के बारे में पूरी सतर्कता रखी जाए और अश्लील परिस्थिति से ऐसे बचा जाए जैसे साँप, बिच्छू, आग, जहर से बचा जाता है। गंदी फिल्म, गंदे गाने, गंदे उपन्यास, गंदे चित्र, गंदे विचार घिनौने कार्यों की प्रेरणा देते हैं और शरीर और मस्तिष्क को खोखला कर देते हैं।

साहस अच्छा गुण है। अनीति का प्रतिरोध करने की हिम्मत भी होनी चाहिए। सृजन और विकास की संभावनाएँ सज्जनोचित प्रवृत्तियों में सन्निहित हैं। अवज्ञा, उच्छृंखलता, अशिष्टता, अनुशासनहीनता, मर्यादाओं एवं नागरिक कर्त्तव्यों का उल्लंघन साहसिकता की भयंकर विकृतियाँ हैं, जिससे दूसरों को चोट तो पहुँचती ही है, अपना स्वभाव भी निकृष्ट बन जाता है।

अधिकतर अकुशल छात्र ही अनुशासनहीन हुआ करते हैं। पढ़ने-लिखने में उनका मन नहीं लगता। अच्छे विद्यार्थी के लक्षणों से रहित होने से गुरुजनों के प्रति श्रद्धा नहीं होती। श्रेणी, श्रेय अथवा सराहना के योग्य नहीं होते। आगामी जीवन के उत्तरदायित्व से अनविज्ञ रहते हैं, जीवन का कोई विशेष लक्ष्य नहीं होता। इसी प्रकार की मानसिक शून्यताओं से जन्मी हीनभावना को दबाने के लिए अकुशल एवं अयोग्य छात्र अनुशासनहीनता को शान समझने लगते हैं। ऐसे विद्यार्थी विद्या प्राप्त करने के लिए विद्यालयों, महाविद्यालयों, विश्वविद्यालयों में पढ़ने नहीं आते, बल्कि कॉलेज जीवन की फैशन-परस्ती में अपना जीवन तथा अभिभावकों का पैसा बरबाद करने के लिए आया करते हैं। जिन विद्यार्थियों के

लक्षण पढ़ने के होते हैं, वे पढ़ाई के सिवाय बेकार की खुराफातों में नहीं पड़ते।

पिता इतना गरीब था कि बच्चे की फीस चुकाना भी मुश्किल और लड़का इतना लगनशील और परिश्रमी कि स्कूल में पढ़ने के साथ उसने क्लर्क की नौकरी भी कर ली। प्रतिमाह सात रुपए बचाया भी। टोरंटो (कनाडा) के नाई परिवार में जन्मा टाक्सन नामक यही लड़का अपनी लगन, दृढ़ निश्चय और परिश्रम के कारण १२८ समाचार पत्रों एवं पत्रिकाओं, १५ रेडियो व टेलीविजन स्टेशनों, १५० व्यापारिक तकनीकी पत्रिकाओं, दो प्रकाशन संस्थाओं, दो यात्रा ऐजेंसियों का मालिक बना।

आत्मनिर्भरता, दूसरों की सहायता, धर्म का सदुपयोग, समय का सुनियोजन एवं सदुपयोग, मानसिक संतुलन, सत्साहित्य का स्वाध्याय, कठिन परिश्रम, दृढ़ संकल्प, स्वच्छता, सुव्यवस्था, सुसंगति, सकारात्मक विचार, स्वस्थ जीवन, शालीनता, सज्जनता, हँसमुख, शिष्ट एवं विनम्र व्यवहार युवावस्था को अलंकृत करने वाले सद्गुण हैं। अर्थ उपार्जन का अभ्यास नवयुवक यदि करने लगें तो उनके भीतर ऐसी विशेषताएँ उगती चली जाएँगी, जिनके द्वारा उनका भविष्य स्वर्णिम और शानदार बन जाएगा।

कुकर्मी से बढ़कर अभागा कोई नहीं, क्योंकि विपत्ति में उसका कोई साथी नहीं रहता।

जीवन-लक्ष्य का निर्धारण

जीवनयापन और जीवन-लक्ष्य दो भिन्न बातें हैं। प्रायः सामान्य लोगों का जीवन-लक्ष्य जीवनयापन ही रहता है। खाना-कमाना, ब्याह-शादी, लेन-देन, व्यवहार-व्यापार आदि साधारण क्रमों को पूरा करते हुए मृत्यु तक पहुँच जाना, बस इसके अतिरिक्त उनका और कोई लक्ष्य नहीं होता। एक जीविका का साधन जुटा लेना, एक परिवार बसा लेना और बच्चों का पालन-पोषण करते हुए शादी-ब्याह आदि कर देना मात्र ही साधारणतया लोगों ने जीवन-लक्ष्य मान लिया है।

मीठे फल खाने की इच्छा से दो मित्र एक बगीचे में गए। माली ने कहा-"इस बगीचे के मालिक की आज्ञानुसार यहाँ एक ही दिन ठहर सकते हो, सो शाम तक जितने फल खा सकते हो, खा लो।" दोनों अपनी रुचि के फल खाने चल दिए। एक ने पेट भरकर फल खाए। दूसरा देखता रहा, पौधों के लिए कैसी मिट्टी चाहिए? पानी कैसे लगाया जाए? शाम तक उसने एक नया बगीचा लगाने की सारी बातें जान लीं, फल एक भी नहीं खाया। घर जाकर दूसरा बाग लगा लिया।

यह संसार भी ऐसा ही है। मनुष्य यहाँ एक निश्चित अवधि के लिए आता है, जो सांसारिक आकर्षणों में पड़े हैं, वे तो पहले युवक की भाँति हैं। समझदार वे हैं, जो दूसरे की तरह परिस्थितियों का अध्ययन कर जीवन का सच्चा लक्ष्य प्राप्त करते हैं।

वस्तुतः यह जीवनयापन की साधारण प्रक्रिया मात्र है, जीवन-लक्ष्य नहीं। जीवन-लक्ष्य उस सुनिश्चित विचार को ही कहा जाएगा,

जो संसार के साधारण कार्यक्रम से कुछ अलग, कुछ ऊँचा हो और जिसे पूरा करने में कुछ अतिरिक्त पुरुषार्थ करना पड़े।

जीवन में कोई सुनिश्चित लक्ष्य, कुछ विशेष ध्येय-धारणा करके चलने वाले को असाधारण व्यक्तियों की कोटि में रखा जाता है। उनकी विशेषता तथा महानता केवल यही होती है कि परंपरा से हटकर साधारण जीवन के अभ्यस्त व्यक्तियों में से उन्होंने आगे बढ़कर, कुछ असामान्यता ग्रहण की है। लोग उनको महान इसलिए मान लेते हैं कि सामान्य लोग समझी-बूझी तथा एक ही लीक पर चली जा रही जीवन गाड़ी में न जाने कितनी दु:ख-तकलीफें अनुभव करते हैं, तब उस व्यक्ति ने एक अन्य, अनजान एवं असामान्य मार्ग चुना है। उसका साहस एवं कष्ट-सहिष्णुता कुछ अधिक बढ़ी-चढ़ी है।

जीवनयापन की साधारण प्रक्रिया को भी यदि एक असामान्य दृष्टिकोण से लेकर चला जाए तो वह भी एक प्रकार का जीवन-लक्ष्य बन जाता है। इस साधारण प्रक्रिया का असाधारणत्व केवल यही हो सकता है कि जीवन इस प्रकार से बिताया जाए, जिसमें मनुष्य पतन के गर्त में न गिरकर एक आदर्श जीवन बिताता हुआ उसकी परिसमाप्ति तक पहुँच जाए, जिसमें जीवन को आहों, आँसुओं तथा विषादों से मुक्त करके हास, उल्लास, हर्ष, विनोद तथा उत्साह के साथ बिता लिया है। इसमें भी मानो सफल जीवनयापन का एक लक्ष्य ही प्राप्त कर लिया है। जिसने संतोषपूर्वक हँसते हुए जीवन परिधि के बाहर पैर रखा है, उसका जीवन सफल ही माना जाएगा। इसके विपरीत जिसने जीवन-परिधि को रोते, बिलखते, तड़पते तथा तरसते हुए पार किया, मानो उसका जीवन असफल ही हुआ।

जीवन की सुंदरता बाहरी वैभव (ऊँची कोठी, सजे कमरे, सुंदर वस्त्र, परिपूर्ण तिजोरियाँ और रूप-रंग से भरी रंगरेलियाँ) में नहीं, मनुष्य के आंतरिक संसार में हुआ करती है। जिसके गुण-कर्म-स्वभाव जितने ही सात्विक और सुरुचिपूर्ण होंगे , उसका

जीवन उतना ही प्रसन्न, उतना ही सुंदर होगा। जो अविचारी, व्यभिचारी अथवा अवगुणी है, वह कितना ही धनवान, शान-शौकत वाला, सुंदर शरीर और रहन-सहन वाला क्यों न हो, सुंदर जीवन की परिधि में नहीं आ सकता। इसके विपरीत जो सामान्य स्थिति का है, गरीब है, सुंदर शरीर वाला भी नहीं है, परंतु शिष्ट, सभ्य, सुशील, संतुष्ट और शांत है तो वह अधिक सुंदर जीवन वाला कहा जाएगा। जीवन की सफलता का प्रमाण जहाँ किसी के कार्य और कर्तृत्व से दिया जाता है, वहाँ उसकी अंतिम श्वास में सन्निहित शांति एवं संतोष की मात्रा भी इसका एक सुंदर प्रमाण है।

जीवन में सफलता प्राप्त करने के लिए प्रत्येक व्यक्ति का अपना एक लक्ष्य, एक उद्देश्य होना आवश्यक है। सबसे पहले अपने जीवन में लक्ष्य का, उद्देश्य का निर्धारण करो। जीवन में क्या बनना चाहते हो, क्या करना चाहते हो? फिर इस लक्ष्य को पाने के लिए दृढ़ संकल्प के साथ जुट जाओ। मन में यह पक्का विश्वास लेकर चलो कि सफलता मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है। निरंतर लक्ष्य की प्राप्ति की धुन सवार रहे।

युवा उम्र के इस स्वर्णिम दौर को व्यर्थ न जाने दें। अपने लक्ष्य को महान सामाजिक उद्देश्यों से जोड़ें। लक्ष्य सबके लिए कल्याणकारी हो। बस फिर यह ध्यान रहे कि तमाम व्यवधानों के बावजूद मंजिल पानी है। समय निकल जाने पर पश्चात्ताप के सिवाय कुछ नहीं बचता है।

किसी भी कार्य की सफलता के लिए लगन, निष्ठा, कड़ी मेहनत, दूरदृष्टि, पक्का इरादा और अनुशासन आवश्यक है। जब मनुष्य की सारी शक्तियाँ विचारों की, समय की, शरीर की, साधन की एक ही लक्ष्य की ओर लग जाती हैं, तो फिर सफलता प्राप्ति में संदेह नहीं रहता। अपनी शक्ति को पहचानें। अपने लक्ष्य को चुनौती के रूप में स्वीकार करें। संकल्प करें, मैं अपने लक्ष्य को अवश्य प्राप्त करूँगा, कर सकता हूँ। दृढ़ संकल्प के आगे कोई

विघ्नबाधा, कठिनाई टिक नहीं सकती। अपने लक्ष्य की प्राप्ति हेतु सदा जूझते रहो, जूझते रहो, जूझते रहो, कभी हिम्मत न हारो।

सच्ची लगन और निरंतर प्रयत्न यही दो महान साधनाएँ हैं, जिनसे शक्ति को प्रसन्न करके उनसे इच्छित वरदान प्राप्त किया जा सकता है। आपने जो भी अपना कार्यक्रम बनाया हो, जो भी जीवनोद्देश्य बनाया हो, उसे पूरा करने में जी-जान से योजनापूर्वक जुट जाइए। सोते-जागते उसी के संबंध में सोच-विचार करते रहिए और आगे का रास्ता तलाश करते रहिए। परिश्रम! परिश्रम!! घोर परिश्रम!!! आदत में होना चाहिए। मत सोचिए कि अधिक काम करने से आप थक जाएँगे। वास्तव में परिश्रम एक स्वचालित शक्ति है, अपनी बढ़ती हुई गति के साथ कार्यक्षमता उत्पन्न कर लेती है। उदासीन, आलसी और निकम्मा व्यक्ति दो घंटा काम करके एक पर्वत पार कर लेने की थकान अनुभव करता है, किंतु उत्साही, परिश्रमी और अपने कार्य में दिलचस्पी लेने वाले व्यक्ति सोने के समय को छोड़कर अन्य सारे समय लगे रहते हैं और जरा भी नहीं थकते। सच्ची लगन, दिलचस्पी, रुचि और झुकाव एक प्रकार का डायनुमा है, जो काम करने के लिए क्षमता की विद्युत शक्ति हर घड़ी उत्पन्न करता रहता है।

स्मरण रखिए कि आपका कोई भी मनोरथ, उद्देश्य क्यों न हो, आपकी अपनी शक्ति द्वारा ही पूरा हो सकता है। इधर-उधर बगलें झाँकने से कुछ नहीं होगा। दूसरों पर भरोसा किया तो निराशा ही हाथ लगेगी। अपने उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए अपने पाँवों पर खड़े होइए। अपने कार्य में सच्ची लगन और दिलचस्पी पैदा कीजिए एवं मशीन की तरह जी-तोड़ परिश्रम के साथ काम में जुट जाइए। अधीर मत होइए। शक्ति आपके साहस की बार-बार परीक्षा लेगी, बार-बार असफलता और निराशा की अग्नि में तपाएगी तथा असली-नकली की जाँच करेगी। यदि आप कष्ट, कठिनाई, असफलता, निराशा, विलंब आदि की परीक्षाओं में उत्तीर्ण हुए तो

वह प्रसन्न होकर प्रकट होगी और इच्छित वरदान ही नहीं, वरन उससे भी कई गुना अधिक फल प्रदान करेगी।

बहुत से व्यक्ति जो अपने को स्वभाव से ही निर्बल और सामर्थ्यहीन समझ लेते हैं, सहज ही विश्वास कर ही नहीं सकते कि परिश्रम से हम महान शक्तिशाली हो सकते हैं। वे अपनी वर्तमान दुर्बल अवस्था को देख यही विचार करते हैं कि हम तो सदा इसी प्रकार दीन-हीन एवं दबे हुए रहने को ही उत्पन्न हुए हैं। पर यह सब भ्रमजनित धारणा है। प्रत्येक व्यक्ति के भीतर एक ऐसा शक्ति केंद्र मौजूद है, जो उसे इच्छानुसार ऊँचे स्थान पर पहुँचा सकता है। प्रत्येक व्यक्ति में आत्मा की अनंत और अपार शक्ति विद्यमान है। अपनी शक्ति के प्रवाह का समुचित प्रयोग करना ही पुरुषार्थ है। शक्ति की कहीं किसी से भीख नहीं माँगनी है, वह तो सबको स्वत: प्राप्त है, किंतु जब तक ज्ञान एवं विवेक उदय नहीं होता, तब तक निरर्थक कार्य, निरर्थक विचार एवं ङ्क्चतन-मनन द्वारा इसका दुरुपयोग होता रहता है। हम सबको ध्यान देकर निरीक्षण करते रहना चाहिए कि शक्ति का किसी भी क्रिया, चेष्टा, भाव एवं विचार के द्वारा दुरुपयोग हो रहा है या सदुपयोग। इस प्रकार हम अपनी प्राप्त शक्ति की अधिकाधिक वृद्धि कर सकते हैं। शुद्ध सात्विक आहार और इंद्रिय संयम से शारीरिक उन्नति होती है, सद्व्यवहार एवं सद्गुण विकास से मानसिक उन्नति होती है, स्वाध्याय के द्वारा प्राप्त ज्ञान से बौद्धिक उन्नति होती है। प्रत्येक क्षेत्र में शक्ति की प्राप्ति एवं निर्बलता का अभाव ही मानवी-उत्थान के लिए आवश्यक है। जब हम भय की जगह निर्भय होकर प्रत्येक कठिनाई को परास्त करने में समर्थ हो जाएँ, अपने लक्ष्य की ओर बढ़ते ही चले जाएँ तथा जब हमें सदा शक्ति की महती कृपा अनुभव होने लगे, तब हम शक्ति का सदुपयोग करने वाले व्यक्ति के रूप में अपने आपको पाकर धन्य हो जाएँगे।

एक बार, दो बार नहीं, हजार बार इस बात को गिरह बाँध लीजिए कि शक्ति के बिना सफलता नहीं मिलती। अपने उद्देश्य को प्राप्त करना चाहते हैं तो उठिए, अपनी शक्तियों को बढ़ाइए, अपने अंदर लगन, कर्मण्यता और आत्मविश्वास पैदा कीजिए। हमेशा अनुभव करते रहें कि मैंने अपने सिर पर लक्ष्य प्राप्ति का कफन बाँधा हुआ है और इसके मार्ग में आने वाली हर विघ्न व बाधा का सामना करने के लिए अपनी कमर कस ली है। अब संसार की कोई शक्ति मुझे लक्ष्य प्राप्ति से रोक नहीं सकती। ऐसे दृढ़ संकल्प के साथ आगे बढ़ने पर आप पाएँगे कि कदम-कदम पर सफलता परछाईं की तरह आपके साथ है। जब आप अपनी सहायता खुद करेंगे तो ईश्वर भी आपकी सहायता करने के लिए दौड़ा-दौड़ा आएगा।

गारफील्ड स्कूली पढ़ाई के साथ पुस्तकालय में नौकरी भी करता और ज्ञानवर्द्धक साहित्य भी पढ़ता। युवा होते-होते ग्रेजुएट बन गया और दूसरी अच्छी नौकरी भी मिल गई। बचे हुए समय में वह समाज सेवा के अनेक कार्य करता। उसके स्वभाव और चरित्र से उस क्षेत्र के लोग परिचित हो गए थे। प्रगति पथ की अनेक मंजिलें पार करते हुए गारफील्ड अमेरिका की राज्य सभा का सदस्य चुना गया। अगले चुनाव में राष्ट्रपति पद मिला। यह सफलता उसे अपनी योग्यता और सेवा-साधना के बलबूते उपलब्ध हुई थी।

यह पथ हर व्यक्ति के लिए खुला हुआ है। जो किसी की प्रतीक्षा न कर स्वयं पुरुषार्थ में संलग्न होते हैं, वे अपनी संकल्प शक्ति से लक्ष्य को प्राप्त करके रहते हैं।

अच्छी पुस्तकें जीवंत देव प्रतिमाएँ हैं। उनकी आराधना से तत्काल प्रकाश और उल्लास मिलता है।

सफलता की जननी संकल्प शक्ति

'यह मेरा संकल्प है।' इसका अर्थ है कि अब मैं इस कार्य में प्राण, मन और समग्र शक्ति के साथ संलग्न हो रहा हूँ। इस प्रकार की विचारणा-दृढ़ता ही सफलता की जननी है। संकल्प तप का, क्रियाशक्ति का विधायक है। इसी में अनेक सिद्धियाँ और वरदान समाहित हैं।

जिन विचारों का मनोभूमि में स्थाई प्रभाव पड़ता है और जिनसे अंत:करण में अमिट छाप पड़ती है, वे पुनरावृत्ति के कारण स्वभाव के एक अंग बन जाते हैं। ऐसे विचारों का अपना एक विशेष महत्त्व होता है। इन विचारों को क्रमबद्ध रीति से सजाने की क्रिया जिन्हें ज्ञात होती है, वे अपना भाग्य, दृष्टिकोण और वातावरण परिवर्तित कर सकते हैं और इस परिवर्तन के फलस्वरूप जीवन में कोई विशेष दृश्य या स्थिति उत्पन्न कर सकते हैं।

आवश्यकता को आविष्कार की जननी कहा जाता है। जब किसी बात की तीव्र इच्छा होती है, तो उसे पूर्ण करने के लिए साधनों की तलाश आरंभ होती है, अत: कोई-न-कोई उपाय भी निकल ही आता है। वह इच्छा यदि प्रेरक है, उसे पूरा करने की भूख यदि भीतर से उठी है और उसके पीछे प्राण और जीवन लगा हुआ है कि ''मैं इस वस्तु को प्राप्त करके रहूँगा, चाहे कितनी ही बाधाएँ क्यों न आएँ। प्रयत्न निरंतर जारी रखूँगा, चाहे कितने ही निराश करने वाले अवसर क्यों न आएँ'' इस प्रकार के संकल्प की यदि मन में गहरी और सुदृढ़ स्थापना हो जाए तो लक्ष्य तक पहुँचना बहुत सरल हो जाता है। दूसरे के लिए कठिन जान

पड़ने वाला कार्य भी संकल्पवान के लिए सामान्य क्रिया से अधिक नहीं रह जाता।

बराबर आगे बढ़ते रहने के लिए बराबर नई शक्ति प्राप्त करते रहना भी आवश्यक है। उन्नति का क्रम टूटना नहीं चाहिए, आगे बढ़ने से रुकना या हिचकिचाना नहीं चाहिए, पर यह तभी संभव है, जब हमारा संकल्प, हमारा उद्देश्य अटूट साहस, श्रद्धा एवं शक्ति से ओत-प्रोत हो। आधे मन से, उदासीन होकर कार्य करने वाला फूहड़ कहा जाता है। उसे कोई विशेष सफलता मिल ही नहीं पाती।

''अगर मुझे अमुक सुविधाएँ मिलतीं तो मैं ऐसा करता।'' इस प्रकार कोरी कल्पनाएँ गढ़ने वाले आत्मप्रवंचना किया करते हैं। भाग्य दूसरों के सहारे विकसित नहीं होता। आपका भार ढोने के लिए संसार में कोई दूसरा तैयार न होगा। हम यह यात्रा अपने पैरों से ही पूरी कर सकते हैं। दूसरे का अवलंबन लेंगे तो हमारा जीवन कठिन हो जाएगा। हमारे भीतर जो एक महान चेतना कार्य कर रही है, उसकी शक्ति अनंत है। उसका आश्रय ग्रहण करें तो प्रत्यक्ष आत्मविश्वास जाग जाएगा। तब तुम दूसरों के भरोसे भी नहीं रहोगे। संकल्प का दूसरा रूप है-आत्मविश्वास। वह जाग्रत हो जाए तो अपना विकास तेजी से अपने आप पूरा कर सकेंगे। आज हम जैसे कुछ हैं, अपने जीवन को जिस स्थिति में रखे हुए हैं, अपने निजी विचारों के परिणाम हैं। जैसे विचार होंगे, भविष्य का निर्माण भी उसी तरह ही होगा।

अन्यमनस्कता, उदासीनता और मुर्दादिली को छोड़कर ऊँचे उठने की कल्पना मन:क्षेत्र को सतेज करती है। इससे साहस, शौर्य, कर्मठता, उत्पादन शक्ति, निपुणता आदि गुणों का आविर्भाव होता है। इन गुणों में शक्तियों का वह स्रोत छिपा हुआ है, जिससे संतोष, सुख और आनंद का प्रतिक्षण रसास्वादन किया जा सकता है। निकृष्टता मनुष्यों में दुर्गुण पैदा करती है, जिससे चारों ओर से कष्ट और क्लेश के परिणाम ही दिखाई दे सकते हैं। संकल्प को इसीलिए

जीवन की उत्कृष्टता का मंत्र समझना चाहिए। उसका प्रयोग मनुष्य जीवन के गुणों के विकास के लिए होना चाहिए।

अपने को असमर्थ, अशक्त एवं असहाय मत समझिए। ''साधनों के अभाव में किस प्रकार आगे बढ़ सकेंगे'' ऐसे कमजोर विचारों का परित्याग कर दीजिए। स्मरण रखिए शक्ति का स्रोत साधनों में नहीं संकल्प में है। यदि उन्नति करने की, आगे बढ़ने की इच्छाएँ तीव्र हो रही होंगी तो आपको जिन साधनों का आज अभाव दिखलाई पड़ता है, कल वे निश्चय ही दूर हुए दिखाई देंगे। दृढ़ संकल्प से स्वल्प साधनों में भी मनुष्य अधिकतम विकास कर सकता है और मस्ती का जीवन बिता सकता है। दीपक कब कहता है कि वह दस किलो मिट्टी का बना होता और उसमें दस किलो तेल होता तो सबको प्रकाश देता। अपने सीमित साधनों से ही प्रकाश देने लगता है।

उन्नति की आकांक्षा रखना मनुष्य का स्वाभाविक गुण है। उसे आगे बढ़ना भी चाहिए, पर यह तभी संभव है, जब मनुष्य का संकल्प बल जाग्रत हो। संकल्प के द्वारा प्रत्येक मनुष्य सफलता प्राप्त कर सकता है। एक व्यक्ति था जो अपनी पत्नी द्वारा 'महामूर्ख' कहा गया, बुरी तरह तिरस्कृत और लांछित हुआ। बात उसके गुप्त मन में लग गई। उसे बड़ा बुरा लगा। उसने पत्नी को छोड़ा और बड़ी आयु में विद्या अध्ययन में लग गया। दीर्घकाल के अभ्यास और अटल संकल्प के बल से वह संस्कृत का महाकवि कालिदास बना। समग्र भारत उसकी प्रतिभा और विद्या से चमत्कृत हो उठा। उसके गुप्त मन में काव्यशक्ति का वृहद भंडार छिपा हुआ था।

एक डाकू था, जिसकी जीविका का उपार्जन मुसाफिरों को लूटने और हत्याएँ करने से चलता था। एक दिन एक मुनि उसकी पकड़ में आ गए। उसने उन्हें भी मारना चाहा, पर उन्होंने विनीत भाव से उससे कहा–''जिन व्यक्तियों के पालने

के लिए तुम इतने व्यक्तियों की हत्या का पाप अपने ऊपर ले रहे हो, क्या वे तुम्हारे इस पाप में हिस्सेदार बनेंगे? जाओ और अपने परिवार वालों से पूछो।'' डाकू चला गया। उसने यह बात पूछी, लेकिन उनका उत्तर सुनते ही उसका चेहरा उतर गया। उनका उत्तर था–''हम तुम्हारे आश्रित हैं। पाप-पुण्य से हमें क्या प्रयोजन?'' उसे ज्ञान हुआ। वह बदलकर महर्षि वाल्मीकि बन गया। उसकी गुप्त शक्तियाँ यकायक खुल गईं। उन्होंने संसार को अपनी बुद्धि से चमत्कृत कर दिया। इसी प्रकार न जाने कितने महान पुरुष हुए हैं, जिन्हें किसी मानसिक आघात लगने से अपने गुप्त मन में सोई पड़ी गुप्त शक्तियों का ज्ञान हुआ, उनका जीवन पृष्ठ बदला और वे अपने गुणों से संसार को चमत्कृत-विस्मित कर गए।

आप में भी असाधारण गुप्त शक्तियों का, मन, शरीर, आत्मा की असंख्य शक्तियों का भंडार छिपा हुआ है। खेद है कि आप अपने को साधारण प्राणि मानते हैं। आप कभी भी ऐसा विचार नहीं करें कि हम में कहाँ दिव्य और आश्चर्यमयी शक्तियाँ छिपी पड़ी होंगी। सच मानिए, आप शक्तियों का वृहद् भंडार हैं। घोड़ों को यदि शारीरिक शक्ति का ज्ञान हो जाए तो वे हमारे वाहन न रहें। हाथी अपनी शारीरिक ताकत से विश्व को अपने वश में ही कर लें। शेर, चीता, रीछ, भैंसे, बैल, खच्चर इत्यादि पशुओं को अपनी शक्तियों का ज्ञान हो जाए तो हम पर राज्य ही करने लगें। यदि हमें अपनी शक्तियों का ज्ञान हो जाए तो हमें दुःख, भय, चिंता, आपत्ति, शोक, द्वेष आदि का बिलकुल भी भान न हो। ये दुष्ट मनोविकार हमारा कभी भी कुछ न बिगाड़ सकें। हमारे स्वास्थ्य, मन और जीवन पर इनका कोई भी बुरा प्रभाव न हो। खेद है कि हम इन दुष्टों के आसानी से वश में आ जाते हैं और अपना सर्वनाश कर लेते हैं।

वास्तविक कमजोरी यह है कि अभी हमें स्वयं अपने ऊपर विश्वास नहीं है। हम दूसरों को धनवान और शान-शौकत

से रहते देख उन्हें सुखी समझते हैं, पर यदि हम उन्हें अंदर से देखें, तो हमारे विचार बदल जाएँ। आप पूछेंगे कि लोगों के पास बहुत-सा धन है, सुख है, इतना वैभव, बड़प्पन और अधिकार है, फिर भी दु:ख कैसे? उस पर ईश्वर की बड़ी कृपा है, पर हम पर प्रकोप या ईश्वर की अकृपा कैसे? हमारे पास ऐश्वर्य के साधन नहीं हैं, उनके बिना हम दु:खी हैं और उनके पास सब साधन हैं, इसलिए वे सुखी हैं। यह आपका केवल भ्रम है। ईश्वर का इसमें कोई पक्षपात नहीं है। ईश्वरीय शक्तियाँ, विपुल ताकतों, मानसिक- शारीरिक-आत्मिक संपदाओं का जो अंश उनमें है, वही वास्तव में आप में भी मौजूद है। यह याद रखिए कि सतत परिश्रम और एक लक्ष्य सिद्धि से ही भाग्य बनता है। जनता की सतत इच्छा-साधना से देश उठता है। इच्छा एक प्रबल शक्ति है जो अपना मार्ग खोज ही निकालती है। मूर्खों का प्रारब्ध एक बहाना मात्र है। वास्तव में प्रारब्ध या तकदीर कोई वस्तु नहीं है।

जहाँ कार्य-कारण का अटूट संबंध है। वहाँ प्रारब्ध और तकदीर मानना मूर्खता के अतिरिक्त क्या है? किसे विचार करने का मार्ग मालूम नहीं है? कौन प्रत्येक कार्य के पीछे काम करने वाले कारण को नहीं जानता है? जो अपने कल्पित भूत-प्रेतों और जीवन के तूफानों से सदा डाँवाडोल रहता है, वही अपने कल्पित भूत-प्रेतों और बुरे ग्रहों का दास बना रहता है।

राजा वसुसेन का ज्योतिष पर बड़ा विश्वास था। वे हर काम मुहूर्त से करते और हर समय अपने साथ एक ज्योतिषी सदा रखते। उन दिनों दोनों कहीं यात्रा पर जा रहे थे। रास्ते में एक किसान बीज बोने हल-बैल लेकर जा रहा था। ज्योतिषी ने कहा-''मूर्ख! आज इस दिशा में ग्रह दशा ठीक नहीं है। लौट जा नहीं तो हानि होगी।'' किसान ने कहा-''मैं तो रोज ही खेत पर जाता हूँ। बुरी ग्रह दशा मेरा क्या कर लेगी?''

इस पर ज्योतिषी ने हस्तरेखा दिखाने के लिए कहा तो किसान बोला–"हाथ वह पसारे जिसे कुछ माँगना हो। मैं तो आप जैसों को देकर खाता हूँ।" ज्योतिषी और राजा उसका मुँह देखते रह गए।

कभी भी विकट परिस्थिति से हार न मानो, बल्कि जितनी भी कठिन परिस्थिति हो, उतना ही अधिक धैर्य और उत्साह अंदर से प्रकट करो। तरह-तरह की कोशिशें करो, कई-कई जगह काम करो। कहीं-न-कहीं से सफलता प्राप्त हो ही जाएगी। संकल्प की मजबूती, धैर्य और साहस से आदमी जीतता है। जिन्होंने कभी असफलता से हार नहीं मानी, निराशा को पास नहीं फटकने दिया, जिसके पास अभी भी जीतने की आशा है, काम में उत्साह है और मन में धैर्य है, उसका संकल्प एक-न-एक दिन निस्संदेह सफल होकर रहता है। निराश दृष्टिकोण अपना लिया जाए, तब किसी भी काम में हाथ लगाते नहीं बनेगा।

कुविचार विषाणुओं से अधिक घातक और घुन से अधिक अदृश्य होते हैं। वे भीतर जमकर बैठ जाते हैं और गुण-कर्म-स्वभाव की सारी संपदा को खोखली और विषाक्त बना देते हैं। ओछे स्वभाव के, आदर्श रहित और लक्ष्य विहीन व्यक्ति जीवन की लाश ढोते रहते हैं। उनके मनोरथ सफल हो ही नहीं सकते, क्योंकि प्रगति के लिए प्रखर व्यक्तित्व की आवश्यकता है।

हमें आशा और उत्साह मन में रखकर सुंदर-से-सुंदर भविष्य की कल्पना करनी चाहिए। अभी से परेशानी में पड़ने की बात ही क्यों सोचें? नदी की तरह ही वह मनुष्य भी अपनी सफलता के लिए मार्ग निकाल ही लेता है, जिसकी इच्छाशक्ति दृढ़ और बलवती होती है। उसकी इच्छा स्वयं ही उसका मार्ग प्रदर्शित करती चलती है। सफलता का मूल मनुष्य की इच्छाशक्ति में सन्निहित रहता है। मानवीय शक्तियों में उसकी इच्छाशक्ति सबसे प्रबल और प्रमुख होती है। जिन मनुष्यों की इच्छाशक्ति निर्बल होती है, वे साधन संपन्न होने पर भी कोई

उल्लेखनीय सफलता नहीं प्राप्त कर पाते। निर्बल इच्छाशक्ति वाले लोग मार्ग में आई एक साधारण-सी कठिनाई अथवा सामान्य विरोध को देखकर हिम्मत खो बैठते हैं।

मनुष्य की वास्तविक शक्ति उसकी इच्छाशक्ति ही है, क्योंकि यही जीवन के चिह्न, कर्म की विधायिका तथा प्रेरिका होती है। जहाँ इच्छा नहीं, वहाँ कर्म नहीं और जहाँ इच्छा है, वहाँ कर्मों का होना अनिवार्य है। इच्छा की प्रेरणा से ही मनुष्य कर्मों में प्रवृत्त होता है। यदि उसमें इच्छा की स्फुरणा नहीं, उसकी प्रेरणा न हो तो मनुष्य भी जड़ बनकर पड़ा रहे। आदिकाल से मनुष्य अब तक जो विकास और उन्नति करता आया है, वह सब इच्छाशक्ति का ही चमत्कार है। इच्छाशक्ति की निर्बलता मनुष्य के समग्र जीवन की निर्बलता है। जहाँ कमजोर और कायर मन वाले लोग रहते हैं, वहाँ प्राय: भय और आशंका का वातावरण बना रहता है। वे औरों को भी निर्बल और हतोत्साह बना देते हैं।

महात्मा गांधी तो प्रबल इच्छाशक्ति के एक जीते-जागते आदर्श थे। उनके पास एक प्रबल, दृढ़ तथा प्रखर इच्छाशक्ति को छोड़कर और क्या साधन थे? न सेना, न शस्त्र और न साम्राज्य तथापि उन्होंने अपनी एक इच्छाशक्ति के आधार पर अंग्रेजी साम्राज्य से टक्कर ली। प्रबल इच्छाशक्ति वाला जिस काम में हाथ डालता है, उसे तब तक नहीं छोड़ता जब तक पूरा नहीं कर लेता। वह बाधाओं, विरोधों से साहसपूर्वक लड़ता हुआ बढ़ता रहता है। उन्नति और सफलता का इसके सिवाय और कोई उपाय नहीं है। संसार की सारी सफलताओं का मूल मंत्र है-प्रबल इच्छाशक्ति। इसी के बल पर विद्या, संपत्ति और साधनों का उपार्जन होता है। यही वह सम्मोहन और वशीकरण मंत्र है, जिसके बल पर एक अकेला पुरुष कोटि-कोटि जन-गण को अपना अनुयायी बना लेता है। जीवन में उन्नति और सफलता की आकांक्षा करने से पहले अपनी इच्छाशक्ति को प्रबल तथा प्रखर बना लेने वालों को न कभी असफल होना

पड़ता है और न निराश। सदिच्छावान व्यक्ति में आशा, उत्साह, साहस और सक्रियता की कमी नहीं रहती और जिसमें इन सफलतावाहक गुणों का समावेश होगा, असफलता उसके पास आ ही नहीं सकती। असद् इच्छाएँ जहाँ अपने विषैले प्रभाव से मनुष्य की शक्ति का नाश करती हैं, वहाँ सदिच्छाएँ उनमें नवीन स्फूर्ति, नया उत्साह और अभिनव आशा का संचार किया करती हैं।

एक इच्छा, एक निष्ठा और शक्तियों की एकता मनुष्य को उसके अभीष्ट लक्ष्य तक अवश्य पहुँचा देती है। इसमें किसी प्रकार के संदेह की गुंजाइश नहीं है। आवश्यक है सघन, तीव्र, एकनिष्ठ, प्रचंड, इच्छाशक्ति की।

मन में किसी प्रकार का अशुभ संकल्प या विचार मत आने दीजिए। दूसरे के अशुभ या विरोधी विचारों को ग्रहण न करने से वे पुनः वापिस भेजने वाले के पास लौट जाते हैं और उसी को हानि पहुँचाते हैं। संकल्पों की पवित्रता मनुष्य के समग्र जीवन को पवित्र और तृप्त बनाने वाली है। थाली में परोसी रोटी भी जब तक ग्रास तोड़ने और चबाने का पुरुषार्थ न किया जाए, पेट में अपने आप नहीं पहुँचती। जब प्रगति के पथ पर संकल्पपूर्वक बढ़ा जाता है तो प्रतिकूलता अनुकूलता में बदलती है और अँधेरे में प्रकाश उत्पन्न होता है। आरंभ में जो मंजिल बहुत कठिन लगती थी, वह उतनी ही सरल होती चली जाती है।

जीवन निर्माण के प्रत्येक क्षेत्र में संकल्पशक्ति को विशिष्ट स्थान मिला है। सब इच्छाएँ संकल्प की सीमा का स्पर्श नहीं कर पातीं। उनमें पूर्ति का बल नहीं होता, अतः वे निर्जीव मानी जाती हैं, किंतु वे इच्छाएँ बुद्धि, विचार और दृढ़ भावना द्वारा जब परिष्कृत हो जाती हैं तो संकल्प बन जाती हैं। ध्येय सिद्धि के लिए इच्छा की अपेक्षा संकल्प में अधिक शक्ति होती है। संकल्प उस दुर्ग के समान है, जो भयंकर व्यवधान, दुर्बल एवं डावाँडोल परिस्थितियों

से भी रक्षा करता है और सफलता के द्वार तक पहुँचने में मदद करता है।

उत्कृष्ट या निकृष्ट जीवन यथार्थतः मनुष्य के विचारों पर निर्भर है। कर्म हमारे विचारों के सक्रिय रूप हैं। जिस बात की मन में प्रतिक्रिया उत्पन्न होती है, वह अपनी पसंद या दृढ़ इच्छा के कारण गहरी नींव पकड़ लेती है, उसी के अनुसार बाह्य जीवन का निर्माण होने लगता है।

प्रत्येक विचार का एक निश्चित स्वरूप होता है, जो दूसरे सजातीय प्रवाहों के साथ मिलकर और भी शक्तिशाली बनता रहता है। इस तरह के अनेक संकल्प-विकल्प इस सूक्ष्म जगत में विद्यमान हैं, पर उनका लाभ मनुष्य को तब मिल पाता है, जब वह विशेष मनोयोगपूर्वक किसी एक इच्छा की पूर्ति की ओर प्रवृत्त होता है। इस तरह का मस्तिष्क इन सजातीय विचार-तरंगों को सूक्ष्म आकाश से उसी तरह खींचता है, जैसे भूखा अजगर साँस की तेजी के साथ छोटे-छोटे अनेक जीव-जंतु, कीट-पतंगों को खींच लेता है। सजातीय तत्त्वों की एक अदृश्य शक्ति काम करने लगती है और सफलता के अनेक मार्ग अपने आप सूझने लगते हैं। ऐसा लगता है मानो कोई दैवी शक्ति आपका साथ दे रही है, किंतु वह शक्ति संकल्प की ही होती है, जो मस्तिष्क में अनेक पुरुषों की वैसी ही कल्पनाएँ तथा सूझ-बूझ ढूँढ़-ढूँढ़कर लाती रहती है और विचारवान व्यक्ति उनमें से अपनी परिस्थितियों के अनुरूप साधनों को ग्रहण करता हुआ चला जाता है। इससे सफलता प्राप्त करने में कुछ अधिक देर नहीं लगती।

मान लीजिए कि आपने संकल्प लिया कि इस वर्ष अच्छे नंबरों से परीक्षा पास करेंगे। इसके लिए आपको प्रातःकाल उठना ही पड़ेगा, पढ़ाई भी करनी ही पड़ेगी। इसमें ढील देने से आपकी कामना अधूरी ही रहेगी। दृढ़ संकल्प में मनुष्य की बुद्धि स्थिर और शरीर क्रियाशील बना रहना चाहिए। यदि हमारा मन बलवान है

और कार्य करने की लगन है तो कोई अशुभ या अवरोध सफलता के रास्ते में अपना प्रभाव नहीं डाल सकता। अपने मन को तूफानी आघातों से भीषण गरमी, बरसात, ओलों के बीच अडिग, अटूट रहने वाली चट्टान की तरह बना लें, तो परिस्थितियाँ और सांसारिक अड़चनें आपका कुछ भी बिगाड़ नहीं सकेंगी।

मन को रोकना काफी नहीं। उसे ऐसी दिशा देनी चाहिए, जिसमें अधिकाधिक रस मिले और रुचि जुड़े। जहाँ अधिक आकर्षण होगा, मन वहीं जाएगा। कुमार्ग पर से मन को रोकने का बार-बार निषेध एकांगी है। उसकी दिशा परिवर्तन के लिए यह आवश्यक है कि मन के लिए कोई अधिक आकर्षक क्षेत्र काम करने और विचरण करने के लिए उपलब्ध हो।

यह सच है कि संकल्प के अभाव में शक्ति का कोई महत्त्व और मूल्य नहीं है, उसी प्रकार यह भी सच है कि शक्ति के अभाव में संकल्प भी पूरे नहीं होते। केवल संकल्प करते रहने वाला निरुद्यमी व्यक्ति उस आलसी व्यक्ति की तरह कहा जाएगा, जो अपने पास गिरे हुए आम को मुँह में रखने की कोशिश नहीं करता और इच्छा मात्र से आम का स्वाद ले लेने की आकांक्षा करता है।

संकल्प के साथ शक्ति को संयुक्त करना एक कला है और इसमें बहुत थोड़े लोग ही पारंगत हो पाते हैं। इसका कारण है, परिश्रम और प्रयासों के प्रति निरपेक्ष बने रहना। सचाई यह है कि केवल वे ही इच्छाएँ पूरी होती हैं, जिनके साथ सशक्त प्रयास भी जुड़े हों। यहाँ शक्ति का अर्थ उद्देश्य के प्रति दृढ़ निष्ठा, उसे पूरा करने के लिए आवश्यक बाधाओं से संघर्ष का मनोबल और साहस है। इनके बिना संकल्प कभी भी शक्ति नहीं बन पाते। उसके अनुसार मन के लड्डू भले ही तोड़े जाते रहें।

उपयुक्त और उच्च स्तर के साधन जुटाने के लिए लोग इंतजार करते रहते हैं और महत्त्वपूर्ण कार्य आरंभ करने के लिए सोचते

रहते हैं कि जब आवश्यक साधन जुट जाएँगे, तब उसे प्रारंभ करेंगे। समुचित साधन जुड़ने की प्रतीक्षा में बैठे रहना, इस संभावना का ही आभास देता है कि शायद यह कार्य कभी भी आरंभ न हो सकेगा। खयाल करते रहने के स्थान पर आवश्यकता उस कार्य में जुट पड़ने की रहती है। स्वल्प साधनों से भी प्रबल साहस के सहारे, बड़े-बड़े महत्त्वपूर्ण काम किए जा सकते हैं, इसके अनेकानेक प्रमाण-उदाहरण इतिहास के पृष्ठों पर भरे पड़े हैं।

जिन दिनों समुद्र की लंबाई-चौड़ाई एशिया के इर्द-गिर्द एक हजार मील तक मानी जाती थी और समुद्र को छोर हीन समझा जाता था, उन दिनों १८ वर्षीय कोलंबस की कल्पना अमेरिका तक जा पहुँची थी, पर अकेला क्या करता, कोई सहायक भी तो चाहिए। पुर्तगालियों ने आश्वासन देकर उसके नक्शे चुरा लिए। ऐसी परेशानियों में बुद्धिमत्तापूर्ण हल निकालते हुए कोलंबस ने अमेरिका ढूँढ़ निकाला और वहाँ तक जा पहुँचने का निश्चय कर लिया। इस निश्चय में खतरे-ही-खतरे होते हुए भी महत्वाकांक्षी संकल्प रुका नहीं। उसने उस महाद्वीप के आवागमन का रास्ता खोज निकाला, जो इससे पूर्व अविज्ञात बना हुआ था। ऐसे साहसी और बुद्धिमान की खोज सदा-सर्वदा याद की जाती रहेगी।

किसी का सुधार उपहास से नहीं, उसे नए सिरे से सोचने और बदलने का अवसर देने से होता है।

शक्तियों का सदुपयोग ही संयम

मनुष्य को अन्य प्राणियों से श्रेष्ठ विभूतियाँ मिली हैं। शक्ति के अनंत स्रोत से भी इसका संबंध इस प्रकार जुड़ा हुआ है कि वह जब चाहे आवश्यकतानुसार अतिरिक्त शक्ति प्राप्त कर लेता है। शारीरिक दृष्टि से अन्य कई प्राणियों से कमजोर होते हुए भी मनुष्य ऐसे साधन विकसित करने में सफल हुआ है कि वह संसार का एक छत्र शक्तिशाली अधिपति हो सका है। एक ओर अभावग्रस्त, अशक्त और अज्ञानी लोगों की भरमार है, तो दूसरी ओर ऐसे महापुरुष भी हुए हैं, जिन्होंने प्रतिभा के बल पर संसार को एक-से-एक बढ़-चढ़कर अनुदान दिए। हमारे चारों ओर विज्ञान के जो चमत्कार दिखाई देते हैं, वे सब उन महापुरुषों की ही देन हैं, जिन्होंने अपनी विभूतियों का उपयोग किया और उन्हें इस दिशा में लगाया। एक व्यक्ति सारे समाज की चिंतनधारा मोड़ देता है। वह अपने भीतर ऐसी विचारशक्ति अर्जित कर लेता है कि अन्य सभी लोग उसके अनुरूप सोचने लगते हैं। प्रतिभाशाली और अयोग्य दोनों ही तरह के व्यक्तियों से यह संसार भरा है। एक ओर जहाँ ऐसे व्यक्तित्व हैं जो अपनी शक्ति के द्वारा पूरे समाज की समस्याओं को हल कर सकते हैं, तो दूसरी ओर ऐसे लोग भी हैं जो अपनी साधारण-सी कठिनाइयों का निवारण भी नहीं कर पाते।

प्रश्न उठता है कि सृष्टि-नियंता ने लोगों को इस तरह की शक्तियाँ प्रदान करते समय क्या कोई पक्षपात बरता है? नहीं, उसने सभी को उससे लाभ उठाने के द्वार खोल रखे हैं और प्रत्येक को यह अवसर दिया है कि वह उस शक्ति का उपयोग अपने तथा

समाज के लिए कर सके। साधन और परिस्थितियाँ महापुरुष तथा साधारण व्यक्तियों के अंतर का कारण नहीं है। महापुरुष भी विपन्न-से-विपन्न परिस्थितियों में आगे बढ़े हैं तथा महान कार्य करने में सफल हो सके हैं। उन सफलताओं का आधार उपलब्ध शक्ति का अभीष्ट दिशा में सही उपयोग है। वे शक्तियाँ हमें भी प्राप्त हैं, प्रत्येक को उपलब्ध हो सकती हैं, लेकिन हम दो कारणों से उनका लाभ उठा नहीं पाते।

पहला कारण तो यह है कि व्यक्ति उन शक्तियों को अनावश्यक और अवांछनीय रूप से खरच कर देते हैं। अनावश्यक और अनुचित कार्यों में शक्तियाँ खरच कर देने से उनका उपयोग आवश्यक और उचित कार्यों में नहीं हो पाता। साधन सीमित हों और उनसे आवश्यक कार्य किए जाएँ तो अतिरिक्त साधन भी प्राप्त किए जा सकते हैं, लेकिन सीमित साधनों को अनावश्यक कार्यों में खरच कर दिया जाए तो वे साधन समाप्त होंगे ही, आगे का स्रोत भी बंद हो जाएगा। उदाहरण के लिए कोई व्यक्ति व्यवसाय, उद्योग प्रारंभ करना चाहता हो, उसकी योजना ठीक हो तथा वह योग्य हो, तो पूँजी की कमी अन्यत्र से भी पूरी हो जाती है। कोई भी सरकारी या गैर सरकारी सहायता मिल सकती है, लेकिन उस पूँजी को वह अपने शौक-मौज में ही खरच करना चाहे, तो उसे कोई भी सहायता देने के लिए तैयार नहीं होगा। पास की पूँजी तो समाप्त होगी ही। अपनी उपलब्ध शक्तियों को हम जब अनुचित कार्यों में खरच करते हैं, तो शक्ति प्राप्त करने की पात्रता खो देते हैं। हमारे लिए वहाँ शक्ति का स्रोत बंद हो जाता है। अपनी शक्तियों से लाभ न उठा पाने का दूसरा कारण, उन्हें सही दिशा में प्रयुक्त न करना है। भाप की शक्ति जब इकट्ठी हो जाती है तो उसका उपयोग करना ही पड़ता है। यदि उसका उपयोग न किया जाए, तो बरतन फट सकता है, कोई नुकसान हो सकता है। पानी का गुण है बहना, यदि वह अनियंत्रित बहने लगे, तो बड़े-बड़े नुकसान हो सकते हैं। बाढ़ें क्या हैं? वर्षा

के पानी का अनियंत्रित बहाव ही तो बाढ़ है। उपलब्ध शक्ति को सही दिशा में प्रयुक्त करके ही उससे वास्तविक लाभ उठाया जा सकता है।

उपलब्ध शक्तियों के अनुचित अपव्यय को रोककर उसे कल्याणकारी कार्यों में लगाने का नाम ही संयम है। मनीषियों और महापुरुषों ने इसे जीवन का आवश्यक अंग बताया है। अब तक संयम का एकांगी अर्थ ही समझा जाता रहा है अर्थात् शक्तियों के प्रवाह को रोकना। यदि शक्तियों के प्रवाह को रोका जाता रहे, पर उनका कोई उपयोग न किया जाए, तो लाभ के स्थान पर हानि है। नदियों का पानी बाँध बनाकर रोक दिया जाए, न उससे सिंचाई का काम लिया जाए और न ही बिजली पैदा की जाए, तो एकत्रित होता जा रहा पानी विनाश ही प्रस्तुत करेगा। संयम का अर्थ शक्तियों के प्रवाह को निरर्थक और हानिकारक दिशा से रोककर सार्थक और कल्याणकारी दिशा में लगाना है। इस स्तर के संयम को सिद्ध करने के लिए जितने भी प्रयास किए जाएँगे, वे हमारे व्यक्तित्व को उत्कृष्ट और प्रखर बनाते चले जाएँगे।

परमेश्वर का प्यार केवल सदाचारी और कर्त्तव्यपरायणों के लिए सुरक्षित है।

समय संपदा का सदुपयोग

मनुष्य के पास ईश्वर प्रदत्त पूँजी है–समय। समय संसार की सबसे मूल्यवान संपदा है। यह वह मूल्यवान संपत्ति है, जिसकी कीमत पर संसार की कोई भी सफलता प्राप्त की जा सकती है। समय का सदुपयोग करने वाले व्यक्ति कभी भी असफल नहीं हो सकते। कहते हैं कि परिश्रम से ही सफलता मिलती है, किंतु परिश्रम का अर्थ भी समय का सदुपयोग ही है।

मनुष्य कितना ही परिश्रमी क्यों न हो, अपने परिश्रम के साथ समय का सामंजस्य नहीं करेगा तो निश्चय ही उसका श्रम या तो निष्फल चला जाएगा अथवा अपेक्षित फल न दिला सकेगा। किसान परिश्रमी है, किंतु यदि वह अपने श्रम को समय पर काम में नहीं लाता तो वह अपने परिश्रम का पूरा लाभ नहीं उठा सकता। असमय बोया हुआ बीज बेकार चला जाता है। असमय जोता खेत अपनी उर्वरता प्रकट नहीं कर पाता। असमय काटी फसल नष्ट हो जाती है। निश्चित समय पर न किया हुआ कितना भी परिश्रम काम में सफलता नहीं देता।

प्रकृति का प्रत्येक कार्य एक निश्चित समय पर नियमित होता है। समय पर ग्रीष्म, समय पर वर्षा, समय पर सरदी और समय पर ही वसंत आकर वनस्पतियों को फूलों से सजा देता है। प्रकृति के इस क्रम में जरा-सा भी व्यवधान पड़ जाने से न जाने कितनी परेशानियाँ उत्पन्न हो जाती हैं। समय-पालन ईश्वरीय नियमों में सबसे महत्त्वपूर्ण एवं प्रमुख नियम है।

मनुष्य का समय, मनोयोग एवं परिश्रमपूर्वक किसी दिशा में भी लग जाए, उसी में चमत्कार उत्पन्न हो जाएगा। संसार के महापुरुषों की प्रधान विशेषता यही रही है कि उन्होंने अपने जीवन का एक-एक क्षण निरंतर काम में लगाए रखा है। वह भी पूरी दिलचस्पी और श्रमशीलता के साथ। यह रीति-नीति जो आदमी अपनाले और अपने जीवन-क्रम की दिशा निर्धारित कर ले, वह हर क्षेत्र में सफलता की ऊँची मंजिल पर सहज ही पहुँच सकता है। मनुष्य की सामर्थ्य का अंत नहीं, पर कठिनाई इतनी ही है कि वह चारों तरफ बिखरी और अस्त-व्यस्त पड़ी रहती है। उसका एकीकरण, केंद्रीकरण जो व्यक्ति कर लेगा, अपनी प्रचुर शक्ति का परिचय सहज ही दे सकेगा।

योजनाबद्ध कार्य-निर्धारण करने और उसका तत्परतापूर्वक निर्वाह करने से ही विज्ञजन अनेकानेक सफलताएँ अर्जित करते हैं। समय ईश्वर-प्रदत्त संपदा है, उसे श्रम में मनोयोगपूर्वक नियोजित करके विभिन्न प्रकार की संपदाएँ, विभूतियाँ अर्जित की जा सकती हैं। जो समय गँवाता है, उसे जीवन गँवाने वाला कहा जाता है। कौन कितने दिन जिया, इसका लेखा-जोखा जन्मदिन से लेकर मरणपर्यंत के दिन गिनकर नहीं, वरन इस आधार पर लगाया जाना चाहिए कि किसने अपने समय का उपयोग महत्त्वपूर्ण प्रयोजनों के लिए किया। समय के सच्चे पुजारी एक क्षण भी नष्ट नहीं होने देते, अपने एक-एक क्षण को हीरे-मोतियों से तोलने लायक बनाकर उसका सदुपयोग करते हैं और सफल और श्रेयाधिकारी महामानव बनते हैं।

एक श्रद्धालु सेठ ने एक महात्मा से पूछा-"प्रभु! श्रेष्ठ कार्यों में समय लगाना तो आवश्यक है, किंतु यदि समय न मिले तो क्या करें?" आचार्य रहस्य भरी मुस्कान बिखेरते हुए बोले-"मुझे तो कोई व्यक्ति आज तक ऐसा नहीं मिला, जिसे विधाता ने एक दिन में २४ घंटे में एक पल भी कम समय दिया हो। फिर समय की कमी से आपका क्या अभिप्राय है?"

सेठ सकपकाकर चुप ही रह गए। आचार्य फिर बोले– ''जिसे तुम समय की कमी कहते हो, वह समय की कमी नहीं, समय की अव्यवस्था है। उसी कारण समय अनुपयोगी कार्यों में लग जाता है। उपयोगी कार्यों के लिए रह ही नहीं जाता। जो समय का सुदपयोग नहीं कर पाते, वे जीवन जीते नहीं, काटते हैं, नष्ट करते हैं। कोई कितने वर्ष जिया यह जीवन नहीं, किसने कितने समय का सदुपयोग कर लिया, वही जीवन की लंबाई है।''

समय की बरबादी का अर्थ है–अपने जीवन को बरबाद करना। जीवन के जो क्षण मनुष्य यों ही आलस्य अथवा प्रमाद में खो देता है, वे फिर कभी लौटकर वापस नहीं आते। जीवन प्याले की जितनी बूँद गिर जाती हैं, प्याला उतना ही खाली हो जाता है। प्याले की वह रिक्तता फिर किसी भी प्रकार भरी नहीं जा सकती। मनुष्य जीवन के जितने क्षणों को बरबाद कर देता है, उतने क्षणों में वह जितना काम कर सकता था, उसकी कमी फिर वह किसी प्रकार भी पूरी नहीं कर सकता।

जीवन का हर क्षण एक उज्ज्वल भविष्य की संभावना लेकर आता है। कोई भी घड़ी एक महान मोड़ का समय हो सकती है। मनुष्य यह निश्चयपूर्वक नहीं कह सकता कि जिस समय, जिस क्षण और जिस पल को वह यों ही व्यर्थ खो रहा है, वह ही क्षण, वह ही समय उसके भाग्योदय का समय नहीं है? क्या पता जिस क्षण को हम व्यर्थ समझकर बरबाद कर रहे हैं, वह ही हमारे लिए अपनी झोली में सुंदर सौभाग्य की सफलता लाया हो।

सबके जीवन में एक परिवर्तनकारी समय आया करता है, किंतु मनुष्य उसके आगमन से अनभिज्ञ रहा करता है। इसीलिए हर बुद्धिमान मनुष्य हर क्षण को बहुमूल्य समझकर व्यर्थ नहीं जाने देता। कोई भी क्षण व्यर्थ न जाने देने से निश्चय ही वह क्षण हाथ से छूटकर नहीं जा सकता जो जीवन में वांछित परिवर्तन का संदेशवाहक होगा। आलसी अथवा दीर्घसूत्री व्यक्ति बहुधा किसी

उपयुक्त अवसर की प्रतीक्षा करते-करते ही सारी जिंदगी खो देते हैं और उन्हें कभी भी उपयुक्त अवसर नहीं मिल पाता। प्रमाद के मद में वह यह नहीं सोच पाता कि जीवन का प्रत्येक क्षण एक स्वर्ण अवसर है, जो यों ही चुपचाप आता और चला जाता है। जब तक उस क्षण का सदुपयोग करके परखा नहीं जाएगा तब तक निश्चयपूर्वक यह कैसे कहा जा सकता है कि अमुक समय उपयुक्त अवसर नहीं है।

हर मनुष्य को समय के छोटे-से-छोटे क्षण का मूल्य एवं महत्त्व समझना चाहिए। जीवन का समय सीमित है और काम बहुत है। समय की चूक पश्चात्ताप की हूक बन जाती है। जीवन में कुछ करने की इच्छा रखने वालों को चाहिए कि वे अपने किसी भी काम को भूलकर भी कल पर न टालें। जो आज किया जाना चाहिए, उसे आज ही करें। आज के काम के लिए आज का ही दिन निश्चित है और कल के काम के लिए कल का दिन निर्धारित है। आज का काम कल पर टाल देने से कल काम का भार दो गुना हो जाएगा जो निश्चय ही कल के समय में पूरा नहीं हो सकता। इस प्रकार आज का कल पर और कल का परसों पर ठेला हुआ काम इतना बढ़ जाएगा कि वह फिर किसी भी प्रकार पूरा नहीं किया जा सकता। जिस स्थगनशील स्वभाव तथा दीर्घसूत्री मनोवृत्ति ने आज का काम आज नहीं करने दिया, वह कल करने देगी ऐसा नहीं माना जा सकता। स्थगन-स्थगन को और क्रिया-क्रिया को प्रोत्साहित करती है। यह प्रकृति का एक निश्चित नियम है। कल के काम का दबाव काम को बेगार बना देता है, जो रो-झींककर ही पूरा होता है। ऐसा होने से अभ्यास बिगड़ता है और उसका विकृत प्रभाव नए काम पर भी पड़ता है। इस प्रकार स्थगनशीलता कार्य में मनुष्य की रुचि तथा दक्षता को नष्ट कर देती है। इन दोनों विशेषताओं से रहित कर्त्तव्य-परिश्रम का भरपूर मूल्य पाकर भी अपेक्षित पुरस्कार एवं पारितोषिक नहीं दिला पाते।

जीवन में सफलता के लिए जहाँ परिश्रम एवं पुरुषार्थ की अनिवार्य आवश्यकता है, वहाँ समय का सामंजस्य उससे भी अधिक आवश्यक है। जिस समय को बरबाद कर दिया जाता है, उस समय में किया जाने के लिए निर्धारित श्रम भी नष्ट हो जाता है। श्रम तभी संपत्ति बनता है, जब वह समय में संयोजित कर दिया जाता है और समय तब ही संपदा के रूप में संपन्नता एवं सफलता ला सकता है, जब उसका श्रम के साथ सदुपयोग किया जाता है। समय का सदुपयोग करने वाले स्वभावतः परिश्रमी बन जाते हैं, जबकि असामयिक परिश्रमी आलसी की कोटि का ही व्यक्ति होता है। समय का सदुपयोग ही वास्तविक श्रम है।

आलस्य और प्रमाद में हम बहुत समय गँवाते हैं। यदि हम अपने दिनभर के कार्यों पर दृष्टिपात करें और उसका विश्लेषण करें तो प्रतीत होगा कि अधिकांश समय या तो आलस्य में, सुस्ताने में या बदन तोड़ते बीता अथवा गपशप और व्यर्थ की बकवासों में समय की बरबादी हुई। उसी खाली समय का उपयोग कर अपनी योग्यता और क्षमता बढ़ाई जा सकती थी। तत्पर और फुर्तीला मनुष्य एक घंटे में दाल-रोटी बना-खाकर निश्चिंत हो सकता है, पर आलसी और ढीला व्यक्ति उसी काम को अव्यवस्थित ढंग से करते रहने पर आधा दिन गुजार देगा। लोग ऐसे ही ऊँघने, सुस्ताने, जैसे-तैसे करते-धरते छोटे-छोटे थोड़े-से कामों में अपना सारा समय बरबाद कर लेते हैं, जबकि मुस्तैदी और समय का मूल्य समझने वाले व्यक्ति उतने से समय में दस गुने काम निपटाकर रख देते हैं।

प्रेसीडेंट लिंकन के मित्र ने कहा-"आप काफी वृद्ध हो गए हैं, अब काम के घंटे कुछ कम कर देने चाहिए।" लिंकन हँसे और बोले-"श्रीमान जी! इस परिपक्व अवस्था से बढ़िया काम करने का और कौन-सा समय होगा?" यह कहकर उन्होंने अपने सेक्रेटरी से कहकर काम के घंटों में एक घंटे की और वृद्धि कर दी।

समय के प्रतिफल का सच्चा लाभ उन्हें मिलता है, जो अपनी दिनचर्या बना लेते हैं और नियमित रूप से निरंतर उसी क्रम पर आरूढ़ रहने का संकल्प लेकर चलते हैं। एक दिन एक सेर घी खाएँ और एक महीने तक जरा भी न खाएँ, एक दिन सौ दंड-बैठक करें और बीस दिन तक व्यायाम का नाम भी न लें, तो उस ज्वार-भाटे जैसे उत्साह के उठने व ठंढे होने से क्या परिणाम निकलेगा? नियत समय पर काम करने से अंतर्मन को उस समय वही काम करने की आदत भी पड़ जाती है और इच्छा भी होती है। चाय, सिगरेट आदि नशे को लोग नियमित रूप से करते हैं। उन्हें नियत समय पर उसकी तलब उठती है और न मिलने पर बेचैनी होती है। इसी प्रकार नियत समय पर कुछ काम करने का अभ्यास डाल लिया गया है तो उस समय पर वैसा करने की इच्छा होगी, मन लगेगा और काम ठीक तरह पूरा होगा। मंद चाल से चलने वाले कछुए ने तेज उछलने वाले किंतु क्षणिक उत्साही खरगोश से बाजी जीत ली थी। यह कहानी नियमित और निरंतर काम करने वालों पर अक्षरशः लागू होती है। मंदबुद्धि और स्वल्प साधनों वाले कालिदास सरीखे लोगों ने एक कार्य में दत्तचित्त होकर नियमित रूप से निरंतर काम करते रहने का क्रम बनाकर उच्चकोटि का विद्वान और कवि बनने में सफलता पाई। इस तरह की सफलता कोई भी प्राप्त कर सकता है। उसमें कोई जादू-चमत्कार नहीं, केवल व्यवस्थित और नियमित रूप से मनोयोगपूर्वक क्रमबद्ध काम करने का प्रतिफल था। यह मार्ग कोई भी अपना सकता है और उन्नति के शिखर तक पहुँच सकता है।

सामान्यतः स्कूल-कॉलेज के लिए ६ घंटे, सोने के लिए ८ घंटे, नित्य कर्म के लिए २ घंटे माने जाएँ तो कुल मिलाकर १७ घंटे हुए। २४ घंटे में से ७ घंटे फिर भी बचते हैं, जो लगभग एक पूरे काम के दिन के बराबर होते हैं। कोई चाहे तो इन ७ घंटों को किसी भी अभिरुचि के विषय में लगाकर आशातीत सफलता प्राप्त कर

सकता है, शर्त इतनी है कि विषय में सच्ची रुचि हो और समय को नियमित रूप से लगाने का दृढ़ संकल्प हो।

समय सबके पास २४ घंटे होता है। थोड़े-से समय की बरबादी को भारी क्षति समझने वाले उसका सुदपयोग कर आश्चर्यजनक मात्रा में लाभ प्राप्त कर पाते हैं। फुरसत नहीं मिलने की बहानेबाजी काम में दिलचस्पी न होने के कारण होती है। जहाँ चाह वहाँ राह होती है।

यदि हम जीवनोत्कर्ष के महत्त्वपूर्ण कार्यों में दिलचस्पी पैदा करें तो उसके लिए समय की कमी न रहेगी। नियमितता और सुव्यवस्था से भरी दिनचर्या जो कि दूरगामी चिंतन के आधार पर एवं व्यावहारिक हो, शेखचिल्ली जैसी कपोल कल्पना न हो, बनाकर कोई भी व्यक्ति समय का सदुपयोग कर सकता है और अभीष्ट दिशा में आश्चर्यजनक प्रगति कर सकता है। दैवी संपदा का दुरुपयोग वास्तव में भगवान को नाराज कर शाप स्वयं अपने ऊपर लेने के समान है।

जीवन का अर्थ है-समय। जो जीवन से अधिक प्यार करते हों, वे व्यर्थ में एक क्षण भी न गँवाएँ।

बड़प्पन अमीरी में नहीं, ईमानदारी और सज्जनता में सन्निहित है।

अनुशासन और नियमितता

जीवन की समस्त गतिविधियों को नियंत्रित और व्यवस्थित रखना, उन्हें मानवीय आदर्शों की परिधि में केंद्रित रखना अनुशासन कहलाता है। अनुशासन जीवन जीने का एक निश्चित और नियमित तरीका है, जिसमें मनुष्य का रहन-सहन, खानपान, चालढाल, बातचीत करना, काम करना सभी व्यवस्थित और सुंदरतापूर्ण होते हैं। अनुशासन जीवन जीने की एक कलापूर्ण पद्धति है, जिससे जीवन के नक्शे में प्रत्येक पहलू, रंग-रूप यथास्थान चित्रित किए जाते हैं और मानवीय गुण, आदर्शों का सुंदर रंग भरा जाता है, जिससे अलौकिकता छिटकने लगती है।

गाँधी जी के आश्रम में कभी-कभी उनकी पोतियाँ भी आ ज़ाती थीं। जितने दिन वे ठहरतीं, उतने दिन का खरच उनके पिताजी को बिल बनाकर भेजा जाता था। आश्रम का पैसा सार्वजनिक कार्यों में ही खरच होता था। व्यक्ति के निजी कार्य के लिए चाहे वह कोई भी हो, एक पैसा खरच नहीं होता था। गाँधी जी समर्थ ब्रिटिश शासन के सम्मुख प्रचंड प्रतिरोध तभी खड़ा कर सके, जब उनके पीछे अनुशासनबद्ध स्वयंसेवकों की लंबी कतार थी। उनकी विजय का यही एकमात्र रहस्य था।

सभी प्रकार की उन्नति, सफलता, विकास, प्रगति के लिए अनुशासित जीवन बिताने की आवश्यकता है। अनुशासनहीनता से असफलता के सिवा कुछ भी नहीं मिलता। अनुशासन मानव स्वभाव की एक आवश्यक इकाई के रूप में हर समय, हर परिस्थिति में प्रत्येक व्यक्ति के लिए आवश्यक है। अनुशासन का मनुष्य के आंतरिक एवं बाह्य जीवन में घनिष्ठ संबंध है।

अनुशासनहीनता से मनुष्य के आंतरिक और उसके फलस्वरूप बाह्य जीवन में अव्यवस्था फैल जाती है और इस अव्यवस्था

से मनुष्य की शक्तियाँ परस्पर लड़ पड़ती हैं, आपस में टकराने लगती हैं। सड़क पर चलने वाले ताँगे, मोटर, साइकिलें, रिक्शे, स्कूटर, गाड़ी आदि सभी अव्यवस्थित और बिना कानून कायदे के चलने लगें तो परस्पर टकराव और दुर्घटनाएँ ही होंगी। इसी तरह जीवन के असंख्य सूक्ष्म तथा स्थूल पहलुओं में अव्यवस्था होने पर वे आपस में टकराएँगे और इससे मनुष्य जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में पराजय का ही सामना करना पड़ेगा, जिससे अशांति, बेचैनी ही बढ़ेगी। शांति, प्रसन्नता, संतोष उसी स्थिति में मिलते हैं, जब मनुष्य अपने लक्ष्य की ओर प्रगति करता रहे। उसकी विकास यात्रा जारी रहे। जीवन के सभी पहलुओं का स्वस्थ विकास होता रहे, किंतु यह सब अनुशासनबद्ध जीवन में ही संभव है। अनुशासन से कार्यक्रम में व्यवस्था और गति पैदा होती है, जिससे प्रगति होती है। मनुष्य की मानसिक शक्तियाँ परस्पर न टकरा कर संगठित होकर पुरोगामी बनती हैं, जिससे प्रतिकूल परिस्थितियों में भी मनुष्य आगे बढ़कर सफलता का वरण करता है। अनुशासनबद्ध जीवन जीने वाला व्यक्ति सदैव प्रसन्नचित्त और आनंदमय स्थिति में रहता है। उसकी उपस्थिति मात्र से वातावरण में प्रसन्नता की लहर बह उठती है, अच्छाइयों का संचार होता है। भले काम उसके द्वारा स्वतः ही होने लगते हैं।

अनुशासन दो प्रकार का होता है–एक आंतरिक और दूसरा बाह्य। आंतरिक अनुशासन को मनुष्य स्वयं समझता है, महसूस करता है, जबकि बाह्य अनुशासन दूसरों द्वारा लागू किया जाता है। यदि मनुष्य पूर्णतया आंतरिक अनुशासन का अवलंबन लिए रहे, तो उसे फिर बाह्य अनुशासन की आवश्यकता नहीं होती। एक बालक को आंतरिक अनुशासन का बोध नहीं रहता, इसीलिए माता-पिता, अध्यापक आदि उसे अनुशासन सिखाते हैं और अभ्यास से बच्चा आंतरिक अनुशासन की भूमिका में पहुँच कर आगे स्वयं ही अनुशासित रहने लगता है।

जब कोई मनुष्य बुरा काम करता है तो उसे समाज की निगाह से बचाता है। इसका कारण यह है कि मनुष्य अपने नीच कर्म को, दूषित प्रकृतियों को समाज के प्रतिकूल समझता है। मनुष्य का ऊँचा कर्म, आदर्श, अच्छाइयाँ, सद्गुण, सद्वृत्तियाँ ही श्रेष्ठ समाज का रूप हैं। श्रेष्ठ पुरुषों के आचार-विचारों को आधार बनाकर ही समाज के स्वरूप का निर्धारण होता है। किसी चोर, लुटेरे, डाकू, गुंडे के चरित्र पर समाज का निर्माण होते कभी नहीं देखा गया। महापुरुषों का जीवन आंतरिक अनुशासन की साधना का उत्कृष्ट रूप होता है। अत: उनका अनुसरण कर मानव समाज भी जीवन में अनुशासन को अंगीकार करता है।

आंतरिक एवं सामाजिक अनुशासन जीवन में कितना अनिवार्य है, इसे एक बार राजा को मंत्री ने समझाया। प्रजा में घोषणा कराई गई कि किसी राज-कार्य के लिए हजार मन दूध की आवश्यकता है। सभी प्रजाजन रात्रि के समय खुले पार्क में रखे कड़ाहों में अपने-अपने हिस्से का एक-एक लोटा दूध डाल जाएँ। रात्रि का समय और चौकीदार का न होना, इन दो कारणों का लाभ उठाकर सभी ने दूध के स्थान पर पानी डालना आरंभ कर दिया। इतने लोटे दूध में हमारे एक लोटे पानी का किसी को पता भी नहीं चलेगा, सभी ने इस तरह सोचा। दूसरे दिन सभी कड़ाहों में सिर्फ पानी भरा मिला। मंत्री ने राजा को समझाया कि समाजतंत्र में नीतिनिष्ठा को जीवित रखने के लिए सामाजिक अनुशासन की कितनी आवश्यकता है।

आंतरिक जीवन में काम कर रहे सूक्ष्म भाव, विचार, वृत्तियों का शोधन, उनमें संतुलन कायम करना, अनुशासन का मूल आधार है। कई अवसरों पर मनुष्य नहीं चाहता है कि वह सामाजिक अनुशासन भंग करे, निम्न वृत्तियों को अपनाए। वह नहीं चाहता कि किसी से लड़े, किंतु इस तरह की परिस्थितियाँ आते ही वह बेकाबू होकर उनमें उलझ जाता है। अत: जीवन में पूर्णरूपेण अनुशासन

कायम करके लिए आंतरिक जीवन में सुधार और अनुशासन कायम करना वांछनीय है। मनुष्य को अनुशासन सिखाने के बाह्य उपाय इस संबंध में सहयोग अवश्य देते हैं, किंतु समस्या का पूर्ण समाधान नहीं कर सकते। आत्मानुशासन ही अंतर-बाह्य जीवन में अनुशासन स्थापित करने का एकमात्र मार्ग है।

नियमितता

मानवी प्रगति के मार्ग में अत्यंत छोटी किंतु अत्यंत भयानक बाधा है-अनियमितता की आदत। आमतौर से लोग अस्त-व्यस्त पाए जाते हैं। हवा के झोकों के साथ उड़ते रहने वाले पत्तों की तरह कभी इधर कभी उधर फुदकते रहते हैं। निश्चित दिशा न होने से परिश्रम और समय बेतरह बरबाद होता रहता है। धीमी चाल से चलने की स्वल्प क्षमता रखते हुए भी सतत प्रयत्न से कछुए ने बाजी जीती थी और बेतरतीब उछलने-भटकने वाला खरगोश अधिक क्षमता संपन्न होते हुए भी पराजित घोषित किया गया था। सामर्थ्य का जितना महत्त्व है, उससे अधिक महत्ता इस बात की है कि जो कुछ उपलब्ध है, उसी को योजनाबद्ध रूप से, नियत क्रम व्यवस्था अपनाकर सदुद्देश्य के लिए नियोजित किया जाए। जो ऐसा कर पाते हैं, वे ही क्रमिक विकास के राजमार्ग पर चलते हुए उन्नति के उच्च शिखर तक पहुँचते हैं। जो इस ओर ध्यान नहीं देते, उन्हें योग्यता एवं सुविधा के रहते हुए भी पिछड़ी परिस्थितियों में पड़े रहना पड़ता है। जबकि सुनियोजित जीवनचर्या बना सकने वाले एक के बाद दूसरी सीढ़ी पर चढ़ते हुए वहाँ पहुँचते हैं, जहाँ साथियों के साथ तुलना करने पर प्रतीत होता है कि कदाचित किसी देव-दानव ने ही ऐसा चमत्कार प्रस्तुत किया हो, पर वास्तविकता इतनी है कि प्रगतिशील ने नियमितता अपनाई। अपने समय, श्रम और ङ्क्चतन को एक दिशा विशेष में संकल्पपूर्वक नियोजित रखा। इसके विपरीत दुर्भाग्य का पश्चात्ताप उन्हें सहन करना पड़ता है जो लंबी योजना बनाकर उस पर निश्चयपूर्वक चलते रहना तो दूर

अपनी दिनचर्या बनाने की आवश्यकता नहीं समझते और बहुमूल्य समय को ऐसे ही आलस्य-प्रमाद की अस्त-व्यस्तता में गँवाते रहते हैं। कहते हैं कि लक्ष्य और क्रम बनाकर चलने वाली चींटी पर्वत शिखर पर जा पहुँचती है, जबकि प्रमादी गरुड़ ऐसे ही जहाँ-तहाँ पंख फड़फड़ाता और बीट करता दिन गुजारता है।

अच्छी बातों में सर्वप्रथम मानने योग्य है-नियमितता। समय और कार्य की संगति बिठाकर योजनाबद्ध दिनचर्या बनाने और उस पर आरूढ़ रहने का नाम नियमितता है। उसके बन पड़ते ही ङ्क्चतन करने के लिए एक दिशा मिलती है। व्यवस्थित कार्यक्रम बनाकर चलने से शरीर को संलग्न रहने की इच्छा रहती तथा प्रवीणता मिलती है। फलतः सूझबूझ के साथ निश्चित किया गया कार्यक्रम सरलता और सफलतापूर्वक संपन्न होता चला जाता है।

आदतों का सुधार-सबसे बड़ा पराक्रम

विचार दिशा देते हैं, पर सामर्थ्य आदतों से बनती है। वे ही मनुष्य को किसी निर्धारित दिशा में चलने के लिए न केवल प्रेरणा देती हैं, वरन कई बार तो उसे वे अपने अनुरूप करा लेने के लिए विवश तक कर देती हैं, भले ही परिस्थितियाँ अनुकूल न हों, नशेबाजी जैसी आदतें इनका उदाहरण हैं। आदतें आसमान से नहीं टपकतीं। विचारों को कार्यान्वित करते रहने का लंबा क्रम चलते रहने पर वह अभ्यास आदत बन जाती है और उसे अपनाए रहने में जितना समय बीतता है, उतना ही वह ढर्रा सुदृढ़ होता चला जाता है और उसी पटरी पर गाड़ी लुढ़कती रहती है। आदतें बनाई जाती हैं, भले ही उनका अभ्यास योजना बनाकर किया गया हो अथवा रुझान, संपर्क, वातावरण, परिस्थिति आदि कारणों से अनायास ही बनता चला गया हो। वे आदतें ही मनुष्य का वास्तविक व्यक्तित्व या चरित्र होता है। मनुष्य क्या सोचता है, क्या चाहता है, इसका अधिक मूल्य नहीं। परिणाम तो उन गतिविधियों के ही निकलते हैं जो आदतों के अनुरूप क्रियान्वित होती रहती हैं। प्रतिफल तो कर्म

ही उत्पन्न करते हैं और वे कर्म अन्य कारणों के अतिरिक्त प्रधानतया आदतों से प्रेरित होते हैं।

जिस क्रम से आदतें अपनाई जाती हैं, उसी रास्ते उन्हें छोड़ा या बदला जा सकता है। रुझान, संपर्क, वातावरण, अभ्यास आदि बदला जा सके तो कुछ दिन हैरान करने के बाद आदतें बदल भी जाती हैं। कई बार प्रबल मनोबल के सहारे उन्हें संकल्पपूर्वक एवं झटके से भी उखाड़ा जा सकता है, पर ऐसा होता बहुत ही कम है। बाहर की अवांछनीयताओं से जूझने के तो अनेक उपाय हैं, पर आंतरिक दुर्बलताओं से एक बार ही गुथ जाना और उन्हें पछाड़कर ही पीछे हटना, किन्हीं मनस्वी लोगों के लिए ही संभव होता है। दुर्बल मन वाले तो छोड़ने-पकड़ने, आगे बढ़ने-पीछे हटने के कुचक्र में ही फँसे रहते हैं। अभीष्ट परिवर्तन न होने पर उनका दोष जिस-तिस पर मढ़ते रहते हैं, किंतु वास्तविकता इतनी ही है कि आत्मपरिष्कार के लिए सत्प्रवृत्तियों के अभ्यस्त बनने के लिए सुदृढ़ निश्चय के अतिरिक्त और कोई उपाय है ही नहीं। जिन्हें पिछड़ेपन से उबरने और प्रगतिशील जीवन अपनाने की वास्तविक इच्छा हो, उन्हें अपनी आदतों का पर्यवेक्षण करना चाहिए और उनमें से जो अनुपयुक्त हों, उन्हें छोड़ने-बदलने का सुनिश्चित निर्धारण करना चाहिए। सौभाग्य निर्माता, प्रगतिशील महामानवों में से प्रत्येक को यही उपाय अपनाना पड़ता है।

पराक्रम में सबसे अधिक महत्त्व का यह है, जिसमें अपनी अनगढ़ आदतों को सुधारने का श्रेय पाया जा सके। बाहरी संघर्षों से जूझने और कठिनाइयों को हटाने में दूसरे लोग भी सहायता कर सकते हैं और परिस्थितिवश श्रेय भी मिल सकता है, किंतु अपनी अनुपयुक्त आदतों को बदलना मात्र अपने निजी पुरुषार्थ के ऊपर ही रहता है, इसलिए उसे प्रबल पराक्रम की संज्ञा दी गई है और ऐसे लोगों को सच्चे अर्थों में शूरवीर कहा गया है।

विचार शक्ति को परिष्कृत करें

जो जैसा सोचता और करता है, वह वैसा ही बन जाता है। मनुष्य का विकास और भविष्य उसके विचारों पर निर्भर है। जैसा बीज होगा, वैसा ही पौधा उगेगा। जैसे विचार होंगे, वैसे कर्म बनेंगे और जैसे कर्म करेंगे, वैसी परिस्थितियाँ बन जाएँगी। इसीलिए तो कहा गया है कि मनुष्य अपनी परिस्थितियों का दास नहीं, वह उनका निर्माता, नियंत्रणकर्त्ता और स्वामी है। वास्तविक शक्ति साधनों में नहीं, विचारों में सन्निहित है।

कहते हैं मनुष्य के भाग्य का लेखा-जोखा कपाल में लिखा रहता है। कपाल अर्थात् मस्तिष्क। मस्तिष्क अर्थात् विचार। अतः मानस शास्त्र के आचार्यों ने यह उचित ही संकेत किया है कि भाग्य का आधार हमारी विचार पद्धति ही हो सकती है। विचारों की प्रेरणा और दिशा अपने अनुरूप कर्म करा लेती है। इसीलिए तो कहते हैं कि मनुष्य अपने भाग्य का निर्माता आप है।

एक मनुष्य किसी गाँव को जा रहा था। धूप-प्यास का मारा, थका हुआ एक पेड़ के नीचे ठंडी छाया में विश्राम करने लेट गया। कल्पना करने लगा-"काश! यहाँ पीने के लिए पानी होता।" इतने में पानी का झरना फूट पड़ा, उसने पानी पीकर प्यास बुझाई। फिर उसने सोचा कि कुछ खाने को होता, इतने में एक स्वादिष्ट पकवानों से भरा थाल सामने आ गया। भोजन के बाद उसने सोने के लिए कल्पना की तो पलंग आ गया। इन सब घटनाओं से डरकर उसने सोचा कहीं यहाँ कोई मायावी राक्षस तो नहीं है। इतने

में राक्षस सामने आ खड़ा हुआ। ''यह मुझे खा न जाए'' इस विचार के साथ ही वह राक्षस उस यात्री को खा गया। वास्तव में वह वृक्ष कल्पवृक्ष था, जो मन की इच्छा अनुसार फल देता था। मनुष्य का चिंतन एवं मनोबल एक प्रकार से कल्पवृक्ष ही है। उसका सदुपयोग करने वाला जीवन लक्ष्य प्राप्त करता है।

विचार आंतरिक बल और पुरुषार्थ है, उसे जिस किसी भी लक्ष्य पर नियोजित किया जाता है, उसी में तदनुरूप प्रगति होती है और सफलता मिलती है। लोग अस्त-व्यस्त और विकृत कल्पनाओं में उलझाए रहकर उसे नष्ट भी करते हैं और विकृतियों में उलझाकर अपने लिए संकट भी उत्पन्न करते हैं। लक्ष्य तक पहुँचने का पुरुषार्थ इंद्रिय शक्ति के माध्यम से ही करना पड़ता है और उसी आधार पर सफलताएँ प्राप्त होती हैं, पर इंद्रिय शक्ति को पकड़कर विशेष दिशा में लगा देने का पुरुषार्थ विचार बल द्वारा ही संभव होता है। सही दिशा में इंद्रिय शक्ति न लग पाने से उपलब्धियाँ नहीं मिलतीं। बात यहीं तक सीमित नहीं, विचार बदलते हैं तो इंद्रियाँ भी दिशा बदलती हैं और हजार परेशानियाँ मनुष्य स्वयं पैदा कर लेता है। रावण प्रकांड पंडित, विद्वान, ज्ञानी था, लेकिन उसने सत्पुरुषों जैसा व्यवस्थित चिंतन छोड़ दिया, लोलुपों का अस्त-व्यस्त क्रम अपनाया। इसलिए अपने ज्ञान का ठोस लाभ समाज को न दे सका। आदर्शनिष्ठ चिंतन छोड़कर, संकीर्ण स्वार्थगत चिंतन में, हीन कर्मों में लगा दिया और दुर्गति करा ली। उसकी रुचि के और संसार की आवश्यकता के ढेरों कार्य प्रतीक्षा में ही रखे रह गए।

विचार सूक्ष्म स्तर का कर्म है। कार्य का मूल रूप विचार है। समय की तरह विचार-प्रवाह को भी सत्प्रयोजनों में निरत रखा जाना चाहिए। जिस प्रकार समय को योजनाबद्ध कर सफलता पाई जाती है, उसी प्रकार विचार-प्रवाह को भी सुनियोजित कर, लक्ष्य विशेष से जोड़कर लाभान्वित हुआ जा सकता है।

प्रसिद्ध आर्ष दार्शनिक जब 'मीमांसा दर्शन' ग्रंथ की रचना कर रहे थे तब वे अपने कक्ष में ७ दिन तक बिना आहार लिए बंद रहे। जब बाहर निकले तो चहरे पर अभूतपूर्व तेज था एवं सफलता की मुस्कान थी। वे महत्त्वपूर्ण सूत्रों को क्रमबद्ध करके ग्रंथ की रचना पूरी कर चुके थे। ''मीमांसा दर्शन'' नामक यह ग्रंथ अध्यात्म के मूल सिद्धांतों का आधार बना। यह एक ऐसी घटना है जो विचारों की शक्ति भी बताती है व ग्रंथ रचना की पृष्ठभूमि भी।

कोई भी प्रेरणा पहले विचार के रूप में ही उठती है और मस्तिष्क उसके अनुसार योजना बनाने में निरत हो जाता है अर्थात् विचार मनुष्य को कोई कार्य करने तथा किसी दिशा में प्रवृत्त करने का भी कारण है। मनुष्य विचार करने में स्वतंत्र है। भले ही वैसी क्रिया की उसे स्वतंत्रता न हो। इसीलिए विचार जब आकांक्षा का रूप धारण कर लेते हैं तो व्यक्ति उस आकांक्षा को पूरा करने के अवसर की ताक में रहता है। अपराध कर्म या अवांछनीय कार्यों के जनक अपराधी और अवांछनीय विचार ही हैं। बाहरी परिस्थितियाँ तो विचारों के अनुरूप ही प्रभाव डालती हैं। अतः किसी दुष्कर्म का कलंक छुटाने के लिए यह नहीं कहा जा सकता कि वह आकस्मिक या परिस्थितिवश हुआ। वस्तुतः उसकी जड़ हमारे विचारों में, हमारे चिंतन में अनौचित्य के रूप में पहले ही जम चुकी थी।

एक ग्रामीण ने संत ज्ञानेश्वर से पूछा–''संयमित जीवन बिताकर भी मैं रोगी हूँ, महात्मन्! ऐसा क्यों?'' संत बोले–''पर मन में विचार तो निकृष्ट हैं। भले ही तुम बाहर से संयम बरतते रहो, मन में कलुष भरा हो, विचार गंदे हों तो वे रोगी बनाएँगे ही।''

विचार संयम का सही स्वरूप है–चिंतन की एक-एक लहर को रचनात्मक दिशाधारा में प्रवाहित करने हेतु किया गया कठोर पुरुषार्थ। अनगढ़ पशुओं की तरह मस्तिष्क रूपी झाड़ियों में उछल-कूद मचाने वाले अनावश्यक विचारों को एकाग्रता के द्वारा अथवा

उच्चस्तरीय उद्देश्यों में तन्मयता संपादन द्वारा सही दिशा दी जा सकती है। इस प्रकार समीक्षा करने पर हम पाते हैं कि विचार संयम के दो भाग हैं। एक है–निग्रह, बिखराव को समेटकर एक दिशा में लगा देना। एकाग्रता संपादन भी उसी में आता है। दूसरा है–विचारों को निकृष्ट चिंतन से हटाकर सदुद्देश्यों में नियोजित कर देना। अपने कर्मों में उत्कृष्टता को मुखरित होने देना। विचारों का असंयम ही इंद्रिय, वाणी, समय तथा अर्थ के असंयमों, शक्ति अपव्यय का मूल कारण होता है। विचारों–की–विचारों से काट, एक बहुत बड़ा पुरुषार्थ है। इसीलिए अनिवार्य है कि कुविचारों को सद्विचारों से काटने का महाभारत अहर्निश जारी रखा जाए। कुविचार और असंस्कृत विचार ही मनुष्य के सबसे बड़े शत्रु हैं और वे ही पतन के गर्त में गिराने तथा प्रगति के पथ में अवरोध उत्पन्न करने के कारण हैं। वे तभी तक ठहरते हैं जब तक कि उनका प्रबल प्रतिरोध नहीं होता। श्रेष्ठ विचारों को चिंतन क्षेत्र में स्थान मिले और उन्हें कार्यांवित होने के अवसर मिलते रहें, तो कोई कारण नहीं कि वे हमारे गुण, कर्म, स्वभाव में सम्मिलित न हो जाएँ और उज्ज्वल भविष्य के निर्माण में महत्त्वपूर्ण भूमिका प्रस्तुत न करें। कहीं से भी, किसी प्रकार से भी जीवन को श्रेष्ठ, समुन्नत बनाने वाले, सुलझे हुए उत्कृष्ट विचारों को मस्तिष्क में भरने का साधन जुटाना चाहिए। स्वाध्याय से, सत्संग से, मनन से, चिंतन से जैसे भी बन पड़े वैसे यह प्रयत्न करना चाहिए कि हमारा मस्तिष्क उच्च विचारधारा में निमग्न रहे। यदि इस प्रकार के विचारों में मन लगने लगे, उनकी उपयोगिता समझ पड़ने लगे, उनको अपनाते हुए आनंद का अनुभव होने लगे, तो समझना चाहिए कि आधी मंजिल पार कर ली गई।

जिस प्रकार हम दूसरे लोगों की समीक्षा करते हैं, दोष ढूँढ़ते और आलोचना–निंदा किया करते हैं, इसी तरह वरन् उससे भी अधिक कड़ाई के साथ अपने विचार संस्थान की, गुण–कर्म–स्वभाव की परख करनी चाहिए। यह क्रम आत्मचिंतन के लिए

एक नियत निर्धारित समय पर नित्य ही चलाना चाहिए। असत्य, छल, निष्ठुरता, व्यभिचार, बेईमानी आदि असामाजिक अपराधों पर ही नहीं, आलस्य, प्रमाद, आवेश, असहिष्णुता, कटुभाषण, अशिष्टता, अधीरता, चिंता, निराशा, कायरता आदि व्यक्तिगत दुर्गुणों पर भी नजर रखनी चाहिए और उन्हें हटाकर प्रतिपक्षी सद्विचारों और सद्भावनाओं को मनोभूमि में प्रतिष्ठापित करने का वैसा ही प्रयत्न करना चाहिए, जैसे चतुर किसान अपने सबसे अच्छे खेत में सबसे अच्छा बीज बोकर सबसे अच्छी फसल उगाने का लाभ प्राप्त करता है।

विचार निर्माण में सहायता करने वाले सत्साहित्य का क्रमबद्ध स्वाध्याय इस प्रयोजन के लिए नितांत आवश्यक है। सद्विचार संपन्न, चरित्रवान, उत्कृष्ट गतिविधियों में संलग्न व्यक्तियों का सत्संग भी बहुत सहायक सिद्ध होता है। भूलों के लिए अपने आपको एकांत में कान ऐंठने, उठक-बैठक करने, चाँटे मारने, मुर्गा बनाने, भोजन में कटौती करने जैसे शारीरिक दंड दिए जा सकते हैं। अगले दिन उन पिछले दिन वाली भूलों को न होने देने के लिए प्रातःकाल में ही निश्चय कर लिया जाए, दिनभर सतर्कता रखी जाए और रात को भूलों का लेखा-जोखा लेकर प्रायश्चित किया जाए, तो यह प्रक्रिया थोड़े ही दिनों में हमारी विचारशक्ति को परिष्कृत कर देगी।

प्रतिभाएँ परमात्मा की देन होती हैं, ऐसा माना जाता है। इसी कारण हजारों में एक वैज्ञानिक, दार्शनिक अथवा विषय विशेष का निष्णात प्रकांड पंडित बन जाता है। वस्तुतः परमपिता की यह कृपा बरसती सब पर एक साथ है, लाभ वे ही उठाते हैं, जो अपने विचारों को रचनात्मक चिंतन एवं कर्तृत्व में नियोजित कर लेते हैं। मनुष्य का चिंतन एवं मनोबल एक प्रकार से कल्पवृक्ष ही है। उसका सदुपयोग करने वाला जीवन लक्ष्य की प्राप्ति का अभीष्ट उद्देश्य पूर्ण कर सकता है।

राजा भर्तृहरि का चिंतन प्रारंभिक दिनों में हास-विलास की तरफ ही चलता था। उस कारण उनकी काव्य प्रतिभा उसी दिशा में लगी और शृंगार शतक लिखा गया। दूसरे चरण में राजनैतिक उत्तरदायित्वों पर उनका चिंतन चलने लगा, तो उनकी शक्ति उधर लगी। कुशल राजा तथा नीति शतक के रचयिता के रूप में ख्याति पाई। तीसरे चरण में चिंतन घूम गया अध्यात्म की ओर। गुरु गोरखनाथ का अनुग्रह पाया तथा वैराग्य शतक के रचयिता कहलाए। तीन तरह की उपलब्धियाँ एक ही व्यक्ति को उसके चिंतन, विचारशक्ति की दिशाधारा के आधार पर प्राप्त हुई।

आपके विचार आपके जीवन पर तो महान प्रभाव छोड़ते ही हैं, परंतु दूसरों पर, आपसे संपर्क में आने वालों पर तथा आस-पास के वातावरण में भी अपना प्रभाव छोड़ते हैं।

इमर्सन का कहना है-प्रतिभाशाली व्यक्ति जिन शुद्ध विचारों को संसार में फैलाते हैं, उनसे संसार में परिवर्तन आता है, परंतु इससे यह न समझ लेना चाहिए कि पुस्तकों, सभाओं, बातचीत, गोष्ठियों आदि में प्रकट किए गए सद्विचार ही परिवर्तन लाने वाले होते हैं, वरन् हमारे अत्यंत गुप्त विचार भी फैलते हैं तथा उनका भी समाज पर प्रभाव पड़ता है।

विचारों के अनुरूप ही प्रत्येक व्यक्ति के इर्द-गिर्द उसका अपना विशिष्ट वातावरण बना रहता है, इसीलिए जो व्यक्ति उसके संपर्क में आता है, वह उसके उद्देश्य में अवश्य ही भागीदार हो जाता है। आपके विचार आपके व्यक्तित्व से, आपके हावभाव, व्यवहार से, आपके मुख की आभा और कांति से झलकते रहते हैं।

विचारों का प्रभाव छूत के रोगों के समान होता है, वे रोग जिन्हें हम संक्रामक कहते हैं। इसीलिए विचारों को भी संक्रामक कहा गया है। जो व्यक्ति आपके संपर्क में आते हैं, उन पर आपके विचारों का संक्रमण होता है। यदि आपका मन शांत, संतुलित, स्वस्थ, सशक्त और प्रसन्न है, तो आप जहाँ भी जाएँगे, वहाँ प्रसन्नता

फैलेगी, शांति का संचार होगा। इसके विपरीत यदि आप में निराशा है, उत्साहहीनता है, आपके हौंसले पस्त हैं, तो आप जहाँ भी जाएँगे, वहाँ निराशा ही फैलेगी तथा उत्साहहीनता का ही संचार होगा और इसका असर आपके मन पर भी पड़ेगा।

यदि आप कोई अच्छा काम नहीं कर सकते, तो कम-से-कम गंदे विचारों की दूषित बेल तो न बोइए। प्रयत्न कीजिए कि आपके मन में दूसरों के प्रति दया, उदारता, सहायता, सेवा और स्नेहपूर्ण विचारों का ही उद्‌गम और पोषण हो। किसी के मन को दुर्बल मत बनाइए। किसी के मन को निष्क्रिय मत बनाइए। किसी को दीन-हीन मत बनाइए, न उनके प्रति ऐसे विचार अपने मन में आने दीजिए। ऐसा होने पर आप जहाँ भी जाएँगे, उधर ही प्रसन्नता का प्रसार होगा, लोगों के दु:ख मिटेंगे, निराशा दूर होगी, उनमें उत्साह, उल्लास और कर्मठता का संचार होगा।

आप भगवान से प्रार्थना करें 'असतो मा सद्‌गमय'-हे प्रभु! हमें असत्य से सत्य मार्ग की ओर अग्रसर होना है, हमें उधर ही ले चलें। आपको चाहिए कि आप ऐसे व्यक्ति बनें, जो सफलता के प्रतिबिंब हैं, जो दूसरों के सहायक हैं, जो दूसरों को ऊँचा उठाने का यत्न करते हैं, जो दूसरों की सहायता करते हैं, जो दूसरों को अंधकार से प्रकाश की ओर ले जाते हैं। वस्तुत: वही सच्चे सहायक हैं।

प्रयत्न कीजिए कि आपसे आशा की किरणें फूटें, उदारता की सुगंध फैले, अनुत्साही जनों में उत्साह का संचार हो। आप सदा ही स्नेह व प्रेम की मंद समीर फैलाएँ जिससे लोगों के जीवन में बहार आ जाए। □

असफलता केवल यह सिद्ध करती है कि सफलता का प्रयत्न पूरे मन से नहीं हुआ।

स्वाध्याय में कभी प्रमाद न करें

सद्विचारों की महत्ता का अनुभव तो हम करते हैं, पर उन पर दृढ़ नहीं रह पाते। जब कोई अच्छी पुस्तक पढ़ते या सत्संग-प्रवचन सुनते हैं, तो इच्छा होती है कि इसी अच्छे मार्ग पर चलें, पर जैसे ही वह प्रसंग पलटा कि दूसरी प्रकार के पूर्व अभ्यासी विचार पुनः मस्तिष्क पर अधिकार जमा लेते हैं और वही पुराना घिसापिटा कार्यक्रम चलने लगता है। इस प्रकार उत्कृष्ट जीवन बनाने की आकांक्षा एक कल्पना मात्र बनी रहती है। उसके चरितार्थ होने का अवसर प्रायः आने ही नहीं पाता।

उच्च विचारों को बहुत थोड़ी देर हमारी मनोभूमि में स्थान मिलता है। जितनी देर सत्संग-स्वाध्याय का अवसर मिलता है, उतने थोड़े समय ही तो अच्छे विचार मस्तिष्क में ठहर पाते हैं। इसके बाद वही पुराने कुविचार आँधी-तूफान की तरह आकर उन श्रेष्ठ विचारों की छोटी-सी बदली को उड़ाकर एक ओर भगा देते हैं। निकृष्ट विचारों में तात्कालिक लाभ और आकर्षण स्वभावतः अधिक होता है, चिरकाल से अभ्यास में आते रहने के कारण उनकी जड़ें भी बहुत गहरी हो जाती हैं। इन्हें उखाड़ कर नए श्रेष्ठ विचारों की स्थापना करना, सचमुच बड़ा कठिन काम है।

दस-पाँच मिनट कुछ पढ़ने-सुनने या सोचने-चाहने से ही परिष्कृत मनोभूमि का बन जाना और उसके द्वारा सत्कर्मों का प्रवाह बहने लगना कठिन है। जैसे विचारों को जितनी तीव्रता और निष्ठा के साथ जितनी अधिक देर मस्तिष्क में निवास करने का अवसर मिलता है, वैसे ही प्रभाव की मनोभूमि में प्रबलता होती चलती है।

देर तक स्वार्थपूर्ण विचार मन में रहें और थोड़ी देर सद्विचारों के लिए अवसर मिले तो वह अधिक देर रहने वाला प्रभाव कम समय वाले प्रभाव को परास्त कर देगा। इसलिए उत्कृष्ट जीवन की वास्तविक आकांक्षा करने वाले के लिए एक ही मार्ग रह जाता है कि मन में अधिक समय तक अधिक प्रौढ़, अधिक प्रेरणाप्रद एवं उत्कृष्ट कोटि के विचारों को स्थान मिले।

जिसका बहुमत होता है, उसकी जीत होती है। बहती गंगा में यदि थोड़ा मैला पानी पड़ जाए तो उसकी गंदगी प्रभावशाली न होगी, पर यदि गंदे नाले में थोड़ा गंगाजल डाला जाए तो उसे पवित्र न बनाया जा सकेगा। इसी प्रकार यदि मन में अधिक समय तक बुरे विचार भरे रहेंगे तो थोड़ी देर, थोड़े से अच्छे विचारों को स्थान देने से भी कितना काम चलेगा? उचित यही है कि हमारा अधिकांश समय इस प्रकार बीते जिससे उच्च भावनाएँ ही मनोभूमि में विचरण करती रहें।

संत इमर्सन से उनके एक मित्र से पूछा–''आपको कभी स्वर्ग जाने को कहा जाए, तो आप क्या तैयारी करेंगे?'' ''सबसे पहले अपनी सारी पुस्तकें बाँध लेंगे।'' इमर्सन बोले–''ताकि स्वर्ग में हमारा समय बेकार न जाए।''

लोकमान्य तिलक से एक मित्र ने पूछा–''आपको नरक जाना पड़े तो क्या करेंगे?'' ''अपने साथ पुस्तकें लेता जाऊँगा, ताकि स्वाध्याय द्वारा नरक को भी स्वर्ग में बदलने वाले विचार इकट्ठा कर सकूँ।'' लोकमान्य बोले।

उत्कृष्ट एवं प्रौढ़ विचारों को अधिकाधिक समय तक हमारे मस्तिष्क में स्थान मिलता रहे, ऐसा प्रबंध यदि कर लिया जाए तो कुछ ही दिनों में अपनी इच्छा, अभिलाषा और प्रवृत्ति उसी दिशा में ढल जाएगी और बाह्य जीवन में वह सात्विक परिवर्तन स्पष्ट दृष्टिगोचर होने लगेगा। विचारों की शक्ति महान है। उससे हमारा जीवन तो बदलता ही है, संसार का नक्शा भी बदल सकता है।

प्राचीन काल की तरह जीवन के प्रत्येक पहलू पर उत्कृष्ट समाधान प्रस्तुत करने वाले साधु-ब्राह्मण भी हमें उपलब्ध रहे होते, वे अपने उज्ज्वल चरित्र, सुलझे हुए मस्तिष्क और परिपक्व ज्ञान द्वारा सच्चा मार्गदर्शन करा सकते, तो कुमार्ग पर ले जाने वाली सभी दुष्प्रवृत्तियाँ शमन होतीं, पर आज उनके दर्शन दुर्लभ हैं, जो देश-काल-पात्र की स्थिति का ध्यान रखते हुए आज के बुद्धिवादी एवं संघर्षमय युग के अनुरूप समाधान प्रस्तुत करके जीवन को ऊँचा उठाने वाले व्यावहारिक सुझाव दे सकें। आज ऐसे मनीषी कहाँ हैं? उनका अभाव इतना अखरता है कि चारों ओर सुनसान दिखाई पड़ता है। ऋषियों की यह भूमि ऋषि-तत्त्व से रहित हो गई जैसी लगती है।

दुर्भाग्य एक और भी है कि स्वाध्याय के उपयुक्त साहित्य भी कहीं-कहीं ही दृष्टिगोचर होता है। आज की परिस्थितियों में जैसे भी संभव हो सके हमें ऐसा साहित्य तलाश करना चाहिए जो प्रकाश एवं प्रेरणा प्रदान करने की क्षमता से संपन्न हो। उसे पढ़ने के लिए कम-से-कम एक घंटा निश्चित रूप से नियत करना चाहिए। धीरे-धीरे समझकर विचारपूर्वक उसे पढ़ना चाहिए। पढ़ने के बाद उन विचारों पर बराबर मनन करना चाहिए। जब भी मस्तिष्क खाली रहे, यह सोचना आंरभ कर देना चाहिए कि आज के स्वाध्याय में जो पढ़ा गया था, उस आदर्श तक पहुँचने के लिए हम प्रयत्न करें। जो कुछ सुधार संभव है, उसे किसी न किसी रूप में जल्दी ही आरंभ करें। श्रेष्ठ लोगों के चरित्रों को पढ़ना और वैसा ही गौरव स्वयं भी प्राप्त करने की बात सोचते रहना, मनन और चिंतन की दृष्टि से आवश्यक है।

जितनी देर तक मन में उच्च भावनाओं का प्रवाह बहता रहे, उतना ही अच्छा है। ऐसा साहित्य हमारे लिए संजीवन बूटी का काम करेगा। उसे पढ़ना अपने अत्यंत प्रिय कामों में से एक बना लेना चाहिए। सुलझे हुए विचारों के सच्चे मार्गदर्शक न मिलने के

अभाव की पूर्ति सत्साहित्य से संभव है। आज उलझे हुए विचारों के लोग बहुत हैं। धर्म के नाम पर आलस्य, अकर्मण्यता, निराशा, दीनता, कर्त्तव्य की उपेक्षा, स्वार्थपरता, संकीर्णता की शिक्षा देने वाले सत्संगों से जितनी दूर रहा जाए उतना ही अच्छा है।

कहीं से भी, किसी प्रकार भी जीवन को समुन्नत बनाने वाले, सुलझे हुए उत्कृष्ट विचारों को मस्तिष्क में भरने का साधन जुटाना चाहिए। स्वाध्याय से, सत्संग से, मनन से, चिंतन से जैसे भी बन पड़े वैसे यह व्यवस्था करनी चाहिए कि हमारा मस्तिष्क उच्च विचारधारा में निमग्न रहे। यदि इस प्रकार के विचारों में मन लगने लगे, उनकी उपयोगिता समझ पड़ने लगे, उनको अपनाते हुए आनंद का अनुभव होने लगे तो समझना चाहिए कि आधी मंजिल पार कर ली गई।

गीता में कहा गया है–"**न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते**" अर्थात इस संसार में ज्ञान से बढ़कर और कोई श्रेष्ठ पदार्थ नहीं है। यदि हम इस संसार में सर्वश्रेष्ठ वस्तु तलाश करना चाहें तो अंततः "ज्ञान" को ही वह श्रेष्ठता प्रदान करनी पड़ेगी। इसे प्राप्तकर सामान्य श्रेणी की योग्यता एवं परिस्थितियों के व्यक्ति अत्यंत उच्चकोटि का स्थान प्राप्त करते हैं। ज्ञान को ही पारसमणि कहा गया है। लोहा पारस को छूकर सोना बन जाता है या नहीं? पारस कहीं है या नहीं? यह बातें संदिग्ध हैं, पर ज्ञान रूपी पारस स्पर्श कर तुच्छ श्रेणी के व्यक्ति ऊँचे-से-ऊँचे स्थान पर पहुँच सकते हैं, यह निर्विवाद सत्य है।

जिस ज्ञान को संसार का सर्वश्रेष्ठ पदार्थ कहा गया है, वह ज्ञान विद्या ही है। स्कूली ज्ञान तो करोड़ों मनुष्यों को है। उससे थोड़ा बाहरी विकास तो अवश्य होता है, पर आंतरिक महानता किसी की नहीं बढ़ती। आत्मनिर्माण की, चरित्र गठन की, सत्प्रवृत्तियों की भावनाएँ जाग्रत करने वाले सद्विचारों को ही सच्चा ज्ञान कहा जा सकता है। यही जीवन को सफल बनाने वाला सर्वश्रेष्ठ पदार्थ है।

इसे प्राप्त करने के लिए हम में से हर एक को शक्तिभर प्रयत्न करना चाहिए।

संसार के सर्वश्रेष्ठ तत्त्वज्ञान को प्राप्त करके जीवन सफल बनाने, उसे श्रेष्ठ दिशा में विकसित करने के लिए स्वाध्याय ही प्रधान माध्यम है। इसलिए स्वाध्याय को एक आवश्यक धर्म-कर्त्तव्य माना गया है। शास्त्र कहता है-'**स्वाध्यायान्मा प्रमदः**' अर्थात स्वाध्याय में प्रमाद न करो और '**अहरहः स्वाध्यायवेध्चेतत्थः**' अर्थात दिन-रात स्वाध्याय में लगे रहो। शतपथ ब्राह्मण में लिखा है-'**यावन्तः वाऽइमां पृथ्वी वित्तेन पूर्णां ददल्लोकं जयति त्रिस्तावन्तं जयति भूयां संचाक्षय्यं य एवं विद्वानहरहः स्वाध्यायमधीते।**' अर्थात जितना पुण्य धन-धान्य से पूर्ण इस समस्त पृथ्वी को दान देने से मिलता है, उसका तीन गुना पुण्य तथा उससे भी अधिक पुण्य स्वाध्याय करने वाले को प्राप्त होता है। इस कथन पर आश्चर्य करने की कोई बात नहीं है। भावनाओं को प्रेरणा देने का प्रमुख आधार स्वाध्याय ही वह तथ्य माना गया है जिससे प्रेरित होकर मनुष्य के विचार और कार्य सन्मार्ग की दिशा में विकसित होते हैं और यही विकास क्रम अंततः अक्षय पुण्यफल प्राप्त होने का हेतु बनता है।

शरीर, वस्त्र, मकान आदि की सफाई नित्य करनी पड़ती है, क्योंकि नित्य ही उन पर मैल जमता रहता है। इसी प्रकार मन पर भी संसार के बुरे वातावरण का मैल और कुप्रभाव निरंतर पड़ता रहता है। उसकी सफाई के लिए सत्संग और स्वाध्याय की बुहारी लगाने की नित्य ही आवश्यकता होती है। इसलिए शास्त्रकारों ने भोजन, स्नान, शयन आदि की भाँति ही स्वाध्याय को भी नित्य कर्म माना है। पानी को फैलाते ही वह तेजी से नीचे की ओर अपने आप बहने लगता है। उसी प्रकार मन का स्वभाव भी नीच कर्मों की ओर आकर्षित होना ही है। यदि उसे न रोका जाए तो वह पशु-प्रवृत्तियों की ओर ही बढ़ेगा। पानी को ऊपर ले जाना होता है तो रस्सी,

बाल्टी, पंप आदि का प्रयोग करना पड़ता है, तब कहीं वह ऊपर को चढ़ाया जा सकता है। स्वाध्याय को वह व्यवधान कहा जा सकता है जो मन रूपी पानी को कुमार्ग की ओर बहने से रोकता है। यही वह पंप है जो मानसिक वृत्तियों को उच्च मार्ग की ओर चढ़ाकर तुच्छ मानव प्राणी को महापुरुषों की, भूसुरों की श्रेणी में ले जाकर बैठा देता है। अनेक दुर्गुणों, दुर्भावों, हानियों को स्वाध्याय के आधार पर समझा जा सकता है। आत्मनिरीक्षण द्वारा उन्हें ढूँढ़ा जा सकता है और प्रयत्नपूर्वक उन्हें छोड़ा जा सकता है। आत्मशोधन और आत्मनिर्माण का सबसे प्रधान विधान 'स्वाध्याय' ही माना गया है। इसी से परमात्मा की प्राप्ति भी होती है। महर्षि व्यास का कथन है–**'स्वाध्याय-योग-सम्पत्या परमात्मा प्रकाशते'** अर्थात स्वाध्याय युक्त साधन से ही परमात्मा का साक्षात्कार होता है।

हमें अपने व्यक्तिगत एवं राष्ट्रीय चरित्र निर्माण के लिए स्वाध्याय को प्रमुख आधार मानना पड़ेगा और इसे जीवन की एक अनिवार्य आवश्यकता के रूप में जन-जन को हृदयंगम कराना पड़ेगा। जो अनेक दुष्प्रवृत्तियाँ हमारे वैयक्तिक एवं सामाजिक जीवन में घर कर गई हैं, उनकी हानियों को भली प्रकार समझने एवं त्यागने के लिए प्रेरणा देने में स्वाध्याय की शक्ति को प्रमुख उपाय मानना होगा। इसी प्रकार जो सद्भावनाएँ एवं सत्प्रवृत्तियाँ विकसित की जानी आवश्यक हैं, उनकी उपयोगिता समझने एवं ग्रहण करने के लिए उत्साह उत्पन्न करने का कार्य भी स्वाध्याय की आदत को अधिकाधिक प्रोत्साहन देने से ही संभव हो सकेगा।

किसी ने महात्मा जी से पूछा–"महात्मा जी, इस रामायण को सही माना जाए या गलत?" महात्मा जी ने उत्तर दिया–"जब रामायण की रचना की गई थी, तब मैं नहीं था। तो मैं कैसे कहूँ कि वह सही है या गलत। मैं तो केवल इतना बता सकता हूँ कि उसके पढ़ने से मैं सही हो गया हूँ। चाहो तो यह क्रम तुम भी आजमा सकते हो।"

पढ़ने का कार्य स्वाध्याय नहीं है। स्वाध्याय वही कहा जाएगा जो हमारी जीवन की समस्याओं पर, आंतरिक उलझनों पर प्रकाश डालता है और मानवता को उज्ज्वल करने वाली सद्प्रवृत्तियों को अपनाने की प्रेरणा देता है। सच्चे निस्वार्थी आत्मीय मित्र मिलना बहुत अच्छा है, लेकिन हम में से बहुतों को इस संबंध में निराश ही होना पड़ता है, लेकिन अच्छी पुस्तकें सहज ही हमारी सच्ची मित्र बन जाती हैं। वे हमें सही रास्ता दिखाती हैं, जीवन पथ पर आगे बढ़ने में हमारा साथ देती हैं। महात्मा गाँधी ने कहा है–"अच्छी पुस्तकें पास होने पर हमें भले मित्रों की कमी नहीं खटकती, वरन मैं जितना पुस्तकों का अध्ययन करता हूँ, उतनी ही वे मुझे उपयोगी मित्र मालूम होती हैं।"

स्मरण रखिए पुस्तकें जाग्रत देवता हैं। उनके अध्ययन, मनन, चिंतन के द्वारा पूजा करने पर तत्काल ही वरदान पाया जा सकता है। हमें नियमित रूप से सद्ग्रंथों का अवलोकन करना चाहिए। उत्तम पुस्तकों का स्वाध्याय जीवन का आवश्यक कर्त्तव्य बना लेना चाहिए।

दूसरों के साथ वैसी ही उदारता बरतो,
जैसी ईश्वर ने तुम्हारे साथ बरती है।

इंद्रिय संयम से शक्ति भंडार बढ़ाइए

मनुष्य के शरीर और मन में शक्तियों का अकूत भंडार भरा पड़ा है। उसको नष्ट होने से बचाया जा सके और उस बचत का सदुपयोग किया जा सके, तो अभीष्ट दिशा में आशाजनक सफलताएँ प्राप्त की जा सकती हैं। इस तथ्य को न समझकर हम अपनी बहुमूल्य शक्तियों का निरर्थक अपव्यय करते रहते हैं और ईश्वर प्रदत्त शक्ति भंडार को खोकर खोखला, रुग्ण, अशक्त और असफल जीवन जीते हुए मौत के दिन पूरे करते हैं।

शरीर और मन अपने-अपने आहारों द्वारा शक्तियों का निरंतर संपादन करते रहते हैं और हमारा सामर्थ्य भंडार निरंतर बढ़ता रहता है। इस उत्पादन को यदि अपव्यय से बचाया जा सके और उसे रचनात्मक दिशा में प्रयुक्त किया जा सके, तो निस्संदेह किसी भी दिशा में आशाजनक प्रगति का सुयोग मिल सकता है।

असुरों से बारंबार पराजित होने पर देवगणों ने इसका कारण एक दिन भगवान से पूछा तो उन्होंने कहा कि शक्तियों की रक्षा संयम से होती है। जो सुख, सुविधा, वैभव, ऐश्वर्य पाकर विलास- उपभोग में डूब जाते हैं, उन्हें पराजय का मुख देखना पड़ता है। वे आप विलासी देवगणों की तरह ठोकरें खाते रहते हैं। यह मानव अपरिमित शक्तियों से परिपूर्ण है जो इनका संयमपूर्वक सदुपयोग कर लेते हैं, वे पराजय का मुँह देखने से बच जाते हैं। देवता यदि कहीं हैं तो हमारे ही अंदर सत्प्रवृत्तियों के रूप में और असुर हैं तो वे भी हमारे ही अंदर पाशविक प्रवृत्तियों

के रूप में हैं। जो संयमी, समर्थ, विवेकशील होते हैं, वे पाशविक वृत्तियों को अपने ऊपर हावी नहीं होने देते।

संयम का अर्थ है–शक्तियों के अपव्यय को रोकना। यह अपव्यय अधिकतर हमारी इंद्रियों द्वारा होता है। इंद्रियों में दो प्रमुख हैं–एक जिह्वा, दूसरी जननेंद्रिय। जिह्वा के द्वारा निरर्थक बकवास, निंदा, चुगली, शेखी, गप्पें हाँकना, असत्य एवं कटुवचन बोलने से जिह्वा की बहुत भारी शक्ति का अपव्यय होता है, मनोबल नष्ट होता है। अनर्गल बकवास पर नियंत्रण रखा जाए, उतना ही नपा-तुला बोला जाए, जितना अपने और दूसरों के लिए आवश्यक हो। असत्य, कटु और निरर्थक न बोलने का जिह्वा संयम यदि बरता जाए तो वाणी इतनी प्रभावशाली हो सकती है कि इसका दूसरों पर आश्चर्यजनक प्रभाव पड़े और वरदान-आशीर्वाद देने की क्षमता उत्पन्न हो जाए।

जिह्वा का दूसरा असंयम है–चटोरापन। स्वाद का आकर्षण, अवांछनीय, अभक्ष्य पदार्थों को खाने के लिए ललचाना, अधिक खाने की इच्छा से भोजन की बढ़ी हुई मात्रा और मसालों का मंद विष पेट पर भार बनता है और उसे दिन-पर-दिन दुर्बल करता चला जाता है। अपच के कारण पेट में विषैली सड़न पैदा होती है, जो शरीर के विभिन्न अंगों में पहुँचकर वहाँ विभिन्न रोगों को उत्पन्न करती चली जाती है और व्यक्ति व्यथा-पीड़ाएँ भोगता चला जाता है। लोग समझते हैं कि हमने जायकेदार और कीमती चीजें खाकर मजा उठाया, पर वस्तुतः यह तो अपने पैरों पर आप कुल्हाड़ी मारने जैसा है। यदि औषधि की तरह व्यक्ति सात्विक आहार करे तो पेट खराब न हो, दुर्बलता एवं रुग्णता का शिकार न होना पड़े और हमारे स्वास्थ्य, आनंद और दीर्घजीवन पर कुठाराघात न हो। एक बार धन्वंतरि काशी में वाग्भट्ट को उपदेश देने आए थे। जब उन्होंने पूछा–"कोऽरुक्" स्वस्थ कौन रहता है? तो धन्वंतरि बोले–"मितभुक्, ऋतभुक्, हितभुक्

अर्थात् कम, ऋतु के अनुकूल और उपयोगी भोजन करने वाला स्वस्थ रहता है।''

आहार उतना ही लें जितना शरीर निर्वाह के लिए जरूरी है। ''जैसा खाए अन्न वैसा बने मन'' की उक्ति सर्वविदित है। आहार से रक्त-मांस ही नहीं, विचार संस्थान और अंतःकरण भी प्रभावित होता है।

जननेंद्रिय का संयम और भी अधिक महत्त्वपूर्ण है। शरीर जो कुछ उपलब्ध करता है, उसका सार तत्त्व दूध में से घी की तरह बनता है। इसी का नाम ओजस है। चेहरे पर चमक, वाणी में प्रभाव, आँखों में ज्योति, मस्तिष्क में मेधा, स्वभाव में साहस इसी तत्त्व का प्रतिफल है। इसमें इतनी सामर्थ्य है कि अपने जैसे कितने ही नए मनुष्य विनिर्मित कर सके। इस आश्चर्यजनक शक्ति को सर्प की मणि की तरह कहा जा सकता है। कहते हैं, सर्प अपनी मणि जब खो बैठता है, तब उसकी देह निर्जीव जैसी हो जाती है। मनुष्य की भी ऐसी ही स्थिति है। इस सार तत्त्व का जितना अपव्यय करता है, उतना ही दुर्बल बनता चला जाता है। दो संत एक वर्ष बाद जब यात्रा से वापस लौटे, तो देखा कि जिस सघन वृक्ष की छाया में उन्होंने जाते समय भोजन विश्राम किया था, वह गिरा पड़ा है। इस पर पहले संत ने अपने से आयु-अनुभव में वरिष्ठ संत से पूछा, ''महात्मन्! इतनी जल्दी, इतने कम समय में यह वृक्ष कैसे गिर गया?'' संत बोले-''तात्! यह वृक्ष छिद्रों के कारण गिरा है। इसका जीवन रस गोंद जो सतत् बहता रहता था। उसे पाने की लालसा में मनुष्य ने छेदकर इसे खोखला बना दिया। खोखली वस्तु कभी खड़ी नहीं रह सकती, झंझावातों को सहन नहीं कर पाने के कारण ऐसी गति होती है।'' कामुक व्यक्ति न नीरोग रह सकते हैं और न दीर्घजीवन का आनंद ले सकते हैं। उन्हें अनेक रोग घेरे रहते हैं और मनस्विता गँवाकर दीन, दुर्बल, कायर, भीरु, अस्थिर और अन्यमनस्क बनते चले जाते हैं। ऐसे व्यक्तियों की संतान भी

दुर्बल और रुग्ण उत्पन्न होती है। कामुकता पर अंकुश लगाना, ब्रह्मचर्य का समुचित ध्यान रखना, जननेंद्रिय पर संयम बरतना हर विचारशील व्यक्ति के लिए आवश्यक है। विवाह का उद्देश्य दो आत्माओं का पवित्र गठबंधन है। एक-दूसरे के शारीरिक-मानसिक सार तत्त्व को नष्ट-भ्रष्ट करने में जुट जाने का नाम विवाह-मैत्री नहीं है, यह तो प्रत्यक्ष शत्रुता है।

दांपत्य जीवन के बाहर का दुराचार तो अति कुत्सित है। अप्राकृतिक क्रियाओं का लुक-छिपकर प्रयोग आज नवयुवकों में बहुत बढ़ चला है। नर-नारी के बीच पवित्र संबंधों की पुण्य-परंपरा में विष घोलना हर दृष्टि से अवांछनीय है। प्रेम और मैत्री का अर्थ कामुकता नहीं है। शुभचिंतक और हितैषी होने का अर्थ अपने प्रिय पात्र का चरित्र गिराना और उसे अपने गृहस्थ जीवन के प्रति अनास्थावान बनाना नहीं है। नर और नारी में भी पवित्र प्रेम हो सकता है। इसमें कोई दोष नहीं, पर जब वह मैत्री कामुकता से विषाक्त होने लगे तो समझना चाहिए कि सद्भावना की आड़ में दुष्ट प्रयोजन खुलकर खेल रहे हैं। अच्छा हो यह मित्रता विषाक्त होने से बची रहे और इसके दूरगामी दुष्परिणामों के कुफल व्यक्ति और समाज को न भोगने पड़ें।

अन्य इंद्रियाँ भी ऐसी ही हैं, जिन्हें संयम की शिक्षा मिलनी चाहिए। आँखों में शुद्ध सौंदर्य की आकांक्षा तो बनी रहे, पर कामुकता की दुर्भावना से चारों ओर बिखरे सौंदर्य को न निहारें। इससे मिलने वाला कुछ नहीं, केवल आंतरिक शक्ति नष्ट होगी और अकारण उद्विग्नता बढ़ेगी, मन कलुषित होगा, कुमार्ग पर कदम बढ़ेंगे और अंततः पतन के पथ पर लुढ़क पड़ने का अवसर आ जाएगा। आँखों के लिए यही उपयुक्त है कि वे सौंदर्य को उत्कृष्ट आध्यात्मिकता की पवित्र दृष्टि से देखें और हर घड़ी प्रमुदित और संतुष्ट रहने की ही स्थिति प्राप्त करें। शिवाजी के सैनिक शत्रु पक्ष की एक सुंदर युवा लड़की को बदले की भावना से पकड़कर ले

आए और उसे शिवाजी के सामने प्रस्तुत किया। शिवाजी ने ध्यानपूर्वक युवती को देखा, मुस्कराए और ससम्मान उसे उसके घर तक पहुँचा देने की सैनिकों को आज्ञा दी। विदा करते हुए शिवाजी ने अपने दरबारियों से कहा–काश, मेरी माता जीजाबाई इतनी ही सुंदर होती, तो आज मैं भी ऐसा ही सुंदर होता। कान शृंगार और अश्लीलता सुनने के लिए लालायित न रहें। निंदा, चुगली में रस न लें। बहुत कुछ आवश्यक तथ्य सुनने के लिए शेष हैं, उन्हीं के लिए प्रवृत्ति क्यों न मोड़ी जाए? नासिका मांस-मदिरा जैसे अभक्ष्यों की दुर्गंध को सहन क्यों करे? नासिका की स्वाभाविक प्रीति स्वच्छता और सात्विकता को पसंद करने में है। अच्छा हो हमारी नासिका सही पथ प्रदर्शन करने में समर्थ बनी रहे।

संयम अर्थात् शक्तियों का संयम, असंयम अर्थात् सामर्थ्य की बरबादी। यह मोटा तथ्य है कि बरबादी का अवलंबन करने वाला एक दिन दिवालिया बन जाता है और जो थोड़ा-थोड़ा बचाता रहता है, उसकी संपदा समय-समय पर अनेक सुविधाएँ प्रस्तुत करती है। इंद्रियों का संयम अपने आपको बरबादी से बचाकर समृद्धि की ओर अग्रसर करने का बुद्धिमत्तापूर्ण प्रयास है। इसी में हम सबका कल्याण है।

सार्थक और प्रभावी उपदेश वह है जो वाणी से नहीं, अपने आचरण से प्रस्तुत किया जाता है।

ब्रह्मचर्य

'ब्रह्मचर्य' का अर्थ है–ब्रह्म अर्थात परमात्म–तत्त्व में विचरण करना। दूसरे शब्दों में अपने मन, संयम और सदाचार द्वारा उत्कृष्टता की ओर मन, वचन और कर्म से अग्रसर होना। यह जीवन की उच्च भूमिका है। इसके लिए दीर्घकालीन अभ्यास की आवश्यकता है। ब्रह्मचर्य का दूसरा अर्थ है, जननेंद्रिय का संयम। वस्तुतः ब्रह्मचर्य एक प्रकार का व्रत और तप है, जिसके द्वारा मनुष्य को जीवन साधना में निरत रहना पड़ता है।

ब्रह्मचर्य सबसे श्रेष्ठ तपश्चर्या है। ब्रह्मचर्य एक विशेष प्रकार के रहन–सहन, संयम–अनुशासन पूर्ण जीवन जीने की भाव–विचार प्रधान प्रक्रिया का नाम है। इस दृष्टि से कोई भी व्यक्ति आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करते हुए ब्रह्मचारी बनकर रह सकता है। पहले तो लोग ऐसा जीवन आमतौर पर बिताया ही करते थे। आज भी ऐसा जीवन जीने वाले महामानवों की कमी नहीं है।

ब्रह्मचर्य से बुद्धि प्रखर होती है, इंद्रियों की उछल–कूद बंद होती है, स्मरण शक्ति तीव्र होती है, मनन शक्ति का विकास होता है, चित्त में एकाग्रता आती है, आत्मिक बल बढ़ता है, आत्मनिर्भरता, निर्भीकता और साहसिकता जैसे गुण स्वतः जाग्रत होने लगते हैं। विद्यार्थी जीवन से ही ब्रह्मचर्य पालन से शरीर दृढ़, मन पवित्र और आत्मा निर्मल होती चली जाती है, तेज बढ़ता है, उत्साह में वृद्धि होती है। स्वास्थ्य, आयु, तेज, विद्या एवं शक्ति–सामर्थ्य सब ब्रह्मचर्य पर ही आश्रित है।

महर्षि दयानंद की बीकानेर के महाराज से मित्रता थी। वे अकसर स्वामी जी से अपने ब्रह्मचर्य की शक्ति के प्रदर्शन की बात कहा करते थे, पर स्वामी जी हँसकर टाल देते थे। एक दिन महाराज चार घोड़ों की बग्घी जोतकर प्रातः भ्रमण के लिए तैयार हुए। कोचवान ने घोड़ों को चलने के लिए बहुत चाबुक फटकारा। घोड़े पूरी ताकत लगाकर बढ़े, किंतु एक इंच भी आगे न बढ़ सके। बात क्या है, यह देखने के लिए नरेश ने पीछे मुड़कर देखा, तो पाया कि महर्षि ने एक हाथ से बग्घी पकड़ रखी है। वे संयम की इतनी शक्ति देखकर आश्चर्यचकित रह गए।

भारतीय परंपरा में आयु को चार भाग या चार आश्रमों में बाँटा गया है। पहला भाग जो कि जन्म से लेकर पच्चीस वर्षों तक का माना जाता है, उसे ब्रह्मचर्य आश्रम कहते हैं। जिसके अनुसार जीवन के इस काल में युवकों को संयम-अनुशासन में रहते हुए अपने लिए उचित एवं योग्य हर प्रकार की विद्याओं का अध्ययन करके पूर्ण विकसित एवं सुरक्षित बनकर भावी जीवन में प्रवेश करने की तैयारी करनी चाहिए। सादा जीवन-उच्च विचार उनके आदर्श होने चाहिए।

विदेशों के विद्वानों ने भी ब्रह्मचर्य के महत्त्व को स्वीकार किया और उसकी बड़ी प्रशंसा की है। अमेरिका के प्रसिद्ध प्राकृतिक चिकित्सक डॉ. बेनीडिक्ट लुस्टा का कथन है-जितने अंशों तक जो मनुष्य ब्रह्मचर्य की विशेष रूप से रक्षा करता है, उतने अंश तक वह मनुष्य विशेष महत्त्व का कार्य कर सकता है। प्रो० रोबन्सन ने सम्मति दी है-ब्रह्मचारी की बुद्धि कुशाग्र और विशद होती है, उसकी वाणी मोहक होती है, उसकी स्मरण शक्ति तीव्र होती है, उसका स्वभाव आनंदी और उत्साही होता है। डॉ० गोल एम० डी० का मत है-ब्रह्मचर्य से आध्यात्मिक शक्ति मिलती है। शरीर में वीर्य के संचय से और व्याप्त होने से दैवी शक्ति में अद्‌भुत वृद्धि होती है।

नैपोलियन २५ वर्ष की आयु तक काम-सुख तो क्या नारी के प्रति भी आकृष्ट नहीं हुआ था। न्यूटन के मस्तिष्क में यौनाकर्षण उठा होता, तो अपना बुद्धिकौशल सृष्टि के रहस्य जानने की अपेक्षा अपरिमित काम-सुख प्राप्त करने में झोंक दिया होता। जन्मजात प्रतिभाएँ अधोमुखी ही नहीं, ऊर्ध्वमुखी भी होती हैं और उनसे काम-सुख की अपेक्षा अधिक सुख लोगों को मिलता है। हमारे देश में तो सच्चे और शाश्वत सुख की प्राप्ति में काम-वासना को प्रधान बाधा माना गया है। रामकृष्ण परमहंस विवाहित होकर भी योगियों की तरह रहे। स्वामी रामतीर्थ और भगवान बुद्ध ने तो ऊर्ध्व सुख के लिए युवा तरुणी पत्नी का परित्याग तक कर दिया था। महात्मा गाँधी ने ३६ वर्ष की अवस्था के बाद काम-वासना को बिलकुल नियंत्रित कर दिया था, तो भी उनके जीवन में प्रसन्नता का फौबारा फूटता रहता था। वस्तुतः यौन-उल्लास को सही दिशा में मोड़ देना ही काम-बीज का परिष्कार है। बलात् मन पर अंकुश लगाने के स्थान पर, कड़ी तितीक्षा का मार्ग अपनाने के बजाय अंतः की सामर्थ्य को सही दिशा दे दी जाए, तो अनेक फलदायी परिस्थितियाँ उत्पन्न जा सकती हैं।

ब्रह्मचर्य का प्रभाव—ब्रह्मचर्य पालन जीवन का अनिवार्य पहलू है। ब्रह्मचर्य के बल पर मनुष्य में अनेक गुण विकसित होते हैं। संसार में कुछ भी नीरोग, सुंदर, रूपवान, कांतिवान, मनोहर और जो कुछ वीरता, ओज, पराक्रम, बुद्धिमत्ता, सौम्यता, श्रेष्ठता आदि गुणों से जो समझा जाता है, वह सब ब्रह्मचर्य का ही प्रतिफल है। ब्रह्मचर्य पालन करने वाला व्यक्ति ही वीरता और विजय का वरण करता है, जबकि ब्रह्मचर्य का अभाव पतन-पराभव और विनाश का ही हेतु बनता है। फिर भी वर्तमान की विडंबना यह है कि नित्यप्रति के जीवन में ब्रह्मचर्य का अभाव ही दृष्टिगोचर होता है। वे युवा जो ब्रह्मचर्य की रक्षा नहीं कर पाते, डरपोक, दीन-हीन, रोगी और दुर्बल होते हैं। ब्रह्मचर्य से ही पुरुषार्थ

बढ़ता है। जो पुरुषार्थी है, वही साहस और हिम्मत से काम लेता है, कठिनाइयों का मुकाबला करता है, उत्साही, सजीव, शक्तिशाली और दृढ़ निश्चयी होता है, उसे रोग नहीं सताते, वासनाएँ चंचल नहीं बनातीं और दुर्बलताएँ विवश नहीं करतीं। वह प्रभावशाली व्यक्तित्व प्राप्त करता है। दया, क्षमा, शांति, परोपकार, प्रेम और सद्भाव उसके जीवन में छलकते रहते हैं। जो कम-से-कम पच्चीस वर्ष की आयु तक मन, वचन और कर्म से दृढ़तापूर्वक ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं, वे स्वयं को जीवनी-शक्ति से भरपूर महसूस करते हैं। वे ओजवान और बलवान बनते हैं। उनके अंग-अंग पर सौंदर्य छलकने लगता है। उनके मुखमंडल पर अभिनव आभा देखी जा सकती है।

ब्रह्मचर्य का पालन न करने वाला व्यक्ति हीनत्व की भावना से ग्रसित हो जाता है। उसका किसी काम में मन नहीं लगता, सुस्त रहता है, स्वभाव चिड़चिड़ा हो जाता है, क्रोधी बन जाता है, उसके मन में गंदे, कामुक विचार घुमड़ते रहते हैं। वह अश्लील चित्र देखना और अश्लील किताबें पढ़ना पसंद करता है। शृंगार प्रधान उपन्यासों, विषय-वासना संबंधी पुस्तकों में ही रस लेता रहता है। गंदी फिल्में, गंदे गीत और अश्लील हरकतें, बस यही उसकी नियति बन जाती है। जिसका मन-मस्तिष्क इन हरकतों में लगा हो, क्या वह विद्यालयीन पढ़ाई में रुचि लेगा? ऐसे लड़के-लड़कियाँ न पढ़ते हैं और न औरों को पढ़ने देते हैं। सोचिए इनसे आप कैसे बचेंगे?

यह तो एक असंयमी के मानसिक स्तर की बात हुई। अब उसकी शारीरिक स्थिति देखिए। शरीर में कमजोरी, पिंडलियाँ सुती हुई, त्वचा मुरझाई हुई, कपोल धँसे हुए, नेत्र रूखे, गालों पर मुहाँसों के दाग, झाँईं, काले चकत्ते, जोड़ों में दरद, हथेली और तलवे पसीजना, अपच और कब्जियत, रात्रि में स्वप्नदोष, आँखों के सामने अँधेरा छा जाना, थोड़े-से परिश्रम से थक जाना, चक्कर

आना, मूर्च्छा आ जाना आदि वे शारीरिक कमजोरियाँ हैं जो ब्रह्मचर्य का पालन न करने वाले युवकों में प्रायः पाई जाती हैं। यहाँ तक कि ऐसे युवकों को गरमी, सुजाक आदि निंदनीय रोग घेर लेते हैं।

विजय प्राप्त करके देवता महर्षि दत्तात्रेय के पास आए और पूछने लगे–"भगवन्! दो बार पराजय और अंतिम बार विजय का रहस्य क्या है?" महर्षि ने बताया–"जब तक मनुष्य सदाचारी-संयमी रहता है, तब तक उसमें उसका पूर्ण बल विद्यमान बना रहता है और जब वह कुपथ पर कदम रखता है, तो उसका आधा बल क्षीण हो जाता है। पर-नारी का अपहरण करने की कुचेष्टा में असुरों का बल नष्ट हो गया था, इससे उन्हें जीतना सरल हो गया।"

ब्रह्मचर्य की रक्षा करें–किशोरावस्था से यौवन में प्रवेश का समय बड़ा नाजुक होता है। यदि युवक सँभल जाएँ तब तो ठीक है अन्यथा बिगड़ने और कुमार्ग पर जाने के लिए समाज में इतने प्रलोभन फैले हुए हैं कि अच्छे परिवारों के युवक भी बुरे मार्ग पर कदम बढ़ाने लगते हैं। यौवन ब्रह्मचर्य पर निर्भर है। संयम से रहिए, यौवन की रक्षा स्वतः हो जाएगी।

टेलीविजन, सिनेमा, गंदा साहित्य ये तीनों युवकों का मटियामेट करने में लगे हैं। ये अश्लीलता भड़काते हैं और युवकों को गंदी राह बताते हैं। आप घरों में टेलीविजन देख रहे हैं, पर देखते समय केवल उसी पर ध्यान केंद्रित कीजिए, जिसका जीवन निर्माण से निकट का संबंध हो। फूहड़ को देखकर क्या करोगे? उसे छोड़ दीजिए और सार तत्त्व को ग्रहण कर लीजिए। अगर आप में इस प्रकार की निर्णायक शक्ति विकसित हो गई तो आप टेलीविजन, सिनेमा के कुप्रभाव से बचे रह सकेंगे। केवल मनोरंजन करने वाले अथवा ज्ञान प्रदान करने वाले सीरियल ही देखें।

ब्रह्मचर्य हमें जीवन में सादगी एवं उच्च विचार अपनाने की शिक्षा एवं प्रेरणा देता है। इसके साथ ही सहयोग, सहचर्य और

पवित्र ढंग से जीवन निर्वाह का मार्ग भी प्रशस्त करता है। ब्रह्मचर्य के बल पर मानव महामानव की स्थिति में पहुँच जाता है।

ब्रह्मचर्य रक्षा के उपाय–

(१) सूर्योदय से पूर्व उठना, नित्य प्रातः घूमना, दौड़ लगाना।

(२) योगासन-प्राणायाम करना।

(३) अंकुरित अन्न का नाश्ता करना। तेल, खटाई, मिर्च-मसालों का प्रयोग कम करना।

(४) कोई वासनात्मक विचार तरंग आते ही मन-ही-मन दोहराने लगना कि मैं विशुद्ध आत्मा हूँ। इंद्रियाँ मेरे वश में हैं, मैं शुभ सोचता हूँ। मेरा संकल्प महान है। मैं विषय वासना के चंगुल में नहीं फँस सकता।

(५) ब्रह्मचारी बनने में शान समझना।

(६) मन को शुद्ध और सात्विक विचारों में लगाए रखना।

(७) सदाचारी बनने का संकल्प करना।

(८) लड़कियों के प्रति पवित्रता का भाव रखना।

(९) नर्तकियों, अभिनेत्रियों के गायन-वादन, नृत्य-अभिनय का चिंतन और स्मरण न करना।

(१०) शरीर अपना हो या पराया उसे मिट्टी का लोंदा समझना। आत्मा, चेतना, प्राण पर विचार करना। ऐसे में वासना भाग खड़ी होगी।

संकल्प करें कि सदाचारी बनकर आगे बढ़ेंगे और दूसरों को बढ़ाएँगे।

उन्हें मत सराहो जिनने अनीतिपूर्वक सफलता पाई और संपत्ति कमाई।

साधन संपदा का सदुपयोग करें

साधनों की कहीं कमी नहीं। वे योग्यता, श्रमशीलता और मनोयोग बढ़ाकर अभीष्ट मात्रा में उपार्जित किए जा सकते हैं। ईमानदारी से कमाने और सद्प्रयोजनों में ही उन्हें प्रयुक्त करने वाले धन को सार्थक बनाते हैं। धन की थोड़ी मात्रा भी सदुपयोग के आधार पर महान प्रतिफल प्रदान करती है, जबकि विपुल संपदा वाले भी उसका दुरुपयोग करने पर उसे नष्ट करते, साथ ही स्वयं भी नष्ट होते हैं। छेद होने पर नौका पानी में डूब जाती है।

यह एक स्मरणीय तथ्य है कि योग्यता, श्रम और मनोयोग के संयोग से ही साधन बनते हैं, बढ़ते हैं। धन सार्थक बनता है, नेकी से कमाने और भलाई में खर्च करने से, घातक बनता है दुरुपयोग से। छोटी-सी छिद्रहीन नौका पार कर देगी, बड़ी-से-बड़ी छेद वाली होगी तो डुबा देगी। साधन कमाना मनुष्य के हाथ में है। गई-गुजरी परिस्थतियों में भी अनेक व्यक्तियों ने पुरुषार्थ के माध्यम से साधन जुटाकर स्वयं को संपन्न बनाया है। योग्यता अकेली पर्याप्त नहीं। योग्यता के साथ परिश्रम एवं काम में तन्मयता का संपुट न हो तो वह भी निरर्थक ही चली जाती है। एक बार कमा लेने पर भी उसके यदि सदुपयोग का मार्ग न बनाया गया तो वह सारा परिश्रम व्यर्थ ही जाता है, उपार्जनकर्त्ता को कष्ट पहुँचाता व अपयश का भागी बनाता है।

जीवन निर्वाह के लिए कई वस्तुओं की आवश्यकता पड़ती है। इस आवश्यकता को पूरा करने के लिए श्रम चाहिए, पर श्रम द्वारा सभी आवश्यक वस्तुएँ जुटाने में बड़ा समय चाहिए, इसलिए

यह व्यवस्था की गई है कि श्रम का मूल्य धन के रूप में प्राप्त कर लिया जाए और उस धन से अपनी विभिन्न आवश्यकताएँ पूरी होती रहें। धन कमाने का मुख्य उद्देश्य जीवनयापन के लिए दैनिक एवं मूल आवश्यकताओं को पूरा करना ही है।

समय के प्रभाव से आज पैसे का मनुष्य-जीवन में महत्त्वपूर्ण स्थान है। मनुष्य की लघुता-महानता अब पैसे के कमाने से नापी जाने लगी है। पैसे के द्वारा सब सुख-सामग्रियाँ, सब प्रकार की योग्यता और शक्तियाँ खरीद ली जाती हैं। आज जो अनुचित, अत्यधिक महत्त्व पैसे को प्राप्त है, उसकी ओर ध्यान न दिया जाए तो भी इतना तो मानना ही पड़ेगा कि पैसे की आवश्यकता हर एक को है। भोजन, वस्त्र एवं मकान की जरूरत पड़ती है। अतिथि सत्कार, परिवार का भरण-पोषण, बच्चों की शिक्षा, विवाह, चिकित्सा, दुर्घटना, अकाल, आपत्ति आदि के लिए थोड़ा बहुत पैसा हर परिवार के पास रहना आवश्यक है।

यों तो जीवन की आवश्यकताएँ कितनी हैं, इसकी कोई सीमा या कसौटी नहीं है। मनुष्य की कुछ आवश्यकताएँ अनिवार्य होती हैं, कुछ साधारण और कुछ बहुत ही आवश्यक। अपनी आर्थिक स्थिति को देखकर ऐसी व्यवस्था बनानी चाहिए कि अनिवार्य आवश्यकताओं की पूर्ति पहले हो और फिर दूसरी आवश्यकताएँ पूरी हों।

बहुत से लोग धन की उपयोगिता झूठी शान-शौकत, दिखावा, फैशन परस्ती एवं दुर्व्यसनों की पूर्ति में ही समझते हैं। ऐसा करना उनके लिए तो हानिकारक है ही, समाज के लिए भी हानिकारक होता है, क्योंकि गरीब लोग जिनके पास अनिवार्य आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए धन नहीं होता, वे ऐसे शान-शौकत, दिखावे और फैशन-परस्ती को बड़प्पन समझते हैं और पर्याप्त साधन न होने पर दूसरों से ईर्ष्या रखते हैं। अपव्यय के कारण बरबाद हुए समृद्ध परिवारों के भी अनेक

उदाहरण हैं। अपव्यय का एक मात्र कारण हमारी अदूरदर्शिता है। धन को हमने झूठी शान-शौकत की पूर्ति का साधन मान लिया है जो केवल मनुष्य का थोथापन ही है। अच्छा तो यह है कि अपने पास इतना पैसा हो कि आवश्यकता पूर्ति के बाद कुछ बचे तो आड़े वक्त काम आए या किसी और कार्य में लगाया जा सके।

गाँधी जी ने रेल में सफर कर रही एक स्त्री से कहा- ''बहन! अच्छे कपड़े नहीं पहन सकतीं तो कम-से-कम इन्हें साफ तो कर लिया करो।'' स्त्री बोली-''क्या करूँ बापू! धोती एक ही है। इसी को आधी धोकर निचोड़ लेती हूँ, फिर स्नान करके आधी सुखा लेती हूँ। आप बताइए इसे धोऊँ कैसे?'' गाँधी जी की आँखों में आँसू आ गए। वे बोले-''जिस देश में इतनी निर्धनता हो, वहाँ फैशन-परस्ती नहीं चल सकती।'' यह कहकर उन्होंने आधी धोती पहनकर कंबल ओढ़ने की प्रतिज्ञा की और मरते दम तक उसी सरलता से जीवन बिताया।

यह मानना भूल है कि जितनी शान-शौकत का प्रदर्शन करेंगे, जितने ठाठ-बाट से रहेंगे और अपनी आवश्यकताओं को जितना अधिक बढ़ा लेंगे, लोग हमें उतना ही सुखी समझेंगे। लोग भले ही समझने लगें कि आप सुखी हैं, पर इन व्यर्थ की आवश्यकताओं को बढ़ा लेने से जो आर्थिक परेशानियाँ खड़ी हो जाती हैं, वे हमें बड़ी बुरी तरह दुःखी और संत्रस्त करके रख देती हैं। ये कृत्रिम आवश्यकताएँ ऐसा दुर्गुण हैं, जिससे मनुष्य अपने पैरों पर अपने आप कुल्हाड़ी मारता है। इससे आर्थिक कठिनाइयाँ तो आती ही हैं साथ ही व्यक्तिगत और परिवार की उन्नति में भी बाधा पड़ती है।

फैशन के व्यसन से आज सभी ग्रस्त हैं। फैशन बढ़ाने के कारण न केवल अपव्यय हो रहा है, बल्कि अंग-प्रदर्शन फैशन का अंग बन गया है और हमारे नैतिक मूल्यों पर इसका बड़ा गहरा असर पड़ रहा है। परिवार में झगड़े, कटुता आदि बुराइयाँ इस धन

के लालच और लालसा के कारण पनपती जा रही हैं। विद्यार्थी वर्ग इससे अछूता नहीं बचा है, बल्कि उनमें फैशन और दिखावे की लालसा बड़ी विकृत होती जा रही है। माँ-बाप जो अपने बच्चों के लिए फैशन की पूर्ति नहीं कर सकते, उनकी बुरी आदतों की पूर्ति के लिए पैसा नहीं दे सकते, वे बच्चों की निगाह में गिरे हुए हैं या फिर आर्थिक संकट उठा रहे हैं।

वस्त्रों की आवश्यकता होती है तन को ढकने के लिए, सरदी-गरमी से उसका बचाव करने के लिए। फिर क्यों जरूरी है कि कपड़ा बड़ा महँगा, कीमती और नई तर्जों एंवं डिजायनों में हो। पेट भरने के लिए सात्विक, पौष्टिक भोजन आवश्यक है, लेकिन अपने स्वाद के लिए, बड़प्पन जताने के लिए मिठाइयाँ, पकवान, चाट-पकौड़ी और न जाने क्या-क्या उड़ाते हैं, बीमार पड़ते हैं और अपनी कमाई का पैसा गँवाते हैं। यदि पेट भरने और स्वास्थ्य की दृष्टि से खाते तो बहुत कम खर्च में काम चल सकता है। महँगे वस्त्र, भोजन, ब्याह-शादी, दावत-भोज, व्यसन, फैशन, आभूषणों में जो जितना धन फूँकता है, वह उतना ही अमीर और बड़ा माना जाता है। इन अनावश्यक बातों में खरच को रोककर उसी पैसे को अच्छे व्यवसाय, काम, शिक्षा या समाज-उत्थान के कार्यों में लगाएँ तो न केवल मुनाफा प्राप्त होगा, बल्कि हमारी शारीरिक, मानसिक और सामाजिक उन्नति भी हो सकती है।

समाज में अधिकांश आर्थिक अपराधों की जड़ धन का उद्धत और अविवेकपूर्ण प्रदर्शन ही है। अनावश्यक खरचों की पूर्ति के लिए उचित-अनुचित साधनों का प्रयोग करना पड़ता है। प्रत्यक्ष में इसके परिणाम बेईमानी, घूस, चोरी, हत्या, गृह कलह आदि के रूप में देखे जा सकते हैं।

धन कमाना सरल है, पर उसे खरच करना कठिन है। संपन्न हो या निर्धन अपव्यय तो किसी को भी नहीं करना चाहिए। धन को विवेकपूर्वक कमाना चाहिए और विचारपूर्वक खरच करना चाहिए।

कमाए हुए धन को अपव्यय से रोकना भी तो कमाना ही है। मितव्ययता का जीवन में बड़ा महत्त्व है। यह एक असाधारण गुण है। जो लोग इसके महत्त्व को नहीं समझते और उसकी शक्ति से अपरिचित रहते हैं, वे हमेशा आर्थिक कठिनाइयों में फँसे रहते हैं, साथ ही परिवार की उन्नति रोक देते हैं और जिसने भी जीवन की मूल आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए धन का उपयोग किया है, अपव्यय नहीं किया, उनका जीवन सुखी रहा। सादगी को भारतीय जीवन में महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है। इसी व्रत को अपनाकर हमारे पूर्वजों ने ज्ञान की महान साधना की। उस ज्ञान की जिसके कारण समस्त संसार में भारत को सभ्यता का सूर्य, ज्ञान-विज्ञान का देश माना जाता रहा है और जिसके बल पर वह जगद्गुरु कहलाया।

स्वर्गीय राष्ट्रपति डॉ० राजेन्द्रप्रसाद राँची प्रवास पर थे। पैर में जूते की कील गढ़ रही थी, इसलिए उन्होंने नए जूते मँगाए। सेक्रेटरी जब उन्नीस रुपए के जूते लेकर आया तो वे चिंता में पड़ गए, बोले-"दस रुपए के जूतों से भी काम चल सकता था।" सेक्रेटरी जब उसे लौटाने चल पड़े तो उन्होंने कहा-"अब वहाँ जाने में मोटर का पेट्रोल भी खरच करोगे, अब जब गाड़ी वहाँ से निकले तब बदल लेना।" राष्ट्रपति की सादगी और किफायत पर वहाँ उपस्थित सभी लोग बहुत प्रभावित हुए।

मनुष्य को प्राप्त असंख्य विभूतियाँ यदि ठीक प्रकार से नियोजित की जा सकें तो क्या व्यक्तिगत, क्या सामाजिक हर क्षेत्र में स्वर्गीय परिस्थितियाँ उत्पन्न की जा सकती हैं। यह तथ्य समझने में हमारी बुद्धि अक्षम नहीं है, किंतु तथ्यों को समझना एक बात है, उसे चरितार्थ करना दूसरी। विभूतियों को सही दिशा में नियोजित करना संयम-साधना के बिना संभव नहीं। अस्तु, संयमवृत्ति का विकास, संयम-साधना का अभ्यास हम जितनी अधिक तत्परता से कर सकें, आत्मकल्याण एवं जनकल्याण की दिशा में उतनी ही अधिक प्रगति कर सकेंगे।

खरच करने से पहले सोचिए

जब मनुष्य रूप में जन्म लिया है, तो सुखपूर्वक और ढंग से जीने का अधिकार भी स्वत: ही प्राप्त हो जाता है। इस के लिए युग चाहे कोई भी, कैसा भी क्यों न रहा हो, धन की आवश्यकता अवश्य बनी रहती है। धनाभाव से सुखपूर्वक तो क्या सामान्य जीवन में जी पाना कतई संभव नहीं हुआ करता, परंतु साथ ही यह भी जरूरी है कि अपने सभी तरह के आय स्रोतों से आज और आने वाले कल में संतुलन बनाए रखकर ही व्यक्ति सुख-चैन का जीवन जी सकता है। कल के लिए धन-संचय के लिए जरूरी है, आज की मितव्ययता। जो व्यक्ति अपने जीवन की आवश्यकताओं को सीमित रखता है, वही मितव्ययी है। कबीर जैसे संत ने भगवान से नम्र निवेदन किया था-

''साईं इतना दीजिए, जामे कुटुम समाय,
मैं भी भूखा ना रहूँ, साधु ना भूखा जायङ्क''

अर्थात् हे ईश्वर! इतना धन तो अवश्य दो, जिससे मेरे घर-परिवार का ठीक से निर्वाह हो सके और कोई साधु-संत अर्थात् अतिथि घर पर आ जाता है, तो उसकी सेवा-सुश्रूषा भी संभव हो सके। जीवन के हर क्षेत्र में परिवार में व्यवहार में धन आवश्यक है, पर अपनी आवश्यकताओं को सीमित रखना और अपनी शक्ति द्वारा उनको पूरा करना बड़ा सुखद है। अपनी आवश्यकताओं की काट-छाँट करने और मितव्ययी होने के लिए बुद्धि खरच करनी पड़ती है।

महात्मा गाँधी अत्यंत सूक्ष्मदर्शी महापुरुष थे। उनका सिद्धांत था कि एक मनुष्य को उतना ही भोजन करना चाहिए जितना जीने

के लिए आवश्यक है और एक व्यक्ति को उतने ही वस्त्र पहनने चाहिए, जितने शरीर रक्षा के लिए आवश्यक हैं और सामान भी उतना ही रखना चाहिए, जितना वह स्वत: उठाकर कहीं ले जा सके। अपनी आवश्यकता और वस्तुओं को इस प्रकार बढ़ा लेना कि दूसरों का आश्रित हो जाना पड़े, अत्यंत लज्जास्पद है।

छोटी-छोटी बातों में जो अपव्यय होता है, उस पर भी ध्यान रखना आवश्यक है। हम पाँच अथवा दस रुपए का कोई महत्त्व ही नहीं समझते। वास्तव में वे ही द्वार हैं, जिनसे होकर अपव्यय की आदत हमारे जीवन में प्रवेश करती है। युवको! प्रमाद के वशीभूत मत हो जाओ। जहाज के तल का एक छोटा छिद्र भी उसे डुबा देने के लिए पर्याप्त है। जीवन में अपव्ययता की भावना ही चाहे वह छोटी हो या बड़ी मनुष्य को पथभ्रष्ट करने के लिए पर्याप्त है। दो मित्र एक साथ खेले, पढ़े, बड़े हुए। एक धनी परिवार का था और उसे खरच करने की खुली छूट मिली थी। दूसरा निर्धन संस्कारवान घर का था व सदैव सीमित खरच करता था। धनी मित्र जब तक साथ रहा उसे अपनी फिजूलखरची में साथ रहने को आमंत्रित करता रहा, पर उसने उसकी यही बात नहीं मानी, शेष बातों पर सदैव परामर्श लेता भी रहा और उसे सुझाव देता भी कि अक्षय संपदा होते हुए भी आपको अनावश्यक खरच नहीं करना चाहिए।

कालांतर में निर्धन एक विद्यालय का प्रधानाध्यापक बना और धनी कारोबार में धन लगाकर चौपट कर चुका था। दोनों की मुलाकात एक दवाखाने में हुई। दुर्व्यसनों के कारण धनी मित्र का जिगर खराब हो गया था। दोनों ने एक-दूसरे की कथा सुनी। धनी मित्र ने आँखों में आँसू भरकर कहा-"मित्र! मैंने आपका कहा माना होता, तो आज मेरी यह स्थिति न होती।" दूसरे ने सहानुभूति दर्शायी और यथासंभव आर्थिक सहयोग देकर उसे नए सिरे से जीवन जीने योग्य बना दिया।

कंजूसी और मितव्ययता में वही अंतर है, जो असत्य और सत्य में, रात और दिन में। एक कंजूस व्यक्ति धन के लिए अपने जीवन की आवश्यकताओं का घोर दमन करता है। उसकी चमड़ी भले ही चली जाए, परंतु वह दमड़ी नहीं खरच कर सकता। धन का उपयोग ही यह है कि उसके द्वारा जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति हो और साधारण जीवन में मनुष्य प्रतिष्ठा और सम्मान के साथ एक सामाजिक प्राणी के रूप में रह सके, लेकिन एक कंजूस धन को संचित करना ही उसका उपयोग समझता है। सामाजिक कार्यों के लिए एक मितव्ययी व्यक्ति मुक्त हस्त होकर दान देता है।

हिंदू विश्वविद्यालय के भीष्म पितामह श्यामचरण दे का नाम किसने नहीं सुना। दे बाबा सात्विकता और मितव्ययता की प्रतिमूर्ति थे। उन्होंने अपने जीवन की आवश्यकताओं को अत्यंत सीमित बना लिया था। वास्तव में वे जीने के लिए भोजन करते थे और शरीर की रक्षा के लिए वस्त्र पहनते थे। लोगों का कहना है कि वे भोजन भी नाप-तौलकर करते थे। यहाँ तक कि प्रतिदिन की भाजी के लिए आलू भी वे गिनकर देते थे, परंतु इस महापुरुष ने अपनी संपूर्ण स्वअर्जित तथा पैतृक संपत्ति विश्वविद्यालय को अर्पण कर दी। जीवनभर वेतन के रूप में विश्वविद्यालय से वे केवल एक रुपया ही वेतन लेते रहे। यदि दे बाबा ने इस प्रकार मितव्ययतापूर्वक अपना जीवन व्यतीत न किया होता, तो क्या वे इतना महान त्याग कर सकते थे। विश्वविद्यालय का निर्माण और उसकी नींव की दृढ़ता ऐसे महान त्यागियों के दान पर ही आश्रित है।

कुछ दिनों तक चाहे कष्ट ही क्यों न उठाना पड़े, परंतु ऋण से सदा बचना चाहिए। एक लोकोक्ति है कि ऋण का भार लेकर प्रात:काल उठने से अच्छा है, रात में बिना भोजन किए ही व्यक्ति सो जाए। ऋण लेने के समय बड़ा आनंद आता है, परंतु उसका देना उतना ही कष्टकर और अप्रिय प्रतीत होता है। मनुष्य उपकारों

से उऋण हो सकता है, वह तृष्णा के बंधन को तोड़कर मुक्ति प्राप्त कर सकता है, परंतु ऋण का बंधन बड़ा ही दुःखद होता है। ऋण जीवन का महान घुन है, यह सुख-शांति और शक्ति का सर्वनाश करता है।

यह स्मरण रखो कि तुम्हारा इसी में कल्याण है कि तुम मितव्ययी बनो। अपनी आय की सीमा के बाहर खरच न करो। आज एक-एक पैसे की बचत कल का अनंत सुख साबित हो सकती है। आज का जीवन और वातावरण तो कई प्रकार से आकस्मिकताओं वाला बन चुका है। उस आकस्मिकता का ठीक तरह से सामना करने के लिए जरूरी है कि व्यक्ति आज जितनी भी अधिकाधिक संभव हो बचत करे और ये तब तक संभव नहीं, जब तक तुम यह नियम नहीं बना लेते कि हम अनावश्यक एक पैसा भी खरच न करेंगे। तब तक न तो आप मितव्ययी ही हो सकते हो और न धन संचय ही कर सकते हो। अपनी, अपने घर-परिवार और अपने आश्रितों की सुरक्षा के लिए धन संग्रह करने का निषेध किसी ने कहीं भी नहीं किया।

प्रत्येक वस्तु खरीदने, प्रत्येक नई आवश्यकता को बढ़ाने के पूर्व अपने से ये प्रश्न करो कि क्या उस आवश्यकता अथवा वस्तु के बिना आपका कार्य नहीं चल सकता? क्या उसके लिए व्यय करना, आपके लिए अनिवार्य है? यदि उस वस्तु अथवा आवश्यकता के अभाव में आपके जीवन की, आपकी प्रतिष्ठा की और आपके सामाजिक संबंधों को कोई हानि नहीं पहुँचती हो, तो व्यर्थ में एक नई आवश्यकता बढ़ाने से बचो।

महात्मा गाँधी की व्यक्तिगत वस्तुओं की संपत्ति एक छोटी गठरी में बाँधकर कहीं भी रख दी जा सकती थी। लंगोटी, चादर, चप्पल और कंबल यही तो उनके जीवन की आवश्यक वस्तुएँ थीं। न तो उन्हें कभी क्रीम की जरूरत पड़ी और न वैसलीन की। यह सीमित सामग्री वाला व्यक्ति ही असीम शक्तियों वाला महापुरुष था,

जिसके चरणों पर भारत का समस्त वैभव लोटने को आतुर था, परंतु उसे तो वास्तविक वैभव की आवश्यकता थी।

पाश्चात्य देशों की नकल करने वाले और अपने देश की आवश्यकताओं को न समझने वाले व्यक्ति भी देशद्रोही ही हैं। यदि आप अपने देश की स्वतंत्रता की रक्षा करना चाहते हैं, तो आपको साधारण मनुष्य के जीवन-स्तर को ऊँचा उठाना होगा। यह कार्य प्रत्येक व्यक्ति की सहायता से ही हो सकता है। आप मितव्ययी बनो और अपने आस-पास के दीन-हीन दुखियों की सहायता करो। दूध की नदी बहाने वाले, कुत्तों को मखमल पर सुलाने वाले यह भूल जाते हैं कि उनके देश के आधे से अधिक लोग आधा पेट भोजन कर, चिथड़ों से अपने अंगों को ढककर अपना समय काट रहे हैं। आपका कर्त्तव्य है कि आप अपव्यय रूपी दानव से देश की रक्षा करो और दीन-हीन जनों की सहायता करो। महात्मा टालस्टॉय कहा करते थे कि जब तक देश में एक भी व्यक्ति भूखा है, एक भी व्यक्ति नंगा है, तब तक तुम्हें दो बार भोजन करने और दो कोट रखने का कोई अधिकार नहीं। यदि आप ऐसा करते हो, तो ये आपका भयंकर स्वार्थ है। यह आपकी खुदगर्जी की हद है।

व्यर्थ की आलोचना करने वाले व्यक्ति से बचो, बस आपका कल्याण होगा। अपव्यय, ऋण, व्यर्थ की तड़क-भड़क और व्यर्थ में व्यय कराने वाली परंपराओं से बचो। यदि आप अपने घर में इतना संयम कर सके तो वास्तव में अपने देश को आप महात्मा गाँधी और टालस्टॉय का देश बना सकने में समर्थ होंगे। आपके हाथ में ही देश को स्वर्ग और नरक बनाना है।

अपने मन पर संयम रखो, अपनी आवश्यकताओं का दमन करो, बस इतना ही पर्याप्त है। कुछ ही दिनों में ही आप देखोगे, आपका देश फिर सोने की चिड़िया हो जाएगा।

कर्म करो–कर्मयोगी बनो

दो माली एक साथ दो बाग लगाते हैं। कुछ ही समय में एक माली की वाटिका पल्लवित, पुष्पित और विकसित हो उठती है। सारा बाग इधर-से-उधर तक समान रूप से हरा-भरा लहराता हुआ अपनी सुंदरता और सुवास से वातावरण को ओत-प्रोत करता है। जो भी अपना-पराया, शत्रु-मित्र और आने-जाने वाला उसके पास से निकलता है, उसका हृदय प्रसन्न हो उठता है, आँखें तृप्त हो जाती हैं, तब मन सुवासित हो उठता है और मुख से अनायास ही निकल पड़ता है–अहा! कितनी सुंदर वाटिका है, कैसा मनमोहक बाग है। इसका माली बड़ा कुशल व्यक्ति मालूम होता है। माली अपनी इस सफलता को देखता, सुनता और आत्मा में एक अनिर्वचनीय आनंद का, सुख-संतोष का अनुभव करता है। उसे अपने श्रम, अपनी साधना और अपने कर्म का श्रेय मिल जाता है। यही कर्म-कुशलता है, कर्मयोग है।

दूसरे माली का बाग कहीं हरा-भरा, कहीं नीरस और शुष्क है। कोई डाली फूलों से सजी है, तो कोई पत्तों से भी रहित है। कोई पौधा सीधा खड़ा है, तो कोई नमस्कार कर रहा है। कहीं कलियाँ खिलकर फूल बन रही हैं, तो कहीं विकसित होने से पहले ही मुरझा गईं हैं। किसी ओर तो सुगंध आ रही है, तो कहीं कूड़े-करकट की दुर्गंध उठ रही है। न क्यारियाँ ठीक हैं और न पौधों की काट-छाँट है। हर ओर अव्यवस्था और अस्तव्यस्तता ही दृष्टिगोचर हो रही है। बाग की यत्र-तत्र सुंदरता भी उस सार्वत्रिक कुरूपता में मिलकर कुरूप बन जाती है, असंगत और अनुपयुक्त लगती है।

ऐसा विकृत बाग न तो किसी को प्रसन्न कर पाता है और न सुवासित। उसे देखकर न तो कोई ठहरता है और न प्रशंसा करता है। बहुत बार तो लोग सहसा देखकर यही निर्णय नहीं कर पाते हैं कि यह कोई वाटिका है या वनस्थली। लोग देखते और यों ही चले जाते हैं और यदि कोई कुछ टिप्पणी करता भी है, तो कहता है– 'बड़ा रद्दी बाग है, इसका माली बड़ा अयोग्य और अकुशल मालूम होता है।'

बस, उस माली का सारा श्रम और सारा कर्म व्यर्थ चला गया। उसकी साधना असफल हो गई और वह अपनी आत्मा में एक ग्लानि, एक क्षोभ, एक लज्जा, एक निराशा और एक असंतोष अनुभव करता है। उसका सुख और संतोष, श्रम और श्रेय सभी कुछ नष्ट हो जाता है। यही अकर्म, अकुशलता और अयोग है।

दोनों माली मनुष्य हैं, दोनों ने एक जैसा ही काम किया, दोनों के साधन और सुभीते एक जैसे थे और दोनों ने सफलता के लक्ष्य से श्रम किया, तब क्या कारण है कि एक श्रेय का और एक हेय का कारण बना? कारण है और वह यह कि उन दोनों में से एक कर्मयोगी है और दूसरा कर्मभोगी।

एक ने अपने कर्त्तव्य की प्रत्येक शाखा पर पूरा ध्यान और मनोयोग दिया है। उसने समय पर बीज बोए, समय पर समुचित पानी दिया, क्यारियों की रचना की, अंकुरों की रक्षा और पौधों की खोज खबर रखी। कहाँ पर विजातीय वनस्पति उग रही है, कहाँ पर कीड़ा लग सकता है, कौन-सा पौधा सूख सकता है, हवा का कौन-सा रुख डाल को हानि पहुँचा सकता है और किधर कौन जंतु आ सकता है, इनमें से किसी बात से वह गाफिल नहीं रहा। विजातीय वनस्पति को निराया और जानवरों का मार्ग अवरुद्ध किया। उसकी इस सर्तकता, सावधानी और जागरूकता ने उसे सफलता और श्रेय का अधिकारी बनाया। उसने कर्मयोगपूर्वक किया, वह कर्मयोगी रहा।

दूसरे ने इनमें से किसी बात पर ध्यान नहीं दिया। पानी की व्यवस्था नहीं की, अंकुर निकल रहे हैं या नहीं, इस बात को क्यारी-क्यारी के पास जाकर नहीं देखा। पौधा सड़ रहा है, सूख या गिर रहा है, उसने परवाह नहीं की। फूल मुरझा रहे हैं, कलियाँ सूख रहीं हैं, पत्ते जले जा रहे हैं, इस बात से वह निरपेक्ष रहा। क्यारी टूट गई या पानी की धारा फूट निकली है, उसने न देखा न व्यवस्था की। वह जोत-बोकर भाग्य के भरोसे बैठा रहा। जो पौधे स्वयं की शक्ति से प्रफुल्लित हो गए, जो फूल स्वयं खिल उठे, उसी में वह संतुष्ट हो गया और उस संयोग को ही अपनी सफलता मानकर आलसी बन गया। दो चार खिले पौधों में उसकी आसक्ति हो गई और वह घूम-घूमकर उनकी ही हाजरी बजाने लगा। दूसरे पौधों और उनकी दशा से विमुख हो गया। सफल पौधों के प्रति अपनी आसक्ति की उपासना में लग गया। उसी में अपनत्व और अहंकार को केंद्रित कर बैठ गया। परिणामस्वरूप शेष बाग वीरान हो गया। माली की निंदा और उसकी अकर्मता की भर्त्सना हुई और अंततः वह अशांति, असंतोष और असफलता का भागी बना।

यह उदाहरण इस सत्य को सिद्ध करता है कि मानव-जीवन की सफलता कर्मयोग में है, कर्मभोग में नहीं। इसलिए मनुष्य को श्रेय प्राप्त करने के लिए कर्मभोगी नहीं, कर्मयोगी बनना चाहिए। उसे जीवन की हर छोटी-बड़ी शाखा पर सामान्य रूप से संपूर्ण योग्यता और मनोयोग से ध्यान देना चाहिए। उस काम को जिसमें अधिक लाभ है, जिसका फल अधिक मूल्यवान है, पूरे तन-मन से करना और जो अपेक्षाकृत कम लाभ की संभावना वाला है, उसकी उपेक्षा करना कर्म कौशल नहीं है। कार्य कुशलता का प्रमाण इस बात में है कि छोटे-से-छोटा काम भी इस कुशलता से किया जाए कि वह सुंदर और महत्त्वपूर्ण बनकर कर्त्ता की ईमानदारी का साक्षी जैसा बोल उठे। कर्म का स्वरूप ही मनुष्य के गुण, कर्म, स्वभाव की तस्वीर है, उसी के अनुसार गुणी एवं गुणज्ञ लोग किसी

कर्मयोगी को अंक दिया करते हैं। उसका ठीक-ठीक मूल्यांकन किया करते हैं।

मनुष्य का सारा जीवन ही कर्मता से भरा हुआ है। किसी समय भी वह कर्म रहित होकर नहीं रह सकता। सोते-जागते, उठते-बैठते यहाँ तक कि श्वाँस लेने में भी वह एक कर्म ही करता रहता है। श्रद्धा, निष्ठा एवं लगन के साथ किया गया कोई भी काम मनुष्य को सद्भाव, उच्च विचार, उत्साह, संतोष, शांति प्रदान करता है। किसी भी भले काम में लगकर मनुष्य बाह्य संसार में कुछ भी सफलता प्राप्त करे, किंतु आंतरिक लाभ, शांति, आत्मसंतोष, उच्च विचार, सद्गुणावलोकन की दृष्टि तो प्राप्त होती ही है। मानसिक विकारों पर नियंत्रण प्राप्त होकर नैतिक तथा बौद्धिक उन्नति होती है। कुल मिलाकर कर्मयोगी को अंतर्बाह्य जीवन में सफलता ही मिलती है।

कुविचारों और दुष्प्रवृत्तियों से बचने के लिए अपनी समस्त शक्ति को रचनात्मक कार्यों में लगा देना, श्रेयस्कर होता है। इससे एक तो दुष्कर्मों के लिए समय ही नहीं मिलेगा, साथ ही कुविचारों को फलित होने का मौका भी प्राप्त नहीं होगा। अकर्मण्यता की स्थिति में अनेक दूषित मनोभाव उत्पन्न होते रहते हैं, बढ़ते हैं और भयंकर रूप धारण कर लेते हैं। काम में लगे रहने पर दूषित भावों की शक्ति रचनात्मक कार्यों में परिवर्तित हो जाती है। सक्रिय रहने पर मनुष्य के अच्छे-बुरे दोनों तरह के भावों का समन्वय हो जाता है। सब मिलकर कार्य की पूर्णता में लग जाते हैं। अतः अंतर्द्वंद्व की नौबत ही नहीं आती।

चिंता से मुक्ति के लिए सक्रिय रहना आवश्यक है। इससे इच्छाशक्ति भी बढ़ेगी और दूषित भावों का भी शोधन होगा। कोई भी काम जो सरल एवं अपनी रुचि के अनुकूल हो, उसमें लग जाना चाहिए। चिंता, क्रोध, शोक आदि हीन भावों से ग्रस्त व्यक्ति के लिए तो अकर्मण्य रहना बड़ा भारी कुपथ्य है, इससे रोग दिन

दूना और रात चौगना बढ़ता ही जाता है। दूसरों की सेवा, घर का काम, अध्ययन, शिल्प, कला, साहित्य साधना, आदि छोटे-बड़े कार्यों में से अपनी रुचि के अनुसार निर्णय लेकर उसमें दत्त-चित्त होकर लग जाना चिंता, मानसिक विकार, उद्विग्नता आदि से बचने का सरल उपाय है। जो लोग अपने कार्यों में दत्त-चित्त होकर नहीं लगे रहते, बहुधा चिंताएँ उन्हें ही सताती हैं। जो व्यक्ति दृढ़ता के साथ अपने आपको काम में लगा सकता है, वही विकारों से छुटकारा पाने में समर्थ हो सकता है। कर्मशील व्यक्ति भूत-भविष्य की उधेड़-बुन में लगा नहीं रहता वरन् वर्तमान को महत्त्व देता है और अपने काम में लगा रहता है।

जो मनुष्य सतत अपने कर्त्तव्य कर्म में लगा रहता है, उसे किसी दूसरे की निंदा-स्तुति करने का अवकाश नहीं रहता। कर्मरत के लिए एक क्षण भी इन बेकार बातों के निमित्त निकालना मुश्किल है। किसी भी व्यक्ति को अपने कार्य की सिद्धि के लिए दूसरों के गुणों को देखने-समझने और उनका अनुकरण करने की आवश्यकता होती है। कर्मयोगी को दूसरों के गुण-अच्छाइयों को देखने की आदत बन जाती है और दोष-दर्शन के लिए न उसे उत्साह रहता है और न अवकाश। छिद्रान्वेषण, परदोष दर्शन, असद्भाव, कुविचार प्रायः उन्हीं लोगों में देखे जाते हैं जो अकर्मण्य होते हैं। जल के बहते हुए प्रवाह में जिस प्रकार कूड़ा-करकट अपने आप बहता चला जाता है, उसी प्रकार कर्त्तव्यपरायण व्यक्ति के मन में कुविचार भी टिक नहीं पाते।

अच्छे, आदर्श, रचनात्मक, उपयोगी और आत्मसंतोष देने वाले कार्यों में संलग्न रहकर मनुष्य को जो प्रफुल्लता मिलती है, वह और किसी प्रकार उपलब्ध नहीं हो सकती। कामनाओं और लालसाओं को छोड़कर, खेल और अभिनय की तरह उदात्त बुद्धि से जो कार्य करते हैं, उनके लिए तो यह जीवन ही नहीं सारा संसार और उसका प्रत्येक कार्य भी आनंदमय बन जाता है। कर्म

की महत्ता अनंत है। इसलिए उसे योग कहा गया है। अन्य योग साधनाओं की भाँति ही मनुष्य कर्मयोग की साधना से पूर्णता प्राप्त कर सकता है।

प्रत्येक कार्य जीवन में महान संभावनाएँ लेकर आता है। छोटे-से-छोटा काम भी जीवन-विकास के लिए उसी तरह महत्त्वपूर्ण है, जिस तरह एक छोटा बीज, जो कालांतर में विशाल वृक्ष बन जाता है। किसी मनुष्य का मापदंड उसकी आयु नहीं, वरन् उसके काम ही हैं, जो उसने जीवन में किए हैं। इसलिए कर्मवीरों ने काम को ही जीवन का आधार बनाया। एक मनीषी ने तो यहाँ तक कह दिया-"हे कार्य! तुम्हीं मेरी कामना हो, तुम्हीं मेरी प्रसन्नता हो, तुम्हीं मेरा आनंद हो।"

इसमें कोई संदेह नहीं कि तुच्छ से महान, सामान्य से समर्थ एवं शक्तिशाली, रंक से राजा, मूरख से विद्वान, सामान्य से असामान्य बनाने वाले वे छोटे से लेकर बड़े सभी कार्य हैं, जो समय-समय पर हमारे सामने आकर उपस्थित होते हैं, किंतु एक हम हैं जो अनेक शिकायतें करके अपने कर्मदेव का अपमान करते हैं और जब वह हमारे द्वार से लौट जाता है, तब पश्चाताप करने और हाथ मलने के लिए ही विवश होना पड़ता है।

कभी-कभी हम शिकायत करते हैं कि यह काम तो बहुत छोटा है, यह मेरे व्यक्तित्व के अनुकूल नहीं है, मैं इन तुच्छ कामों के लिए नहीं हूँ आदि-आदि, लेकिन हमने कभी यह भी सोचा है कि उद्गम से आरंभ होने वाली नदी प्रारंभ में इतनी छोटी होती है कि उसे एक बालक भी पार कर सकता है। एक विशाल वृक्ष जो बहुतों को छाया दे सकता है, मीठे फलों से तृप्त कर सकता है, अनेक पक्षियों का बसेरा होता है, आरंभ में एक छोटा-सा बीज ही होता है जो तनिक-सी हवा के झोंके से उड़ सकता है। एक छोटी-सी चिड़िया भी उसे निगल सकती है। एक चींटी उसे उठाकर ले जा सकती है। बहुमूल्य मोती प्रारंभ में एक साधारण-सा

बालू का कण होता है। यही स्थिति हमारे सामने आने वाले कार्यों की भी है। प्रत्येक महान और असाधारण बनाने वाला काम भी प्रारंभ में छोटा सामान्य लगता है, किंतु कर्मवीर जब उसमें एकाग्र होकर लगते हैं, वे भी महान असाधारण महत्त्व के कार्य बन जाते हैं। क्या आपको याद है कि वैज्ञानिक बनने की आकांक्षा रखने वाले बालक ऐडीसन को उसके शिक्षक ने पहले घर में झाड़ लगाने का काम सौंपा था और जब शिक्षक ने देखा कि इस कार्य में भी बालक की वैज्ञानिक प्रतिभा और गहरी दिलचस्पी काम कर रही है, तो उसे विज्ञान की शिक्षा देनी प्रारंभ की और वह अपने इस सद्‌गुण को विकसित करता हुआ महान वैज्ञानिक बना। प्रत्येक महान बनने वाले व्यक्ति के जीवन का प्रारंभ उन छोटे-छोटे कार्यों से होता है, जिन्हें हम छोटे, महत्त्वहीन, सामान्य समझकर टाल देते हैं। उन पर ही हमारे जीवन की भावनाओं का भवन खड़ा होता है। मनुष्य जब अपने को कर्त्तव्य कर्मों, परिश्रम एवं पुरुषार्थ की आग में तपाता है, तो उसके भीतर सोया पड़ा नेता, समाज-सुधारक, लेखक, धर्म-प्रचारक, वैज्ञानिक अथवा उद्योगपति जाग कर ऊपर उभर आता है।

ईश्वर की सबसे बड़ी देन, सबसे महत्त्वपूर्ण प्रसाद है- अपने मस्तिष्क को विकृतियों से रिक्त बनाइए, उसमें विवेक एवं सद्‌बुद्धि का दीप प्रज्वलित कीजिए, उसको निर्माण की दिशा में लगाइए और देखिए कि आपका निर्विकार मस्तिष्क आपको कैसी-कैसी सृजनात्मक योजनाएँ प्रदान करता है और किस प्रकार आपका मार्गदर्शन करता एवं प्रहरी की तरह आपको बचाए भी रखता है। कार्य को आरंभ कर देने पर अनेक विघ्न-बाधाएँ दिखाई पड़ती हैं, परंतु विघ्नों से डरकर कार्य को अधूरा छोड़ना, भीरू प्रकृति का परिचायक है। ऐसे व्यक्ति किसी भी कार्य में सफलता प्राप्त नहीं कर सकते। मनुष्य वह है जो बाधारूपी चट्टानों को तोड़कर गिरा देता है। कार्य तो वह है जिसमें बाधाएँ आएँ और कर्मवान वह है जो ऐसे ही कार्यों को करे जिनमें बाधाएँ आ-आकर उसे सफलता के

द्वार की ओर दृढ़ता से धकेल दे। इसलिए बाधाओं का स्वागत करिए, वे आपको सफलता का रहस्य समझाएँगी।

सूर्य, चाँद, तारे अपने कर्ममय गति-चक्र में कभी कोई बाधा नहीं आने देते। अपने कर्ममय अवसान और फिर उदय में ही उनके अस्तित्व का बोध और सार्थकता है। नदी का कर्म है-रास्ते में आने वाले स्थानों को सींचते, हरियाली बाँटते हुए निरंतर बहते रहना। जब जड़ प्रकृति और उसके विभिन्न रूपों का यह हाल और नियम है, तब भला सजीव-सचेतन मनुष्य कर्महीन कैसे रह सकता है? जीवन और प्रकृति के इन रूपों, नियमों और रहस्यों को समझ-बूझकर ही कवि ने इस तथ्य को उजागर किया है कि ''कर्म प्रधान विश्व रचि राखा'' अर्थात् इस जगत में कर्म करते रहना ही जीवन का चरम सत्य है। संसार की रचना ही वास्तव में कर्म करने के लिए की गई है।

संसार में सुखों का अधिकारी केवल कर्मवीर व्यक्ति ही हुआ करता है, कर्म से जी चुराने वाला कभी नहीं। कहावत है कि ''चलने वाला ही कहीं पहुँच पाता है, राह के किनारे बैठा रहने वाला नहीं।'' सागर की गहराई में उतरकर गोता लगाने वाला ही भीतर से मोती निकालकर बाहर ला सकता है। जो व्यक्ति अपने आत्मबल पर भरोसा नहीं करते और साधनों को सर्वोपरि मानते हैं, वे संसार में कुछ कर सकेंगे, इस पर विश्वास नहीं होता। स्वामी अय्यर बहुत छोटे थे। उनके पिता अंधे थे। माता चक्की पीसना जैसा भारी काम करके कुछ पैसे कमा लेती थीं। उसी से तीनों का गुजारा होता था। अय्यर थोड़े बड़े हुए और पढ़ने-लिखने लगे तो एक रुपया मासिक की नौकरी कर ली। साथ ही पढ़ते रहे। पढ़ाई ऊँची चली तो उन्हें ५००) रुपये पुरस्कार मिले। साथ ही तहसील में क्लर्क का काम १०) रुपया मासिक का मिल गया। अय्यर मेहनत करते रहे, पढ़ते रहे और एक दिन हाईकोर्ट के जज बने। पुरुषार्थ और प्रामाणिकता के अय्यर जी जीवित-जाग्रत नमूने थे।

जब यह एक सर्वमान्य एवं निखरा हुआ तथ्य है कि कर्म बिना गति नहीं, तो क्या सोचकर निठल्ले बैठे हो? उठो और कमर कसकर कर्मक्षेत्र में कूद पड़ो। अध्ययन, शिल्पकला, साहित्य साधना आदि जो भी काम हो, उसमें दत्त-चित्त होकर लग जाओ, सफलता स्वतः ही खिंची चली आएगी। एक चार वर्षीय लड़की के पैरों को लकवा हो गया। बैसाखी के सहारे वह कठिनाई से चल पाती। लड़की ने हिम्मत नहीं छोड़ी, वह चलने से भी बढ़कर दौड़ने का अभ्यास करने लगी। एक समय ऐसा आया, जब वह ओलंपिक खेलों की दौड़ में शामिल हुई और तीन पदक जीते। इस लगनशील लड़की का नाम था–गोल्डीन रूलाफ। वह अमेरिका के टेनेसी प्रांत की रहने वाली थी।

याद रहे सफलताएँ हाथ में माला लिए कर्मठ और कर्मयोगी व्यक्तियों की प्रतीक्षा में खड़ी हमेशा बाट जोहती रहती हैं, तो इस कर्म-प्रधान विश्व में अपने कर्मठ कदम बढ़ाते हुए आगे बढ़कर उस माला को अपने कंठ का हार बना लो। यही जीवन और कर्म दोनों का परम सत्य एवं लक्ष्य है। ''उठो, जागो, रुको मत, जब तक लक्ष्य तक न पहुँच जाओ।''

जो जैसा सोचता और करता है, वह वैसा ही बन जाता है।

उन्नति के तीन गुण

आत्मबल, आत्मविश्वास, आत्मनिर्भरता

सर्वोपरि सर्वसमर्थ बल का नाम है–आत्मबल। आत्मबल के अभाव में सारी भौतिक सामर्थ्य तथा उपलब्धियाँ केवल भार बनकर रह जाती हैं। केवल बलवान होना ही काफी नहीं, बल का सही दिशा में सदुपयोग होना ही वह कौशल है, जिसके आधार पर समर्थता का लाभ उठाया जा सकता है। अपव्यय अथवा दुरुपयोग से तो बहुमूल्य साधन भी निरर्थक ही नहीं हानिकारक तक बन जाते हैं। अतएव धन, बुद्धि, स्वास्थ्य आदि शक्तियों के ऊपर नियंत्रण करने और उन्हें सही दिशा में प्रयुक्त करने वाली एक केंद्रीय समर्थता भी होनी चाहिए। कहना न होगा कि इस समर्थता का नाम आत्मबल है।

हमें जानना चाहिए कि मनुष्य केवल एक शरीर मात्र ही नहीं है। उसमें एक परम तेजस्वी आत्मा भी विद्यमान है। हमें जानना चाहिए कि मनुष्य केवल धन, बुद्धि और स्वास्थ्य के भौतिक बलों से ही सांसारिक सुख, संपदा, समृद्धि एवं प्रगति प्राप्त नहीं कर सकता, उसे आत्मबल की भी आवश्यकता है। आत्मा के अभाव में शरीर की कीमत दो कौड़ी की भी नहीं रहती। इसी प्रकार आत्मबल के अभाव में शरीर बल मात्र खिलवाड़ बनकर रह जाता है। वह किसी के पास कितनी ही बड़ी मात्रा में क्यों न हों, उससे सुखानुभूति नहीं मिल सकती। वे केवल भार, तनाव, चिंता एवं उद्वेग का कारण बनेंगे और यदि कहीं उनका

दुरुपयोग होने लगा, तब तो सर्वनाश की भूमिका ही सामने लाकर खड़ी कर देंगे।

आदर्शों और सिद्धांतों पर अड़े रहने, किसी भी प्रलोभन और कष्ट के दबाव में कुमार्ग पर पग न बढ़ाने, अपने आत्मगौरव के अनुरूप सोचने और करने, दूरवर्ती भविष्य के निर्माण के लिए आज की असुविधाओं को धैर्य और प्रसन्नचित्त से सह सकने की दृढ़ता का नाम आत्मबल है। जो वासना और तृष्णा को, स्वार्थ और सुविधा को ठोकर मारकर अपने लिए नहीं, लोकमंगल के लिए सदाचार से भरा प्रेम और आत्मीयता भरा जीवन जी सकता है, उस महामानव को ही आत्मबल संपन्न कहा जाएगा। चरित्र के धनी, करुणा, दया से परिपूर्ण हृदय, उदारता और आत्मीयता से ओत-प्रोत व्यक्तित्व आत्मबल के ही प्रतीक हैं। संसार उनकी उपस्थिति से सुगंधित, सुरभित, समुन्नत और व्यवस्थित होता है। वे अपनी सामर्थ्य से दिशाएँ बदलने और हवाएँ पलटने में समर्थ होते हैं। आत्मबल वह क्षमता है, जिसका जितना अंश मनुष्य के पास होगा, उतना ही वह अपने विवेक को सजग कर सकने में समर्थ होगा। विवेक ही वह सत्ता है जो धन, बुद्धि, स्वास्थ्य आदि की भौतिक शक्तियों को नियंत्रण में रखकर उन्हें सन्मार्गगामी बनाती है, सदुद्देश्य और सत्प्रयोजनों में प्रवृत्त करती है।

पुरुषार्थों में सबसे बड़ा पुरुषार्थ अपने गुण, कर्म, स्वभाव को सुसंस्कृत बनाना है। जिसने अपने को सुधार लिया, उसकी सारी उलझनें सुलझ जाती हैं। जिसने अपना निर्माण कर लिया, उसके लिए ही हर क्षेत्र में सफलता हाथ बाँधे खड़ी होगी। उन्नति और सुख-समृद्धि के लिए आकांक्षा करना उचित है, पर इसके लिए आवश्यक क्षमता एवं योग्यता को जुटाना भी आवश्यक है। बाह्य परिस्थितियों में चाहे जितनी ही अनुकूलता क्यों न हो, पर व्यक्ति यदि भीतर से खोखला है, तो उसे प्रतिकूलता का ही सामना करना पड़ेगा। इसलिए अभीष्ट मार्ग पर सफलता प्राप्त करने के लिए

बाह्य उपकरण जुटाने के साथ-साथ आंतरिक सुधार के लिए भी प्रयत्नशील रहना चाहिए। यह भूल नहीं जाना चाहिए कि दुर्गुणी व्यक्ति कोई क्षणिक सफलता भले ही प्राप्त कर ले, उसे अंततः असफल ही रहना पड़ता है।

संसार के समस्त अग्रणी लोग आत्मविश्वासी वर्ग के होते हैं। अपनी आत्मा में, अपनी शक्तियों में आस्थावान रहकर कोई भी कार्य कर सकने का साहस रखते हैं और जब भी जो भी कार्य अपने लिए चुनते हैं, पूरे संकल्प और पूरी लगन के साथ उसे पूरा करके छोड़ते हैं। वे मार्ग में आने वाली किसी भी बाधा अथवा अवरोध से विचलित नहीं होते। आशा, साहस, उद्योग उनके स्थायी साथी होते हैं। किसी भी परिस्थिति में वह उनको पास से जाने नहीं देते। आत्मविश्वासी सराहनीय कर्मवीर होता है। वह अपने लिए ऊँचा उद्देश्य चुन ही लेता है। हेयता, दीनता अथवा निकृष्टता उसके पास भटकने नहीं पाती। नित्य नए उत्साह से अपने कर्त्तव्य पथ पर अग्रसर होता है, नए-नए प्रयत्न और प्रयोग करता है, प्रतिकूलताओं और प्रतिरोधों से बहादुरी के साथ टक्कर लेता और अंत में विजयी होकर श्रेय प्राप्त कर ही लेता है।

आत्मा अनंत शक्तियों का भंडार होती हैं। संसार की ऐसी कोई भी शक्ति और सामर्थ्य नहीं, जो इस भंडार में न होती हो। हो भी क्यों न, आत्मा परमात्मा का अंश जो होती है। सारी शक्तियाँ, सारी सामर्थ्य और सारे गुण उस एक परमात्मा में ही होते हैं और उसी से प्रवाहित होकर संसार में आते हैं। अस्तु, अंश आत्मा में अपने अंशी की विशेषताएँ होनी स्वाभाविक हैं। आत्मा में विश्वास करना, परमात्मा में विश्वास करना है। जिसने आत्मा के माध्यम से परमात्मा में विश्वास कर लिया, उसका सहारा ले लिया, उसे फिर किस बात की कमी रह सकती है। ऐसे व्यक्ति के सम्मुख शक्तियाँ, दासियों के समान उपस्थित रहकर अपने उपयोग की प्रतीक्षा किया करती हैं।

जीवन के सभी क्षेत्रों में सफल होने के लिए आत्मविश्वास की आवश्यकता होती है। अच्छे-से-अच्छा तैराक भी आत्मविश्वास के अभाव में किसी नदी को पार नहीं कर सकता। वह बीच में ही फँस जाएगा, नदी के प्रवाह में बह जाएगा अथवा हाथ-पैर पटक कर वापस लौट आएगा। जीवन में भी अनेक कठिनाइयाँ, उलझनें, अप्रिय परिस्थितियाँ आती रहती हैं। इन झंझावातों में कठोर चट्टान की तरह अपनी राह पर अडिग रहने के लिए आत्मविश्वास की आवश्यकता होती है।

लक्ष्य जितना बड़ा होगा, मार्ग भी उतना ही लंबा होगा और अवरोध भी उतने ही अधिक आएँगे, इसलिए उतने ही प्रबल आत्मविश्वास की आवश्यकता होगी। संसार भी आत्मविश्वासी का समर्थन करता है। आत्मविश्वास चेहरे पर वह आकर्षण बनकर फूट पड़ता है, जिससे पराए भी अपने बन जाते हैं, अनजान भी हमराही की तरह साथ देते हैं। विपरीत परिस्थितियाँ भी आत्मविश्वासी के लिए अनुकूल परिणाम प्रदान करती हैं। संसार में कोई मनुष्य तब तक सफलता प्राप्त नहीं कर सकता, जब तक कि उसके मन में यह दृढ़-विश्वास न हो कि मैं जिस काम को करना चाहता हूँ, उस में अवश्य सफल बनूँगा।

जितना हम अपनी योग्यता और कार्यक्षमता पर विश्वास करेंगे, उतना ही हमारा जीवन सफल होगा और जितना हम अपनी योग्यता पर अविश्वास करेंगे, उतने हम विजय से, सफलता से दूर रहेंगे। चाहे हमारा पथ कितना ही कष्टपूर्ण, संकटपूर्ण एवं अंधकारमय क्यों न हो, हमें चाहिए कि हम कभी अपने आत्मविश्वास को तिलांजलि न दें। हमारे कार्य की नींव हमारे आत्मविश्वास पर जमी हुई है। 'हम अमुक कार्य अवश्य कर सकते हैं।' इस विचार में बड़ी अद्‌भुत शक्ति भरी हुई है। संसार में जो मनुष्य बड़े-बड़े काम करते हैं, उन सब में ऊँचे दरजे का आत्मविश्वास होता है, अपनी शक्ति पर, अपनी योग्यता पर, अपने कार्य पर।

आत्मविश्वास में वह ताकत है, जो हजार विपत्तियों का सामना कर, उन पर पूरी-पूरी विजय प्राप्त कर सकती है। यही मनुष्य का सच्चा मित्र और उसकी सबसे बड़ी पूँजी है। हमने देखा है कि साधनहीन होने पर भी आत्मविश्वासी मनुष्यों ने दुनिया में गजब के काम किए हैं, जबकि बहुत से साधन संपन्न व्यक्ति विश्वासहीनता के कारण बुरी तरह से असफल होते हैं।

कवीन्द्र रवीन्द्र का-'अकेला चल' शीर्षक वाला गीत आपने पढ़ा या सुना होगा। उस गीत के भाव हैं-''यदि कोई तुझ से कुछ न कहे, तुझे भाग्यहीन समझकर सब तुझसे मुँह फेर लें और सब तुझसे डरें, तो भी तू अपने खुले हृदय से अपना मुँह खोलकर अपनी बात कहता चल।''

''अगर तुझसे सब विमुख हो जाएँ, यदि गहन पथ प्रस्थान के समय कोई तेरी ओर फिर कर भी न देखे, तब पथ के काँटों को अपने लहू-लुहान पैरों से दलता हुआ अकेला चल।''

''यदि प्रकाश न हो, झंझावात और मूसलाधार वरषा की अँधेरी रात में जब अपने घर के दरवाजे भी तेरे लिए लोगों ने बंद कर दिए हों, तब उस वज्रानल में अपने वक्ष के पिंजर को जलाकर उस प्रकाश में अकेला ही चलता रह।''

निस्संदेह हर परिस्थिति में मनुष्य का एकमात्र साथी उसका अपना आपा ही है। स्वामी विवेकानंद के शब्दों में-''आत्मविश्वास सरीखा दूसरा मित्र नहीं, आत्मविश्वास के कारण दुर्गम पथ भी सुगम बन जाते हैं, बाधाएँ भी मंजिल पर पहुँचाने वाली सीढ़ियाँ बन जाती हैं।'' एमर्सन ने कहा है-''आत्मविश्वास सफलता का मुख्य रहस्य है।''

मनुष्य कितना ही विद्वान, गुणवान, शक्तिशाली क्यों न हो, लेकिन यदि उसमें आत्मविश्वास की भावना नहीं है, तो वह विद्वान होकर भी मूर्खों जैसा जीवन बिताएगा। शक्तिशाली होकर भी कायर सिद्ध होगा। आत्मविश्वास मनुष्य के कार्य-कलाप, उसके जीवन-

व्यवहार, गति आदि में एक प्रकार की चैतन्यता, जीवट भर देता है। उसके समस्त जीवन को प्राणवान बना देता है। ऐसा व्यक्ति दूसरों पर देखने मात्र से अपना प्रभाव डालता है और लोग उस पर विश्वास करने लग जाते हैं। उसमें एक प्रकार की दिव्यता, महानता सी मालूम पड़ती है।

आत्मविश्वास मनुष्य की शक्तियों को संगठित करके उन्हें एक दिशा में लगाता है। शारीरिक, मानसिक, शक्तियाँ आत्मविश्वासी के इशारे पर नाचती हैं और काम करती है। जो अपनी शक्तियों का स्वामी है, नियंत्रणकर्त्ता है, उसे संसार में कोई भी कमी नहीं रहती, सिद्धि, सफलताएँ स्वयं आकर उसके दरवाजे खटखटाती हैं।

इंग्लैंड का वेल्स बचपन से ही बहुत दुबला-पतला था, पर हिम्मत देखते बनती थी। सिपाही से सेनापति बना। उसने ऐसे मोरचे जीते जिनकी सफलता की किसी को आशा नहीं थी। एक लड़ाई में उसका दाहिना हाथ चला गया, तो भी उसने हिम्मत नहीं हारी। दूसरे मोरचे में एक आँख चली गई। सरकार ने उसे अपाहिजों की पेंशन देनी चाही तो उसने इनकार कर दिया। अगले मोरचे पर वह पहले से भी अधिक उत्साह से लड़ने गया। लड़ाई जीतने का उसे विश्वास था क्योंकि उसके पास सूझबूझ वाला दिमाग और हिम्मत वाला कलेजा था। सभी परिस्थितियों में इतनी सफलता प्राप्त करने वालों में वेल्स का नाम सेना के इतिहास में अनुपम है। उन्हें ब्रिटिश का राणा सांगा कहा जाता है। कायर एक बार जीता और बार-बार मरता है, पर आत्मविश्वासी एक बार जन्म लेता, एक ही बार मरता है।

अपने ऊपर विश्वास करना, अपनी शक्तियों पर विश्वास करना एक ऐसा दिव्य गुण है जो हर कार्य को करने योग्य साहस, विचार एवं योग्यता उत्पन्न करता है। दूसरों के ऊपर निर्भर रहने से अपना बल घटता है और इच्छाओं की पूर्ति में अनेक बाधाएँ उपस्थित होती हैं। स्वाधीनता, निर्भयता और प्रतिष्ठा इस

बात में है कि अपने ऊपर निर्भर रहा जाए, सफलता का सच्चा और सीधा पथ यही है।

अपनी हर एक बाह्य परिस्थिति की जिम्मेदारी दूसरों पर मत डालिए, वरन् अपने ऊपर लीजिए। दुनिया को दर्पण के समान समझिए जिसमें अपनी ही सूरत दिखाई पड़ती है। दूसरे लोगों में जो अच्छाइयाँ-बुराइयाँ दिखाई पड़ती हैं, सामने जो प्रिय-अप्रिय परिस्थितियाँ आती हैं, इसका कारण कोई और नहीं, वरन् आप स्वयं हैं और उनमें परिवर्तन करने की शक्ति भी किसी और में नहीं, वरन् आप में है। मनोविज्ञान शास्त्र बताता है कि मनुष्य में यह एक बड़ी भारी त्रुटि है कि वह अपनी भूल या न्यूनता को स्वीकार नहीं करता। अपने ऊपर उत्तरदायित्व लेने को तैयार नहीं होता। अपने दोषों को दूसरों के ऊपर थोपने का प्रयास करके वह स्वयं निर्दोष बनता है।

हम मानते हैं कि दूसरों में भी दोष हैं, अनायास अप्रिय परिस्थितियाँ भी सामने आती हैं, पर काँटों से आसानी के साथ बच निकलने योग्य विवेक की आँखें भी तो मौजूद हैं। अच्छाइयों के साथ बुराइयों से बच निकलना बुद्धिमत्ता का काम है। ऐसी बुद्धिमत्ता तब आती है जब आत्मनिर्भरता के दृष्टिकोण को अपना लिया जाता है। आप किसी गुत्थी को सुलझाने के लिए दूसरों की सहायता ले सकते हैं, पर उनके ऊपर अवलंबित मत रहिए। आप अपनी कठिनाइयों को सुलझाने का प्रयत्न करिए। जब तक आप दूसरों पर आश्रित रहते हैं, यह समझते हैं कि हमारे कष्टों को कोई और दूर करेगा, तब तक बहुत बड़े भ्रम में हैं। सारी समस्याओं को सुलझाने की कुंजी अपने अंदर है। दूसरे लोगों से जिस बात की आशा करते हैं, उसकी योग्यता अपने अंदर पैदा कीजिए, तो अनायास बिना माँगे ही वह इच्छाएँ पूरी होने लगेंगी।

आप चाहते हैं कि आपको बीमारी न सताए, तो स्वास्थ्य के नियमों पर दृढ़तापूर्वक चलना आरंभ कर दीजिए। आप चाहते हैं

कि लोग आपका लोहा मानें, तो शक्ति संपादन कीजिए। आप चाहते हैं कि प्रतिष्ठा प्राप्त हो तो प्रतिष्ठा के योग्य कार्य कीजिए। आप चाहते हैं कि ऊँचा पद हो, तो उसके लिए योग्य गुणों को एकत्रित करिए। धन, बुद्धि, बल, विद्या चाहते हैं तो परिश्रम और उत्साह उत्पन्न करिए। जब तक अपने भीतर वे गुण नहीं हैं, जिनके द्वारा मन की इच्छाएँ पूरी हुआ करती हैं, तब तक यह आशा रखना व्यर्थ है कि आप सफल मनोरथ हो जाएँगे।

संसार में सफलता प्राप्त करने की आकांक्षा के साथ अपनी योग्यताओं में वृद्धि करना भी आरंभ कीजिए। अपने भाग्य को जैसा चाहें वैसा लिखना अपने हाथ की बात है। यदि आप आत्मनिर्भर हो जाएँ, जैसा होना चाहते हैं उसके अनुरूप अपनी योग्यताएँ बनाने में प्रवृत्त हो जाएँ, तो विधाता को विवश होकर आपकी मन-मरजी का भाग्य लिखना पड़ेगा।

आत्मनिर्भर व्यक्ति कभी भी बड़ी-बड़ी कल्पनाएँ नहीं बनाता, वह केवल उतना ही सोचता है, जितना उसे करना होता है और जितना कर सकने की उसमें शक्ति होती है। वह अच्छी तरह जानता है कि उसे अपना काम स्वयं अपनी शक्ति से करना है। उसे किसी दूसरे के भरोसे नहीं रहना है। संसार में इतना अवकाश किसे रहता है, जो दूसरों की समस्याओं के समाधान में रुचि दिखाए। जो आत्मनिर्भर हैं, आत्मविश्वासी तथा आत्मनिर्णायक हैं, जिनके पास अपनी बुद्धि और अपना विवेक है, उनका ही जीवन सफल एवं संतुष्ट होता है। स्वावलंबी को किसी काम के लिए किसे दूसरे का मुँह नहीं ताकना पड़ता। वह अपने पथ के रोड़े खुद अपने हाथ से हटाता हुआ आगे बढ़ता चला जाता है।

आत्मनिर्भरता तथा आत्मविश्वास ऐसे दिव्य गुण हैं कि जिनको विकसित कर लेने पर संसार का कोई भी कार्य कठिन नहीं रह जाता। यदि आप जीवन में सफलता, उन्नति, संपन्नता एवं समृद्धि चाहते हैं, तो स्वावलंबी बनिए। अपना जीवन पथ खुद अपने हाथों

प्रशस्त कीजिए और उस पर चलिए भी अपने पैरों से। निस्संदेह यदि आप निष्कलंक, निर्भीक और निर्द्वंद्व जीवन के बीच सुख-समृद्धि का सुख लेना चाहते हैं, तो आत्मनिर्भर बनिए, अपना काम आप करिए, अपनी शक्तियों पर पूरा विश्वास कीजिए और कभी किसी बात के लिए किसी दूसरे पर यथासंभव निर्भर न रहिए। आप अवश्य अपने लक्ष्य में सफल होंगे। मनोवांछित जीवन के अधिकारी बनेंगे। परावलंबी अथवा पराश्रित रहकर आप दुनिया में कुछ न कर सकेंगे। मनुष्य की शोभा आश्रित बनने में नहीं, आश्रय बनने में है। जब संसार में अन्य लोग आगे बढ़ सकते हैं, उन्नति कर सकते हैं, तब क्या कारण है कि उन्हीं की तरह हाथ-पाँव तथा बुद्धि-विवेक पाने पर आप सफल एवं समृद्ध नहीं हो सकते।

□

आय से अधिक खरच करने वाले तिरस्कार सहते और कष्ट भोगते हैं।

उन्नति के चार चरण

समझदारी, ईमानदारी, जिम्मेदारी, बहादुरी

सामान्य स्थिति से ऊपर उठने के लिए हर व्यक्ति को प्रचुर मात्रा में स्वतंत्रता विधाता द्वारा प्राप्त है। समझदारी, ईमानदारी, जिम्मेदारी, बहादुरी ये चार विभूतियाँ ऐसी है, जिनका सदुपयोग, सुनियोजन कर हर व्यक्ति प्रगति की दिशा में आगे बढ़ता रह सकता है। वस्तुतः ये आत्म उन्नति के चार चरण हैं। इन्हें अपनाने के लिए हमें जागरूकता, तत्परता और तन्मयतापूर्वक निरंतर प्रयत्नरत रहना चाहिए।

समझदारी–समझदारी मनुष्य का सर्वोपरि गुण है। समझदारी सौभाग्य का प्रवेश द्वार है, तो बेवकूफी दुर्भाग्य का। समझदारी का अर्थ है, तात्कालिक आकर्षण में संयम बरतना, दूर की सोचना, किसी काम की प्रतिक्रिया और परिणति का रूप समझना, स्थिति के अनुकूल निर्णय और प्रयास करना। समझदारी दैवी अनुदान नहीं है, वरन सतर्क, विवेकशील व्यक्ति निरंतर अभ्यास करके इस गुण को स्थायी बनाते हैं और अपने व्यक्तित्व को निखारते हैं। समझदारी के साथ दूरदर्शिता और विवेकशीलता अनिवार्य रूप से जुड़ी रहती है। समझदार व्यक्ति संयम, श्रम, मनोयोग और अनुशासन को उज्ज्वल भविष्य की नींव मानते हैं। वे तात्कालिक लाभ पर कम ध्यान देते हैं, दूरगामी सत्परिणामों पर विचार करते हैं। इसीलिए समझदार व्यक्ति समुचित सतर्कता, तत्परता और तन्मयता से अनेकानेक उपलब्धियाँ पाते ही चले जाते हैं।

इसके विपरीत समझदारी से काम न लेने वाले व्यक्ति तत्काल के लाभ को देखते हैं और यह सोचते ही नहीं कि भविष्य में इसका क्या परिणाम होगा? जब उनकी जल्दबाजी, अदूरदर्शिता का परिणाम सामने आता है, तो उन्हें दुःख-ही-दुःख सहन करना पड़ता है।

उतावले, अस्थिर, आलसी, प्रमादी समस्त सुविधाएँ होते हुए भी धूर्तों द्वारा ठगे जाते हैं और ठोकरें खाते, निरर्थक श्रम करते, कष्ट सहते, उपहास सहते, तिरस्कार पाते हैं और हर प्रकार से घाटे में रहते हैं।

छोटी बहन के साथ एक लड़का घूमने निकला। मार्ग में नटखट बहन ने एक अमरूद वाले को धक्का दे दिया, सारे अमरूद कीचड़ में गिरकर बेकार हो गए। लड़का अमरूद वाले को लेकर घर आया और माँ से अमरूद वाले को पैसे देने के लिए कहा। माँ बहुत झल्लाई और पैसे नहीं दिए, तो उस लड़के ने अपने नाश्ते के पैसे देकर दंड की भरपाई की और खुद डेढ़ महीने तक नाश्ता नहीं किया। यही बालक आगे चलकर नैपोलियन बोनापार्ट बना।

नासमझी जीवन के अनेक क्षेत्रों में देखी जा सकती है। विद्यार्थी जीवन में कुसंग में फँसना, आवारागर्दी करना, दुर्व्यसनियों के साथ रहकर नशेबाजी, व्यभिचार जैसे दोष-दुर्गुण अपना लेना, चटोरापन, उधार लेना, फैशन और ओछापन ये सब नासमझियाँ ही तो हैं। समय रहते यदि व्यक्ति समझदारी से काम नहीं लेता तो फिर हाथ मलने और अपनी भूल पर सिर धुनकर पछताने के अलावा कुछ शेष नहीं बचता। जैसे मछली थोड़े-से आटे के लिए प्राण गँवा देती है, वैसे ही नासमझ व्यक्ति थोड़े-से प्रलोभन के लोभ में अपना अमूल्य जीवन नष्ट कर देते हैं। यदि व्यक्ति थोड़ी भी समझदारी से काम ले तो वह इंद्रिय संयम, समय संयम और अर्थ संयम अपनाते हुए उन दुर्गुणों को सरलतापूर्वक दूर कर सकता है, जो उसकी जीवन संपदा को नष्ट करते हैं। दोष-दुर्गुणों को स्वभाव का अंग बना लेने वाले समय बीतने पर किस प्रकार हाथ मलते और अपनी भूल पर सिर धुन-धुनकर पछताते हैं, इसके उदाहरण अपने इर्द-गिर्द ही देखे जा सकते हैं। समझदार फूँक-फूँककर कदम रखते हैं, गुण-दोष पर विचार करते हैं। अनुचित के लिए दृढ़तापूर्वक "ना" बोलते हैं, उचित को आत्मिक विकास के लिए एकाकी निश्चय

के आधार पर अपनाते हैं। संकल्प और साहस के साथ निश्चिंत रहकर उद्देश्य-पथ पर चलते हैं तो लक्ष्य तक पहुँचकर रहते हैं।

ईमानदारी—समझदारी के अतिरिक्त मानवी गरिमा में चार चाँद लगाने वाली है-ईमानदारी। ईमानदारी का अर्थ मोटे रूप में आर्थिक लेनदेन में प्रामाणिकता बरतना माना जाता है। वस्तुतः वह उतने क्षेत्र तक सीमित नहीं है।

व्यापारी वस्तुओं में मिलावट न करें, नासमझों की जेब न काटें, कर चोरी न करें, रिश्वत के आधार पर अनुचित लाभ न उठाएँ। साधारणतया ये बातें ईमानदारी की सीमा में आती हैं। यह नीति ऐसी है, जिसे अपनाने पर कोई आरंभ में घाटे में भले ही रहे, पर अंततः भरपाई हो जाती है।

जिन लोगों को ठाठ-बाट बनाने में, विलासिता में या फैशन-परस्ती में अनावश्यक राशि खरच करनी पड़ती है, वे ईमानदार नहीं रह सकते। फिजूलखरची की पूर्ति ऊपरी आमदनी या बेईमानी से कमाई आमदनी से ही होती है। ऐसे लोग कर्ज लेने से लेकर ठगी, जालसाजी सब कुछ कर सकते हैं और फिर चुकाने का प्रसंग आने पर मुकर जाते हैं। जिस कमाई में समुचित श्रम नहीं लगा है, उसे बेईमानी की कमाई कहा जा सकता है। जैसे जुआ, सट्टा, चोरी, लॉटरी लगाना आदि। ऐसी कमाई जिस किसी के पास जाएगी, उसे दुर्व्यसनों में लिप्त करेगी।

श्री चमनलाल सीतलवाड़ बंबई की किसी फर्म में काम करते थे। एक मामले में बचने के लिए एक आदमी उनके पास आया और एक लाख रुपए की रिश्वत देने लगा, पर श्री सीतलवाड़ ने उसे अस्वीकार कर दिया। उस व्यक्ति ने कहा-"इतनी बड़ी रकम कोई देगा नहीं।" श्री सीतलवाड़ हँसे और बोले-"देने वाले तो बहुत होंगे, पर इंकार करने वाला मुझ जैसा ही मिलेगा।" यही सीतलवाड़ एक दिन बंबई विश्वविद्यालय के कुलपति नियुक्त हुए।

ईमानदार हमें अपने प्रति, भगवान के प्रति, परिवार के प्रति व समाज के प्रति भी रहना चाहिए। हम अपनी आत्मा के दरबार में झूठे, बेईमान साबित न हों। जैसे भीतर हैं, वैसे ही बाहर रहें। छल, झूठ, कपट, फरेब किसी भी प्रकार हमारे भीतर प्रवेश न करें व पारिवारिक जिम्मेदारी के प्रति हम अपना फर्ज निबाहें।

ईमानदारी बरतना सरल है, जबकि बेईमानी करने वाले को अनेक प्रपंच रचने और छल अपनाने पड़ते हैं। स्मरण रखने योग्य तथ्य यह है कि ईमानदारी के सहारे ही कोई व्यक्ति प्रामाणिक और विश्वासी बन पाता है। वह जन-जन का स्नेह, सहयोग, सम्मान पाता है। बेईमान व्यक्ति भी चाहेगा कि उसका नौकर ईमानदार हो। इससे स्पष्ट है कि ईमानदार की सामर्थ्य और आवश्यकता कितनी बढ़ी-चढ़ी है। इसकी प्रतिष्ठा और गरिमा अंत तक बनी रहती है। झूठों की बेईमानी तो काठ की हांडी की तरह एक बार ही चढ़ती है।

जिम्मेदारी—जिम्मेदारियाँ भगवान ने मनुष्य को अनेक रूपों में सौंपी हैं। समाज ने भी उसे मर्यादाओं और वर्जनाओं के अंकुश को मानने के लिए बाधित किया है। इन सब की जो अवज्ञा करता है, उसे उद्दंड, उच्छृंखल माना जाता है।

हर व्यक्ति शरीर रक्षा, परिवार व्यवस्था, समाजनिष्ठा, अनुशासन का परिपालन जैसे कर्त्तव्यों से बँधा हुआ है। जिम्मेदारियों को निबाहने पर ही मनुष्य का शौर्य निखरता है, विश्वास बनता है और विश्वसनीयता के आधार पर ही वह व्याख्या बनने लगती है, जिसके अनुसार उन्हें अधिक जिम्मेदारियाँ सौंपी जाएँ, प्रगति के उच्च शिखर पर जा पहुँचने का सुयोग झखचता चला आए। लोग उन्हें आग्रहपूर्वक बुलाएँ और सिर-माथे पर चढ़ाएँ। जिम्मेदार लोगों का ही व्यक्तित्व निखरता है और बड़े पराक्रम वे ही कर पाते हैं।

देशद्रोही कृष्णराव अलाउद्दीन के लिए जासूसी कर रहा है, जब इस बात पता उसकी पत्नी वीरमती को चला, तो उसने अपने

पति की हत्या कर दी। मरते हुए पति ने कहा–''यह क्या किया वीरमती तुमने? भारतीय स्त्रियाँ ऐसा तो कभी नहीं करतीं।'' ''हाँ, तुम बिलकुल ठीक कहते हो, पर भारतीय पुरुष भी तो कभी देश द्रोह नहीं करते। इस समय राष्ट्र की रक्षा ही मेरा धर्म है। रही पतिव्रत की बात सो यह अब लो।'' यह कहकर उसने खुद को भी कटार भोंक ली और पति के साथ सती हो गई।

हर समझदार व्यक्ति की जिम्मेदारी है कि वे जिस प्रकार अपने शरीर और अर्थव्यवस्था का ध्यान रखता है, उसी प्रकार अपने प्रमुख उपकरण शरीर और मस्तिष्क को स्वस्थ व संतुलित बनाए रहे। शरीर भगवान की सौंपी हुई अमानत है। उसे यदि असंयमित और अव्यवस्थित न किया जाए तो पूर्ण आयुष्य तक निरोगी रहा जा सकता है। हमारी जिम्मेदारी है कि जिस प्रकार चोर को घर में नहीं घुसने दिया जाता, उसी प्रकार मस्तिष्क में अनुपयुक्त विचारों का प्रवेश न होने दें। गैर जिम्मेदारी का आभास यहीं से मिलता है कि व्यक्ति ने अपने शारीरिक व मानसिक स्वास्थ्य को गड़बड़ा तो नहीं दिया।

नवयुवको! तुम्हें भी ईश्वर ने विवेकशील मस्तिष्क और विशाल हृदय दिया है। अपनी जिम्मेदारियाँ निबाहना सीखो। अपने देश, धर्म, समाज, संस्कृति से संबंधित अपने संपर्क क्षेत्र को भौतिक दृष्टि से समुन्नत और भावना की दृष्टि से सुसंस्कृत बनाने का प्रयत्न करो, क्योंकि तुम ही वर्तमान हो, तुम ही भविष्य हो। हमारा परिवार, समाज व राष्ट्र यशस्वी बने, यह तुम्हारी जिम्मेदारी है।

बहादुरी–समझदार, ईमानदार व जिम्मेदार होने के साथ-साथ मनुष्य को बहादुर भी होना चाहिए। साहसी और पराक्रमी व्यक्ति कायरों की तरह असफलता की आशंका और कठिनाइयों से भयभीत होकर अपने कर्त्तव्य छोड़कर बैठ नहीं जाते, जो करने योग्य है उसको करते हैं।

ईश्वर ने मनुष्य को इतना कमजोर नहीं बनाया कि उसे दीन-हीन बनकर जीना पड़े। मार्ग उन्हीं का अवरुद्ध रहता है जो अपने ऊपर भरोसा नहीं करते। कितने ही व्यक्ति आत्महीनता की ग्रंथि से ग्रसित होकर अच्छे-खासे साधन होते हुए भी अपने आपको गया-गुजरा मानते हैं। इस प्रकार के लोगों को ऐसा अभागा जानना चाहिए, जिसने दारिद्र्य को निमंत्रण देकर बुलाया है और अपने सिर पर बैठा लिया है। बहादुरी इसी में है कि अगर तुम्हारे पास अल्प साधन ही हैं तो भी अपनी लगन, हिम्मत और मेहनत के बलबूते ऐसे काम कर दिखाओ, जिसके लिए लोगों को आश्चर्यचकित होकर दाँतों तले उँगली दबानी पड़ें।

हेलन केलर अंधी, बहरी, गूँगी तीनों ही व्यथाओं से पीड़ित थी, पर अपनी सूझबूझ और संकल्पबल के सहारे शिक्षा प्राप्ति का कोई-न-कोई तरीका निकालती रही और बुद्धिकौशल के सहारे सफल होती रही। उसने अंग्रेजी में एम०ए० पास किया, साथ ही अन्य भाषाओं, लैटिन, फ्रेंच, जर्मनी आदि में भी प्रवीण थी। घरेलू काम भी भलीभाँति कर लेती थीं।

उसने कुशलता का उपयोग अपने लिए ही नहीं किया, वरन अपंगों की शिक्षा तथा स्वावलंबन के लिए सारे संसार में भ्रमण करके करोड़ों रुपया एकत्रित किया। उनकी विद्या से प्रभावित होकर कितने ही विश्वविद्यालयों ने डॉक्टरेट की मानद् उपाधि दी। लोग उसे देखकर संसार का आठवाँ आश्चर्य कहते।

स्मरण रहे बुराइयाँ संघर्ष के बिना जाती नहीं और संघर्ष के लिए साहस अपनाना अनिवार्य होता है। सभी जानते हैं कि बहादुरों की अपेक्षा कायरों पर आततायियों के आक्रमण हजार गुने अधिक होते हैं। कठिनाइयों से पार पाने और प्रगति पथ पर आगे बढ़ने के लिए साहस ही एक मात्र ऐसा साथी है, जिसको साथ लेकर तुम अकेले भी दुर्गम दीखने वाले पथ पर चल पड़ने और लक्ष्य तक पहुँचने में समर्थ हो सकते हो।

अपना दृष्टिकोण सुधारें

जिस तरह हरा चश्मा चढ़ा लेने पर चारों ओर हरा-ही-हरा, लाल चढ़ा लेने पर लाल-ही-लाल दिखाई देता है, वैसे ही संसार की विभिन्नता मनुष्य के दृष्टिकोण का ही परिणाम है। एक पेड़ को बढ़ई इस दृष्टि से देखेगा कि इसमें से काम का सामान क्या बनेगा, एक दार्शनिक विश्व चेतना और जड़ के सम्मिलित सौंदर्य को देखकर खिल उठेगा, एक पशु उसे अपने भोजन की वस्तु समझेगा और एक साधारण व्यक्ति उसे कोई महत्त्व नहीं देगा।

मनुष्य का जैसा दृष्टिकोण होता है, वह दूसरों के प्रति जैसा सोचता है, उसी के अनुसार उसके विचार होते हैं और इनके फलस्वरूप वैसा ही वातावरण व परिस्थितियाँ प्राप्त कर लेता है। दूसरों के दोष-दर्शन, नुक्ताचीनी करने वाले व्यक्ति जहाँ भी जाते हैं, उन्हें अच्छाई नजर ही नहीं आती और लोगों से उनकी नहीं बनती। सबको अच्छी निगाह से देखने पर सरल सात्विक स्वभाव के लोगों को सब जगह अच्छाई ही नजर आती है। बुराई में भी वह ऊँचे आदर्श का दर्शन करते हैं। मरे हुए कुत्ते से लोग घृणा करते हैं, किंतु करुणामूर्ति ईसा मसीह ने उसी में परमात्मा के सौंदर्य का दर्शन कर अपनी गोद में उठा लिया था।

वास्तव में जिस व्यक्ति के अपने भीतर बुराई रहा करती है, उसे सारा संसार बुरा दीख पड़ता है। यह बात हर व्यक्ति के बारे में भी सत्य है। इसलिए आदमी की पहली आवश्यकता है, अपने भीतर की बुराई को दूर करे, फिर दूसरों की बुराइयों की तरफ

ध्यान दे। इन्हीं सब बातों को ध्यान में रखकर कविवर संत कबीर ने अपने अनुभव के आधार पर कहा–

बुरा जो देखन में चला, बुरा न मिलिया कोय।
जो दिल खोजा आपना, मुझ सा बुरा न कोय॥

अर्थात जब मैं संसार में बुरे स्वभाव वाले प्राणियों को खोजने चला तो मुझे कहीं एक भी व्यक्ति बुरा दिखाई नहीं दिया। इसके बाद जब मैंने अपने भीतर की खोज आरंभ की तो पाया कि वास्तव में इस संसार में मुझसे बढ़कर बुरा व्यक्ति और कोई नहीं है। स्पष्ट है कि कबीर जैसे संत ने इस ओर संकेत दिया है कि व्यक्ति को अपनी वास्तविकता जानकर ही अपना दृष्टिकोण या नजरिया स्पष्ट करना चाहिए व दूसरों की बुराई की खोज या विश्लेषण नहीं करना चाहिए।

सर्वत्र अच्छाई के दर्शन करने पर बुरे तत्त्व भी अनुकूल बन जाते हैं। इस तरह बाह्य वातावरण एवं परिस्थितियों के निर्माण में मनुष्य का स्वयं का अपना दृष्टिकोण और उससे प्रेरित भाव, विचार, आचरण ही प्रमुख होते हैं। मनुष्य के मित्र और शत्रु उसके भाव, विचार, आचरण, दृष्टिकोण आदि ही हैं।

युधिष्ठिर और दुर्योधन एक ही सभा में बैठे हुए थे। दुर्योधन से पूछा गया–"आपको यहाँ कितने भले आदमी दिखाई पड़ते हैं?" दुर्योधन ने कहा–"मुझे यहाँ कोई भी भला आदमी दिखाई नहीं देता।"

यही प्रश्न जब युधिष्ठिर से पूछा गया तो उन्होंने कहा–"मुझे यहाँ सब भले-ही-भले दिखाई देते हैं, बुरा तो कोई नजर ही नहीं आता।" मनुष्य अच्छे-बुरे दृष्टिकोण को बाह्य परिस्थितियों पर आरोपित करके वैसा ही देखता है। जैसा मनुष्य स्वयं होगा, वैसा ही बाहर देखेगा। उपर्युक्त कथन की पुष्टि के लिए रामायण की एक चौपाई बिलकुल सटीक बैठती है–

जाकी रही भावना जैसी। प्रभु मूरति देखी तिन्ह तैसी॥

हम सुधरें, हमारा दृष्टिकोण सुधरे तो दूसरों का सुधार होना कुछ भी कठिन न रह जाएगा। दूसरों को सुधारने के पूर्व हमें अपने को सुधारने की बात सोचनी चाहिए। दूसरों से सज्जनता की आशा करने से पूर्व हमें अपने आपको सज्जन बनाना चाहिए। दूसरों की दुर्बलताओं पर एकदम आग-बबूला हो उठने से पहले हमें ये देखना चाहिए कि अपने भीतर कितने दोष-दुर्गुण भरे पड़े हैं। बुराइयों को दूर करना एक प्रशंसनीय प्रवृत्ति है। अच्छे काम का प्रयोग अपने से ही आरंभ करना चाहिए।

संसार में कोई व्यक्ति ऐसा नहीं, जिसे सब सुख हों, सारी परिस्थितियाँ मनोवांछित हों, कोई कष्ट न हो, कभी असफलता न मिले। जहाँ अनेक सुख-साधन भगवान ने मनुष्य को दिए हैं, वहाँ कुछ थोड़े अभाव भी रखे हैं। विवेकशील व्यक्ति जीवन में उपलब्ध सुख-सुविधाओं का अधिक ङ्क्षचतन करते हैं और उन उपलब्धियों पर संतोष प्रकट करते हुए ईश्वर को धन्यवाद देते रहते हैं। इसके विपरीत अनेक लोग उपलब्ध अनेक सुख-साधनों को तुच्छ मानते हैं और जो थोड़े-से कष्ट हैं, अभाव हैं, उन्हें ही पर्वत तुल्य मानकर अपने आपको भारी विपत्तिग्रस्त अनुभव करते हैं। ऐसे लोगों की अधिकांश मानसिक शक्ति इस रोने-झींकने में ही चली जाती है।

जीवन को शांतिपूर्ण रीति से व्यतीत करने का तरीका यह है कि अपनी कठिनाइयों का मूल्य बढ़ा-चढ़ाकर न आँकें, वरन उतना ही समझें, जितनी वह वास्तव में हैं। इससे हमारी अनेक चिंताएँ आसानी से नष्ट हो सकती हैं।

एक विद्यार्थी परीक्षा में अनुत्तीर्ण होता है। फेल होने के समाचार से उसका मानसिक संतुलन डगमगा जाता है। वह इस असफलता को वज्रपात जैसा मानता है। सोचता है-सारी दुनिया मुझे धिक्कारेगी। मित्रों के समक्ष मेरी सारी प्रतिष्ठा धूल में मिल जाएगी। अभिभावक कटु शब्द कहकर मेरा तिरस्कार करेंगे। यह कल्पना उसे असह्य लगती है और रेल के आगे कटकर, नदी में कूदकर या और किसी

प्रकार वह आत्महत्या कर लेता है। घर भर में कुहराम मच जाता है। वृद्ध माता-पिता रो-रोकर अंधे हो जाते हैं। एक उल्लासपूर्ण हँसते-खेलते घर का वातावरण शोक, क्षोभ और निराशा में परिणत हो जाता है। इस विपन्न स्थिति को उत्पन्न करने का सारा दोष उस गलत दृष्टिकोण का है, जिसके अनुसार एक छोटी-सी असफलता का मूल्य इतना बढ़ा-चढ़ाकर आँका गया।

एक दूसरा विद्यार्थी भी उसी कक्षा में अनुत्तीर्ण होता है। उसे दु:ख तो होता है, पर वह वस्तुस्थिति का सही मूल्यांकन कर लेता है। सोचता है-वर्तमान परिस्थिति में अनुत्तीर्ण होना एक साधारण-सी बात है। इसमें सदा विद्यार्थी ही दोषी नहीं होता, वरन प्राय: शिक्षकों की उदासीनता, बिना पढ़े हुए विषयों के परचे आ जाना और नंबर देने वालों की लापरवाही भी इसका कारण होती है। इस वर्ष अनुत्तीर्ण हो गए तो अगले वर्ष अधिक परिश्रम से अच्छे डिवीजन में उत्तीर्ण हो जाऊँगा, आदि बातों से अपने मन को समझा लेता है और अनुत्तीर्ण होने की खिन्नता को जल्दी ही अपने मन से हटाकर आगे के कार्यक्रम में लग जाता है।

दोनों ही छात्र एक ही समय एक ही कक्षा में अनुत्तीर्ण हुए थे। एक ने आत्महत्या कर ली, दूसरे ने उसे साधारण मानकर अपनी जीवन चर्या को क्रमश: जारी रखा। फेर केवल दृष्टिकोण का था, परिस्थिति का नहीं। यदि परिस्थिति का होता तो दोनों को समान दु:ख होना चाहिए था और दोनों को आत्महत्या करनी चाहिए थी, पर ऐसा होता नहीं है। इससे स्पष्ट है कि परिस्थितियों के मूल्यांकन में गड़बड़ी होने से मानसिक संतुलन बिगड़ा और उसी से दुर्घटना घटित हुई। हमें चाहिए कि अपनी कठिनाइयों को बढ़ा-चढ़ाकर न देखें, वरन उनको दूसरे आपत्तिग्रस्त लोगों के साथ तुलना करके अपने आपको अपेक्षाकृत कम दु:खी अनुभव करें। संदर्भ में एक शायर ने कहा है-"दुनिया में कितना गम है, मेरा गम कितना कम है।"

उपर्युक्त दो उदाहरणों से एक चीज और उभरकर सामने आती है और वह यह है कि जहाँ तक हो सके जीवन के प्रति अपना नजरिया या दृष्टिकोण सकारात्मक रखें। एक गिलास में यदि आधा पानी है तो उसे आधा खाली है जैसी नकारात्मक सोच की जगह वह गिलास आधा भरा है वाला सकारात्मक दृष्टिकोण अपनाएँ।

उपलब्ध साधनों का सदुपयोग यदि हम सीख जाएँ, प्रत्येक वस्तु का मितव्ययतापूर्वक उपयोग करें, उसका पूरा-पूरा लाभ लें, तो जो कुछ प्राप्त है, वही हमारे आनंद को अनेक गुना बढ़ा सकता है। इसके विपरीत यदि अपना दृष्टिकोण अस्त-व्यस्त है, तो बड़ी मात्रा में सुख साधन उपलब्ध होते हुए भी वह कुछ लाभ न पहुँचा सकेंगे। सुखी जीवन की आकांक्षा सभी को होती है, पर उसकी उपलब्धि तभी संभव है जब हम अपने दृष्टिकोण की त्रुटियों को समझें और उन्हें सुधारने का प्रयत्न करें। सुधरा हुआ दृष्टिकोण स्वल्प साधनों और परिस्थितियों में भी शांति और संतोष को कायम रख सकता है।

प्रत्येक व्यक्ति अपने भाग्य का निर्माता स्वयं है। मकड़ी अपना जाला स्वयं बनाती है और उसमें स्वयं ही उलझी रहती है। मनुष्य ने भी अपनी परिस्थितियों का जाला स्वयं ही बुना है और वह उसमें स्वयं ही उलझता और निकलता रहता है।

संसार में ऐसे व्यक्तियों का अभाव नहीं है जो अस्वस्थ अवस्था में भी काम करते रहते हैं। अपना दु:ख-दरद भूलकर दूसरों की सेवा में संलग्न रहते हैं। कभी खाट पकड़कर अथवा घर बैठकर रोग की आराधना नहीं करते। साथ ही ऐसे लोग भी संसार में पाए जाते हैं, जो थोड़ा-सा जुकाम हो जाने या जरा-सा ज्वर आ जाने पर चारपाई पर पड़े रहते हैं। इस भय से कपड़ों में लिपटे लेटे रहते हैं कि काम करने से बीमारी बढ़ जाएगी, शरीर टूट जाएगा। इस प्रकार हम देख सकते हैं कि दु:ख-तकलीफ,

अभाव परिस्थिति पर निर्भर नहीं हैं, बल्कि समझ अथवा दृष्टिकोण पर निर्भर करता है।

अशांति और असंतोष का बहुत कुछ आधार मनुष्य का अपना मन भी है। यदि वास्तव में दु:ख से छूटना और सुख की प्राप्ति करनी है, तो किन्हीं बाह्य वस्तुओं अथवा परिस्थितियों को उसका हेतु मानने का अज्ञान छोड़ना होगा। दूसरों को दोष देने का स्वभाव बदलना होगा। अपने मन, रुचि, धारणा और विश्वास का परिमार्जन करना होगा। अपने दृष्टिकोण को विस्तृत तथा सौंदर्य प्रधान कर संसार को देखना होगा, तभी दु:ख से छूटना और सुख पा सकना संभव होगा। अपने संकीर्ण अथवा हीन दृष्टिकोण को सदाचार में बदल देने पर संसार में सभी ओर सौंदर्य और सुख दृष्टिगोचर होने लगेगा। 'नजरें बदलीं तो नजारे बदल गए' की अनुभूति होने लगेगी।

ईमानदार होने का अर्थ है—हजार मनकों में अलग चमकने वाला हीरा।

गुण-कर्म-स्वभाव की श्रेष्ठता

(सच्ची लोकप्रियता)

जीवन की वास्तविक सफलता और लोकप्रियता पाने के लिए धन-दौलत अथवा शक्ति-संबल की आवश्यकता नहीं, उसके लिए आवश्यकता है-गुण, कर्म और स्वभाव की श्रेष्ठता की। जब तक गुण-कर्म-स्वभाव में श्रेष्ठता का समावेश नहीं होगा, बहुत कुछ धन-दौलत एवं शक्ति-संपन्नता होने पर भी मनुष्य वास्तविक लोकप्रियता नहीं पा सकता।

जो गुणी है, उसका आदर क्या धनवान और क्या निर्धन दोनों ही करते हैं। उसकी पूजा-प्रतिष्ठा बाह्य आधार पर नहीं होती, आंतरिक गुणों के कारण ही होती है। सहानुभूति, संवेदना, सहयोग, सेवा का गुण मनुष्य को वह लोकप्रियता प्राप्त करा सकता है, जो एक धनवान लाखों-हजारों रुपया खर्च करके भी नहीं पा सकता। सहानुभूति का एक शब्द, संवेदना का एक आँसू और सेवा का एक कार्य टनों स्वर्ण से भी अधिक मूल्यवान है। शोक के समय किसी को दिया हुआ सांत्वना का एक शब्द, दीन-दुःखी अथवा आपत्ति पीड़ित व्यक्ति की सेवा, आर्थिक सहायता से कहीं अधिक संतोषदायक होती है। एक निर्धन एक धनाढ्य की अपेक्षा कहीं अधिक लोकप्रियता पा सकता है, यदि वह अपने में वास्तविक गुणों का विकास कर लेता है।

बादशाह होने के बाद हसन से किसी ने पूछा-"आपके पास न तो पर्याप्त धन था और न सोना फिर आप सुल्तान कैसे हो गए?"

हसन ने उत्तर दिया–''मित्रों के प्रति मेरा सच्चा प्रेम, शत्रु के प्रति उदारता और मनुष्य के प्रति मेरा सद्भाव, इतनी सामग्री क्या सुल्तान होने के लिए पर्याप्त नहीं।''

जो सदाचारी है, सुकर्मवान है, उसका आचरण ही उसको लोकप्रिय बना देगा। लोग उस पर विश्वास करेंगे, उसे आदर की दृष्टि से देखेंगे और उसकी चर्चा करेंगे। कर्मों की श्रेष्ठता एवं निष्कलंकता में आस्था रखने वाला मनुष्य बड़े-से-बड़ा कष्ट उठाकर भी किसी को धोखा नहीं देगा, मिथ्याचरण अथवा आडंबर का अवलंबन न लेगा। कोई भी ऐसा काम न करेगा, जिससे वह, उसका परिवार, समाज, राष्ट्र अथवा मानवता लांछित हो। सुकृति के हृदय में छल-कपट, ईर्ष्या-द्वेष, काम-क्रोध आदि विकारों का वेग नहीं रहता। ऐसे चारु-चरित लोग अपने कर्त्तव्यों, अधिकारों अथवा शक्तियों का प्रयोग ऐसी दिशा में नहीं करते, जिससे उनकी नागरिकता एवं नैतिकता पर आँच आए। ऐसे श्रेष्ठ लोगों की तरफ लोकचित्त आकर्षित होने लगता है।

ईरानी बादशाह अब्बास शिकार से वापस लौटते हुए अपने साथ एक चरवाहे युवक जिसका नाम मुहम्मद अली बेग था, ले आए। यह चरवाहा हाजिर जवाब व प्रभावी व्यक्तित्व का मालिक था। मुहम्मद अली बेग को राज्य का कोषाध्यक्ष बना दिया गया। निर्धन परिवार का होते हुए भी इतने धन को देखकर उसका मन कभी विचलित नहीं हुआ। वह अपने आप को कोषालय का रक्षक मानता हुआ सादगी पूर्ण जीवन व्यतीत करता था। बादशाह के बाद उनका पौत्र शाह सफी राज सिंहासन पर आसीन हुआ। एक दिन बिना सूचना दिए उसने हवेली का निरीक्षण किया। एक कमरे पर उसकी दृष्टि गई, जिस पर तीन बड़े-बड़े ताले लगे थे। शाह ने पूछा–''इसमें ऐसा क्या है, जो इतने मजबूत ताले लगाए हैं?'' तुरंत ताला खोल दिया गया। शाह ने कमरे के मध्य में एक लाठी, शीशे की सुराही आदि बर्तन तथा पोशाक और दो मोटे कंबल देखे।

अली बेग ने कहा–''जब स्वर्गीय शाह मुझे लाए तो यही वस्तुएँ मेरे पास थीं और आज भी मेरे पास अपनी कहने को यही हैं। इनसे प्रेरणा लेकर उसी स्तर का जीवन अभ्यास बनाए रखता हूँ।'' युवा बादशाह इस आदर्शनिष्ठ को देखकर नत मस्तक हो गया।

जिसका स्वभाव मधुर है, जो क्रोध के कारण होने पर भी शांत एवं संतुलित रहता है, छोटे-बड़े सभी व्यक्तियों से समान प्रसन्नता से मिलता और बात करता है, किसी की निंदा अथवा छिद्रान्वेषण करना जिसके स्वभाव का अंग नहीं होता, जो परदोषदर्शी न होकर परगुणगायक होता है, वह व्यक्ति सहज ही श्रेष्ठ स्वभाव के कारण लोकप्रियता पा लेता है। पावन स्वभाव के लोग निश्चय ही परमार्थ कर्मों में विश्वास रखते हैं। परमार्थ अथवा परोपकार का छोटा-सा भी अवसर आने पर सुकृत स्वभाव का व्यक्ति बिना किसी प्रोत्साहन के स्वतः उसमें लग जाता है। किसी का दुःख देख आँसू भर लाना और हर्ष देखकर पुलकित हो उठना, श्रेष्ठ स्वभाव के व्यक्तियों की एक प्राकृतिक विशेषता होती है। ऐसे पुनीत पुरुषों को भला कौन न जानेगा और कौन न याद करेगा?

राजा बालीक ने किसी बात पर रुष्ट होकर अपने प्रधानमंत्री भद्रजीत को पद से हटा दिया। लोकमंगल के लिए पद नहीं, श्रेष्ठ भावना चाहिए। भद्रजीत अपनी आदर्शनिष्ठा पर अडिग रहे। उन्होंने जन संपर्क साधा और लोकसेवा के कार्यों में संलग्न हो गए। प्रजा का सहयोग पहले की अपेक्षा अधिक बढ़ा। फलतः भद्रजीत के सुख-संतोष में भी वृद्धि हो गई।

राजा की इच्छा हुई कि मंत्री को मिली सजा का फल आँखों से देखें। राजा वेष बदलकर भद्रजीत के पास पहुँचे तो देखा कि वे तो बहुत कुशलपूर्वक हैं। अभाव, परेशानी का कोई चिह्न वहाँ नहीं था। वेश बदले हुए राजा ने जब पूछा, तो भद्रजीत ने कहा–''मेरे ऊपर राजा का बड़ा उपकार है। मुझे यह समझने का अवसर मिला कि पद की अपेक्षा अपने कर्म और व्यवहार

का प्रभाव कितना अधिक सार्थक होता है। आज मेरे और मेरी आराध्य जनता के बीच केवल स्नेह सूत्र है। पद, प्रतिष्ठा और औपचारिकता की खाई पट चुकी है। सुख-दुःख में जो आत्मीयता अब अनुभव हुई वह पहले कहाँ थी?'' राजा समझ गए सत्पुरुष पद से नहीं अपने गुण, कर्म और स्वभाव की श्रेष्ठता से सम्मान पाते है।

गुण, कर्म, स्वभाव तीनों की श्रेष्ठता से ही वास्तविक लोकप्रियता मिलती है। कोई यदि बहुत कुछ गुणी है, बड़ा दयालु तथा दर्दीला है, उसकी सहानुभूति एवं संवेदना जाग्रत होने में देर नहीं लगती, किंतु उसके कर्म गुणों के अनुरूप नहीं हैं तो उसके गुण मिथ्यात्व के दोष के भागी होंगे। किसी के आँसू देखकर आँसू तो भर लिए, किंतु उन्हें दूर करने, पौंछने अथवा बंद करने के योग्य कोई छोटा-सा भी करणीय कर्म नहीं किया तो वह सहानुभूति उसकी अपनी मानसिक दुर्बलताजन्य भावुकता ही मानी जाएगी। ऐसी निष्क्रिय भावुकता सच्ची लोकप्रियता प्राप्त नहीं कर सकती। जो गुणी भी है, जिसके कर्म भी उज्ज्वल हैं, किंतु स्वभाव कष्टकारक है तो लोग उसे भी पसंद न करना चाहेंगे। किसी से सहानुभूति रखकर उसकी सक्रिय सहायता करने वाला यदि भावावेश में उससे कोई कठोर बात या व्यवहार कर बैठेगा तो उसके सारे किए कराए पर पानी फिर जाएगा। अस्तु, वास्तविक लोकप्रियता प्राप्त करने के लिए गुण, कर्म, स्वभाव तीनों का श्रेष्ठ होना आवश्यक है।

जीवन की सफलता यह नहीं है कि किसी ने कितना धन, कितना वैभव, कितनी शक्ति तथा कितना अधिकार प्राप्त कर लिया, बल्कि जीवन की सफलता यह है कि उसने कितने लोगों का हृदय जीत लिया है, कितनों के हृदय पर मनुष्यत्व की अमिट छाप छोड़ी है, कितने लोगों का विश्वास किस सीमा तक जीता है? उसने अपने आचरण से कितने लोगों को याद करने के लिए विवश

कर लिया है। ऐसी लोकप्रियता ही जीवन की वास्तविक सफलता है और यह लोकप्रियता गुण-कर्म-स्वभाव तीनों की श्रेष्ठता से ही प्राप्त हो सकती है।

बीसवीं सदी के महान वैज्ञानिक आइंस्टीन वेल्जियम की महारानी के निमंत्रण पर ब्रूसेल्स पहुँचे। महारानी ने अनेक उच्च अधिकारियों को उन्हें लेने भेजा, किंतु सामान्य वेशभूषा और सीधे-सादे आइंस्टीन को वे पहचान नहीं पाए और लौट गए।

आइंस्टीन अपना बैग उठाए राजमहल पहुँचे। जब रानी ने अपने अधिकारियों की अज्ञता के कारण हुई असुविधा के लिए खेद प्रकट किया, तो वे हँसते हुए बोले-"आप जरा-सी बात के लिए दुःख न करें, मुझे पैदल चलना बहुत अच्छा लगता है।" जिस राजसी सम्मान को पाने के लिए लोग जीवन भर एड़ी-चोटी का पसीना एक करते रहते हैं, वह सम्मान महामानवों को सादगी की तुलना में इतना छोटा लगता है कि उसकी चर्चा भी चलना निरर्थक समझते हैं।

प्रसन्न रहने के दो ही उपाय हैं- आवश्यकताएँ कम करें और परिस्थितियों से ताल-मेल बिठाएँ।

सद्‌गुण बढ़ाएँ, सुसंस्कृत बनें

मनुष्य के पास सबसे बड़ी पूँजी सद्‌गुणों की है। जिसके पास जितने सद्‌गुण हैं, वह उतना ही बड़ा अमीर है। धन के बदले बाजार में हर चीज खरीदी जा सकती है। इसी प्रकार सद्‌गुणों की पूँजी से किसी भी दिशा में अभीष्ट प्रगति की जा सकती है। जिसके भीतर सद्‌गुणों की पूँजी भरी पड़ी है, आत्मबल और आत्मविश्वास उसे दैवी सहायता की तरह सदा प्रगति का मार्ग दिखाते हैं। अपने मधुर स्वभाव के कारण वह जहाँ भी जाता है, वहीं अपना स्थान बना लेता है। अपनी विशेषताओं से वह सभी को प्रभावित करता है और सभी की सहानुभूति पाता है। दूसरों को प्रभावित करने और अपनी सफलता का प्रधान कारण तो अपने सद्‌गुण ही होते हैं। जिसके पास यह विशेषता होगी, उसके लिए पराए अपने बन जाएँगे और शत्रुओं को मित्र बनने में देर न लगेगी। जीवन का आधार स्तंभ सद्‌गुण हैं। अपने गुण-कर्म-स्वभाव को श्रेष्ठ बना लेना, अपनी आदतों को श्रेष्ठ सज्जनों की तरह ढाल देना, वस्तुतः ऐसी बड़ी सफलता है, जिसकी तुलना किसी भी अन्य सांसारिक लाभ से नहीं की जा सकती। सद्‌गुणों के विकास का उचित मार्ग यह है कि उन्हीं के संबंध में विशेष रूप से विचार किया करें, वैसा ही पढ़ें, वैसा ही सुनें, वैसा ही कहें, वैसा ही सोचें जो सद्‌गुणों को बढ़ाने में, सत्प्रवृत्तियों को ऊँचा उठाने में सहायक हों। सद्‌गुणों को अपनाने से अपने उत्थान और आनंद का मार्ग कितना प्रशस्त हो सकता है, इसका चिंतन और मनन निरंतर करना चाहिए।

अपने अंदर सद्‌गुणों के जितने बीजांकुर दिखाई पड़ें, जो अच्छाइयाँ और सत्प्रवृत्तियाँ दिखाई पड़ें, उन्हें खोजते रहना चाहिए। जो मिलें उन पर प्रसन्न होना चाहिए और उन्हें सींचने-बढ़ाने में लग जाना चाहिए। घास-पात के बीच यदि कोई अच्छा पेड़-पौधा उगा होता है, तो उसे देखकर चतुर किसान प्रसन्न होता है और उसकी सुरक्षा तथा अभिवृद्धि की व्यवस्था जुटाता है, ताकि उस छोटे पौधे के विशाल वृक्ष बन जाने से उपलब्ध होने वाले लाभों से वह लाभान्वित हो सके। हमें भी अपने सद्‌गुणों को इसी प्रकार खोजना चाहिए। जो अंकुर उगा हुआ है, यदि उसकी आवश्यक देखभाल की जाती रहे तो वह जरूर बढ़ेगा और एक दिन पुष्प-पल्लवों से हरा-भरा होकर चित्त में आनंद उत्पन्न करेगा। हम सज्जन बनेंगे, श्रेष्ठताएँ बढ़ाएँगे, सद्‌गुणों का विकास करेंगे, यही अपनी आकांक्षाएँ रहनी चाहिए। सद्‌गुण यदि थोड़ी मात्रा में भी अपने अंदर मौजूद हैं तो भविष्य में उनका विकास होने पर अपना भाग्य और भविष्य बहुत ही उज्ज्वल होने की कोशिश सहज ही की जा सकती है। माना कि आज अपने अंदर सद्‌गुण कम हैं, छोटे हैं, दुर्बल हैं, पर यही क्या कम है कि वे मौजूद हैं और यह क्या कम है कि हम उन्हें बढ़ाने की बात सोचते हैं। संसार में कोई विभूति ऐसी नहीं जो तीव्र आकांक्षा और प्रबल पुरुषार्थ के आधार पर प्राप्त न की जा सकती हो। सद्‌गुणों की बहुमूल्य संपत्ति मानव जीवन की सबसे बड़ी विभूति मानी जाती है। उसे प्राप्त करना कठिन तो है, पर कठिनाई उन्हीं के लिए है जो उधर ध्यान नहीं देते। जिन्होंने अपने मन और मस्तिष्क को श्रेष्ठता का महत्त्व समझने और उसे प्राप्त करने के लिए अभिमुख कर रखा है, उन्हें उनका लक्ष्य प्राप्त होगा ही, वे श्रेष्ठ-सज्जन बनकर अपने को परम भाग्यशाली अनुभव करेंगे ही।

एक राजा को एक दिन स्वप्न में एक साधु ने बताया कि कल रात को एक विषैले सर्प के काटने से तेरी मृत्यु हो जाएगी। वह

सर्प तुम्हारा पूर्व जन्म का शत्रु है और अमुक पेड़ की जड़ में रहता है। प्रातःकाल राजा सोकर उठा। विचार करने लगा कि आत्मरक्षा के लिए क्या उपाय करना चाहिए? राजा को विश्वास था कि उसका स्वप्न सच्चा है। उसने सर्प के साथ मधुर व्यवहार का निश्चय किया। संध्या होते ही पेड़ की जड़ से लेकर अपनी शँय्या तक फूलों का बिछौना बिछवा दिया। सुगंधित जलों का छिड़काव करवा दिया, मीठे दूध के कटोरे जगह-जगह रखवा दिए और सेवकों से कह दिया कि सर्प आए तो उसे कोई किसी प्रकार का कष्ट न दे।

रात्रि के समय सर्प जैसे-जैसे राजा के महल की तरफ बढ़ता गया, उसका क्रोध कम होता गया। अंत में जब राजा के पास पहुँचा तो उसके सद्व्यवहार से प्रसन्न होकर मित्रता के उपहारस्वरूप अपनी बहुमूल्य मणि देकर वापस चला गया। भलमनसाहत और सद्व्यवहार ऐसे प्रबल अस्त्र हैं, जिनसे बुरे-से-बुरे स्वभाव के दुष्ट मनुष्यों को भी परास्त होना पड़ता है।

गुणों का विकास करने में प्रयत्नशील हों तो संदेह नहीं कि आप सम्मान प्राप्त करेंगे। लोग गुणों की पूजा करते हैं, व्यक्ति की नहीं। सचाई को सिर झुकाते हैं, बनावटीपन को नहीं। टेसू का फूल देखने में बड़ा आकर्षक होता है, किंतु लोग गुलाब की सुवास को ही अधिक पसंद करते हैं। आप में सद्गुणों का विकास होगा तो आप अवश्य ही प्रशंसा के पात्र होंगे। गुणों की मात्रा जितनी मनुष्य में विकसित होती है, उसी अनुपात में लोग उधर आकर्षित होते हैं। अच्छा काम करने वालों की सब जगह प्रशंसा होती है। आपका कोई एक गुण सामान्य श्रेणी के व्यक्तियों से जितना अधिक होगा, उतना ही आपको अधिक यश मिलेगा।

गुण-ग्राहकता एक विशेष भावना है। यदि सभी विचारों को अलग करके मनुष्य इसी में ध्यानपूर्वक अपनी मनःशक्ति को केंद्रित कर दे और प्रतिदिन अपनी भावना को दृढ़ करता

रहे तो वह सद्‌गुणों का दृश्यमान पुतला बन जाता है। उसकी मानसिक शक्तियाँ बढ़ जाती हैं, बैर घट जाता है, पराए अपने हो जाते हैं, दुःख मिटने और सुख बढ़ने लगते हैं। गुण देखें, गुणों की चर्चा करें, गुणवानों को प्रोत्साहित करें तो अपना यह स्वभाव दूसरों के लिए ही नहीं अपने लिए भी परम मंगलमय सिद्ध हो सकता है।

सुकरात बहुत ही कुरूप थे, फिर भी वे सदा दर्पण पास रखते थे और बार-बार मुँह देखते थे। एक मित्र ने कारण पूछा तो उन्होंने कहा-"सोचता हूँ, इस कुरूपता का प्रतिकार मुझे अधिक अच्छे कार्यों से सुंदरता बढ़ाकर करना चाहिए। इसी बात को याद रखने में दर्पण से सहायता मिलती है।" दूसरी बात सुकरात ने कही-"जो सुंदर हैं, उन्हें भी बार-बार दर्पण देखना चाहिए और सीखना चाहिए कि ईश्वर प्रदत्त सौंदर्य पर कहीं दुष्प्रवृत्तियों के कारण दाग-धब्बा न लग जाए।" इनका मत था-"मनुष्य में चंदन जैसे गुण चाहिए, सुडौल हो या बेडौल, बिखेरें सुगंध ही।"

अपना मूल्य समझो और विश्वास करो कि तुम संसार के सबसे महत्त्वपूर्ण व्यक्ति हो।

शिष्टाचार अपनाएँ–सम्मान पाएँ

एक प्राचीन कहावत है कि मनुष्य का परिचय उसके शिष्टाचार से मिल जाता है। उसका उठना, बैठना, चलना, फिरना, बातचीत करना, दूसरों के घर जाना, रास्ते में परिचितों से मिलना, ऐसे प्रत्येक कार्य एक अनुभवी को यह बतलाने के लिए पर्याप्त हैं कि वास्तव में व्यक्ति किस हद तक सामाजिक, शिष्ट एवं शालीन है।

सभ्यता और शिष्टाचार का पारस्परिक संबंध काफी घनिष्ट है। इतना कि एक के बिना दूसरे को प्राप्त कर सकने का ख्याल निरर्थक है। जो सभ्य होगा, वह अवश्य ही शिष्ट होगा और जो शिष्टाचार का पालन करता है, उसे सब कोई सभ्य बतलाएँगे। ऐसा व्यक्ति सदैव ऐसी बातों से बचकर रहता है, जिससे किसी के मन को कष्ट पहुँचे या किसी प्रकार के अपमान का बोध हो। ऐसे व्यक्ति अपने विचारों को नम्रतापूर्वक प्रकट करते हैं और दूसरों के कथन को भी आदर के साथ सुनते हैं। ऐसा व्यक्ति आत्मप्रशंसा के दुर्गुण से दूर रहता है। वह अच्छी तरह जानता है कि अपने मुख से अपनी तारीफ करना ओछे व्यक्तियों का लक्षण है। सभ्य और शिष्ट व्यक्ति को तो अपना व्यवहार और बोलचाल ही ऐसा रखना चाहिए कि उसके संपर्क में आने वाले स्वयं उसकी प्रशंसा करें। प्रशंसा सुनने की लालसा व्यक्तित्व निर्माण में घातक है। शिष्टाचार में ऐसी शक्ति है कि मनुष्य किसी को बिना कुछ दिए-लिए अपने और परायों का श्रद्धाभाजन और आदर का पात्र बन जाता है, पर जिनमें शिष्टाचार का अभाव है, जो चाहे जिसके साथ अशिष्टता का

व्यवहार कर बैठते हैं, ऐसे लोगों के घर के आदमी भी उनके अनुकूल नहीं होते।

बहुत से लोग शिक्षा और अच्छे फैशन वाले वस्त्रों के प्रयोग को ही सभ्यता और शिष्टाचार का मुख्य अंग समझते हैं, पर यह धारणा गलत है। महँगी और बढ़िया पोशाक पहनने वाला व्यक्ति भी अशिष्ट हो सकता है और गाँव का एक हल चलाने वाला अशिक्षित किसान भी शिष्ट कहा जा सकता है। इस दृष्टि से जब हम अपने पास-पड़ोस पर दृष्टि डालते हैं और आधुनिक शिक्षा प्राप्त नवयुवकों को देखते हैं, तो हमें खेद के साथ स्वीकार करना पड़ता है कि इस समय हमारे देश में से शिष्टाचार की प्राचीन भावना का ह्रास हो रहा है। आज के पढ़े-लिखे युवक प्रायः शिष्टाचार को शून्य और उच्छृंखलता को आश्रय दे रहे हैं। कॉलेज और स्कूलों में पढ़ने वाले अधिकांश विद्यार्थी रास्ते में और विद्यालय में भी आपस की बातचीत में अकारण ही गालियों का प्रयोग करते हैं, अश्लील भाषा का प्रयोग करते हैं और धक्का-मुक्की करते दिखाई देते हैं। इन सबके उठने-बैठने का तरीका भी सभ्य नहीं कहा जा सकता।

हमारे आचरण और रहन-सहन में और भी ऐसी अनेक छोटी-बड़ी खराब आदतें शामिल हो गई हैं, जो अभ्यासवश हमको बुरी नहीं जान पड़ती, पर एक बाहरी आदमी को वे असभ्यता ही जान पड़ेंगी। उदाहरण के लिए किसी से कोई चीज उधार लेकर लौटाने का पूरा ध्यान न रखना, माँगी चीजों को लापरवाही से रखना और खराब करके वापस करना, बाजार से उधार वस्तु खरीदकर दाम चुकाने का ध्यान न रखना, किसी व्यक्ति को वायदा करके घर बुलाना और स्वयं बाहर चले जाना, पत्रों का समय पर जवाब न देना, अपने कार्यालय में हमेशा देर करके जाना। इस प्रकार की सैकड़ों बातें हैं, जिनमें मनुष्य की प्रतिष्ठा में अंतर पड़ता है और वह दूसरों की आँखों में हलके दरजे का प्रतीत होने लगता है।

इस संसार में विभिन्न प्रकार की राष्ट्रीयताओं, मजहबों, संप्रदायों, जलवायु, वातावरण का जो अंतर पाया जाता है और राजनैतिक, भौगोलिक, आर्थिक, सामाजिक आदि दृष्टियों से यह जिस प्रकार हजारों भागों से बँटा हुआ है, उसे देखते हुए प्रत्येक मनुष्य से शिष्टाचार के एक से नियमों के पालन की आशा करना युक्तियुक्त नहीं है। हिंदू, मुसलमान और ईसाइयों के जातीय शिष्टाचार में अनेक बातें एक-दूसरे से भिन्न हैं। फिर भी वर्तमान समय में वैज्ञानिक आविष्कारों के कारण सब लोगों का मिलना-जुलना और उनका पारस्परिक व्यवहार, लेन-देन इतना अधिक बढ़ गया है कि अब शिष्टाचार के कुछ ऐसे सामान्य नियम भी बन गए हैं, जिनका ज्ञान प्रत्येक मनुष्य को होना उचित है। जहाँ अन्य देशों की सभ्यता और शिष्टाचार में बाह्य नियमों और कार्यों पर अधिक जोर दिया गया है, भारतीय संस्कृति शिक्षा देती है कि हम अपने परिचितों के प्रति शिष्टाचार के बाहरी नियमों का पालन करते हुए उनके प्रति हृदय में सद्भावना और सहृदयता भी रखें। इन आंतरिक भावनाओं से ही हमारे व्यवहार में वह वास्तविकता उत्पन्न होती है, जिसकी तरफ सच्चे व्यक्ति आकर्षित होते हैं।

शिष्टाचार और सहृदयता का परस्पर बहुत अधिक संबंध है। जिसकी विचारधारा और मानसिक वृत्तियाँ शुष्क, नीरस और कठोर हो गई हैं, वह किसी के साथ प्रेमपूर्वक नहीं मिल सकता, न किसी के साथ हार्दिक शिष्टाचार का व्यवहार कर सकता है। इसका परिणाम यह होगा कि दूसरे लोग भी उससे उपेक्षा तथा पृथकता का व्यवहार करेंगे और वह संसार में अकेला ही अपने जीवन को व्यर्थ में खोता रहेगा। सहृदयता एक ऐसा गुण है, जिससे एक साधारण श्रेणी का व्यक्ति भी अनेक लोगों का प्यारा मित्र, घनिष्ठ सखा बन जाता है और साधारण साधनों वाला होता हुआ भी आनंदमय जीवन व्यतीत कर लेता है।

शिष्टाचार के इन नियमों में सबसे पहले यही शिक्षा दी गई है कि अपने यहाँ जो आए, उसका आदर केवल ऊपर से ही नहीं, वरन मन, नेत्र, मुख और वाणी सब तरह से करें। सबसे पहली बात यह है कि हम अपने मन में निश्चय रखें कि किसी आगंतुक का सत्कार-सेवा करना हमारा मानवीय कर्त्तव्य है। यदि हम उसका पालन नहीं करते तो मनुष्यता से गिरे हुए सामान्य पशु की तरह ही माने जाएँगे। यही भारतीय शिष्टाचार का मूल है, जिसके आधार पर यहाँ अतिथि सत्कार गृहस्थ का सबसे बड़ा धर्म बतलाया गया है। यह देश का क्रियात्मक शिष्टाचार था, जिससे प्रकट होता था कि हम वास्तव में कष्ट सहन, त्याग, परिश्रम करने को तैयार हैं। इस प्रकार के स्वागत-शिष्टाचार का प्रभाव ही मेहमानों पर चिरस्थाई रह सकता था।

अब प्राचीन काल की परिस्थितियों में बहुत अंतर पड़ गया है। संसारभर के लोगों का एक-से-दूसरे देश में आना-जाना और पारस्परिक लेन-देन, व्यवहार बहुत बढ़ गया है। इस समय शिष्टाचार की व्याख्या करना बहुत कठिन हो गया है, क्योंकि जो कार्य एक देश में शिष्टाचार माना जाता है, वही दूसरे में उसके विरुद्ध समझा जा सकता है। इन स्थानीय या एक देशीय शिष्टाचार की बातों को छोड़ देने पर भी पिछले सौ-डेढ़ सौ वर्षों में संसार की विभिन्न सभ्यताओं के सम्मिलन से कुछ ऐसे सर्वमान्य नियम निकल आए हैं, जिनको अंतर्राष्ट्रीय शिष्टाचार कहा जा सकता है।

जब भारतीय संस्कृति के अनुकूल शिष्टाचार के नियमों की बात करते हैं, तो उनमें से कुछ का वर्गीकरण इस प्रकार से कर सकते हैं।

धार्मिक, नैतिक और चारित्रिक शिष्टाचार

(१) प्रत्येक धर्म का सम्मान करना हमारा कर्त्तव्य है। किसी के धार्मिक रीति-रिवाजों में हस्तक्षेप करना अमानवता का चिह्न है।

(२) जिस समय कोई व्यक्ति ईश्वरोपासना या किसी प्रकार के धार्मिक जप-पाठ आदि में लगा हो, उस समय उससे बोलना या टोकना उचित नहीं।

(३) कितने ही व्यक्ति 'सीताराम', 'राधेश्याम', 'शिव-शिव' आदि नामों को बड़े जोर से चिल्लाकर बोल उठते हैं। खासकर घंटा, दो घंटा रात रहते ही जब अधिकांश व्यक्ति सो रहे हों, शोर करना उचित नहीं है।

(४) शरीर से कार्यक्षम होते हुए, बिना परिश्रम के माँगकर खाना बहुत बुरा है।

(५) किसी भिखारी को यदि भीख देना उचित न समझें, तो उसे सीधी तरह मना कर देना चाहिए।

(६) धार्मिक स्थानों के पास शांति और सदाचार का वातावरण बनाए रखना चाहिए।

(७) सूर्योदय के पूर्व शैया त्याग करना भारतीय संस्कृति का एक स्वर्णिम नियम है, जिससे स्वास्थ्य के अतिरिक्त मनुष्य की मानसिक और आध्यात्मिक वृत्तियाँ भी उच्च बनती हैं।

(८) भारतीय सभ्यता के अनुसार जूते पहनकर किसी धार्मिक पवित्र स्थान पर नहीं जाना चाहिए, चाहे वह किसी भी मजहब या संप्रदाय का क्यों न हो।

(९) देव स्थानों में प्रवेश करते समय जूता, लाठी, छाता आदि वस्तु बाहर ही रखनी चाहिए।

(१०) ऐसे स्थानों में, जिनके चारों ओर दीवार या किसी अन्य प्रकार की स्थाई या अस्थाई रोक बनाई गई हो, बिना स्वामी या प्रबंधक की आज्ञा प्राप्त किए घुसना अनुचित है।

(११) स्टेशन, बस स्टॉप, डाकखाना या खेल-तमाशों में टिकट बिकने की खिड़कियों पर धक्का-मुक्की करना बुरा है। शांतिपूर्वक एक लाइन में खड़े होकर अपने नंबर पर ही पहुँचना चाहिए।

(१२) सार्वजनिक स्थानों और निजी आवास स्थानों में आने-जाने के संबंध में जो सूचनाएँ लिखी हों, उनका ठीक तरह से पालन करना चाहिए।

(१३) सभा, सार्वजनिक उत्सव, मेले, खेल-तमाशे आदि में नियमों को जान-बूझकर तोड़ना और उछल-कूद मचाना बचकानापन है।

(१४) ऐसे स्थानों या सवारियों में जिनमें टिकट लेकर जाना पड़ता है, बिना टिकट के घूमने की चेष्टा नहीं करनी चाहिए। इसके विपरीत आचरण करना असफलता ही नहीं, वरन् एक प्रकार की चोरी है।

सामाजिक व्यवहार में शिष्टाचार

(१) नित्य प्रातःकाल उठकर गुरुजनों, माता-पिता आदि के चरण-स्पर्श करना भारतीय संस्कृति का विशिष्ट नियम है।

(२) अपने घर पर किसी व्यक्ति के आने पर उसका प्रेमपूर्वक अभिवादन करना चाहिए और उसके सामने हाथ-पैर फैलाकर बेहूदा तरीके से नहीं बैठना चाहिए।

(३) आगंतुक सम्माननीय व्यक्तियों के सामने घर के किसी व्यक्ति या नौकर-चाकर पर क्रोध प्रकट करना या गालियाँ बकना अनुचित है।

(४) अपने से बड़े या सम्मानीय व्यक्तियों के सामने कभी उनसे उच्च आसन पर नहीं बैठना चाहिए।

(५) जँभाई, छींक, खाँसी आदि के आने पर मुँह के सामने रुमाल लगा लेना सभ्यता का चिह्न है।

(६) मार्ग में जाते समय यदि किसी परिचित से भेंट हो जाए, यथासंभव स्वयं अभिवादन करना चाहिए। वृद्ध, रोगी, स्त्री, लँगड़े-लूले व्यक्ति आदि के लिए रास्ते से हटकर मार्ग देना चाहिए।

(७) किसी के घर जाकर घर के मालिक और अन्य लोगों की सुविधा का ध्यान रखकर ही व्यवहार करना चाहिए।

(८) सार्वजनिक उत्सव या सभा-सम्मेलन के बीच अकारण अकस्मात उठकर चल देना, असभ्यता का सूचक माना जाता है। ऐसे अवसरों पर जाना ही नहीं चाहिए या पीछे की तरफ ऐसी जगह पर बैठना चाहिए, जहाँ से उठकर चलने से किसी का ध्यान आकर्षित न हो। इसी प्रकार से कथा-वार्त्ता, सभा आदि में सोने या ऊँघने लगना भी अनुचित है।

(९) पड़ोसियों के प्रति सदा प्रेम और शिष्टाचार का व्यवहार रखिए, जरूरत पड़ने पर उनकी सब प्रकार से सहायता करने को प्रस्तुत रहें और यदि वह गरीब हो तो उसके सामने अपने वैभव का प्रदर्शन करके उसे लज्जित करने का प्रयास न करें। इसी प्रकार धनवान पड़ोसियों के सामने अपनी विपत्तियों का रोना रोकर उसकी सहानुभूति प्राप्त करने का तरीका भी ठीक नहीं है। पड़ोसी से यथासंभव समानता का ही व्यवहार करना चाहिए और उनकी जो कुछ सहायता की जाए, वह निःस्वार्थ भाव से और कर्त्तव्य समझकर की जानी चाहिए।

(१०) यदि कभी किसी रोगी के पास जाएँ, तो उससे कभी उसके रोग को बढ़ा-चढ़ाकर बताने की चेष्टा न करें और न उसके सामने किसी प्रकार की निराशापूर्ण बातें करें। रोगी के पास सदा प्रसन्न मुद्रा में ही जाना चाहिए और रोगी का होंसला बढ़ाना चाहिए।

(११) रास्ते में जोर-जोर से बुलाना ठीक नहीं। किसी जगह ठहरकर बहुत जोर से बातचीत, हँसी-मजाक, ठहाका मारकर हँसना भी ठीक नहीं।

(१२) रास्ते में अनजान स्त्री के पीछे इस प्रकार नहीं चलना चाहिए कि उसे संकोच हो। किसी भी स्त्री को बार-बार गरदन घुमाकर नहीं देखना चाहिए, इसी प्रकार मकानों में बैठी

या छज्जों पर खड़ी स्त्रियों को ताकना और घूरना अशिष्टता का चिह्न है।

(१३) मुसाफिर खाना, धर्मशाला, पार्क आदि सार्वजनिक स्थानों की सफाई का विशेष ध्यान रखना चाहिए। अपना काम पूरा हो जाने के बाद उन्हें गंदा छोड़ जाना अशिष्टता है।

खान-पान और स्वास्थ्य रक्षा के शिष्टाचार

(१) भोजन करने के स्थान का स्वच्छ और सुरुचिपूर्ण होना आवश्यक है।

(२) भोजन करते समय खाने और पीने में चप-चप का शब्द करना अशिष्टता है।

(३) दाहिने हाथ से ही खाना चाहिए। उँगलियों को ऊपर तक साग, दाल से भर लेना और उन्हें चाटना भी सभ्यता के विरुद्ध है।

(४) पानी आदि पेय पदार्थ खड़े होकर पीना ठीक नहीं और स्वास्थ्य के लिए भी हानिकारक है।

(५) भोजन करते समय किसी ऐसी वस्तु का नाम नहीं लेना चाहिए, जिससे घृणा का भाव उत्पन्न हो।

(६) भोजन पूरी निश्चिंतता और शांति के साथ करना चाहिए।

(७) चलते-फिरते, घूमते-टहलते हुए खाना स्वास्थ्य की दृष्टि से तो हानिकारक है ही, सभ्यता के भी विपरीत है।

(८) खाने-पीने के सामान को लाँघकर चलना बहुत बुरा है।

बातचीत-रहन-सहन के शिष्टाचार

(१) जहाँ दो-चार व्यक्ति बैठकर बातचीत कर रहे हों, वहाँ जाकर बैठना अनुचित है।

(२) बातचीत करते समय यदि कोई अनुचित बात मुँह से निकल जाए, तो तुरंत क्षमा-प्रार्थना कर लेनी चाहिए।

(३) बातचीत करते समय केवल स्वयं न बोलते रहिए, दूसरों को भी मौका दीजिए।

(४) कठोर उत्तर देकर शीघ्र ही उसे झगड़े का रूप दे देना मूर्खता है। कठोर उत्तर के स्थान पर विनम्र शब्दों में ही कहना चाहिए, ''मेरी राय में आप भूल रहे हैं।'' या ''आपको ठीक सूचना नहीं मिली'' आदि।

(५) मुँह से सदैव जरा-जरा से बात पर गाली या अश्लील शब्द निकालते रहना, सभ्यता के विपरीत है।

(६) जिस किसी से वायदा करो उसे यथाशक्ति पूर्ण करने का प्रयास करो।

(७) किसी बात को बहुत अधिक मत बढ़ाओ।

(८) वर्तमान समय में कितने ही ऐसे पुरुष और स्त्री हैं जो फैशन के भक्त बनकर जिस प्रकार विदेशी वस्त्रों का प्रयोग करने लगे हैं। वह अशोभनीय है। विशेषकर स्त्रियों की चुस्त पोशाक तो भारतीय संस्कृति की दृष्टि से सर्वथा हेय ही कही जाएगी। ऐसी स्त्रियाँ सज्जन पुरुषों के समक्ष अपना सम्मान स्वयं कम करती हैं।

(९) सार्वजनिक सम्मेलनों और निजी उत्सवों में अवसर के अनुकूल पोशाक ही उचित है।

सद्व्यवहार, सदाचार आदि शिष्टाचार के ही अंग हैं। शिष्टाचारी मन, वचन, कर्म से किसी को हानि नहीं पहुँचाता, वह दुर्वचन कभी नहीं बोलता, न मन से किसी का बुरा चाहता है। जिससे किसी का दिल दूखे, ऐसा कार्य भी नहीं करता। विनय और मधुरतायुक्त व्यवहार ही उसके जीवन का अंग होता है। किसी प्रकार के अभिमान की शिष्टाचार में गुंजायश नहीं रहती। नम्रता, विनयशीलता आदि सद्गुण शिष्टाचार के आधार हैं। इतना ही नहीं शिष्टाचार की संपदा, समृद्धि बढ़ने के साथ ही उसकी निरभिमानता, नम्रता, विनयशीलता भी बढ़ती जाती है। जिस तरह फलों के बोझ से वृक्ष नीचे झुक जाता है, उसी तरह ऐसे व्यक्तियों

की लौकिक संपदाएँ, ऐश्वर्य के बढ़ने पर भी नम्रता, विनयशीलता बढ़ जाती है।

शिष्टाचार एक ऐसा सद्‌गुण है जिसे अभ्यास और आचरण द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। इसके लिए किन्हीं विशेष परिस्थितियों या उच्च खानदान की आवश्यकता नहीं। किसी भी स्थिति का व्यक्ति प्रयत्नपूर्वक शिष्टाचार का अभ्यास जीवन में डाल सकता है। इसके लिए संवेदनशील हृदय की कोमलता आवश्यक है। ऐसे व्यक्ति का अपने व्यवहार और जीवन क्रम में छोटी-छोटी बातों पर भी ध्यान रहता है, जिससे दूसरों को कोई दुःख न हो। शिष्टाचार में दूसरों की भावनाओं का ध्यान रखना आवश्यक है।

□

मनुष्य का जन्म तो सहज होता है, पर मनुष्यता उसे कठिन प्रयत्न से प्राप्त करनी पड़ती है।

आंतरिक दुर्बलताओं से लड़ पड़िए

दोष, दुर्गुण, दुष्प्रवृत्तियों, दुर्भावनाओं को त्यागिए

संसार में कोई किसी को उतना परेशान नहीं करता, जितना कि मनुष्य के अपने दुर्गुण और दुर्भावनाएँ। दुर्गुण रूपी शत्रु हर समय मनुष्य के पीछे लगे रहते हैं, वे किसी समय उसे चैन नहीं लेने देते।

कहावत है कि अपनी अकल और दूसरों की संपत्ति, चतुर को चौगुनी और मूरख को सौगुनी दिखाई पड़ती रहती है। संसार में व्याप्त इस भ्रम को महामाया का मोहक जाल ही कहना चाहिए कि हर व्यक्ति अपने को पूर्ण निर्दोष और पूर्ण बुद्धिमान मानता है। न तो उसे अपनी त्रुटियाँ सूझ पड़ती हैं और न अपनी समझ में दोष दिखलाई पड़ता है। इस एक ही दुर्बलता ने मानव जाति की प्रगति में इतनी बाधा पहुँचाई है, जितनी संसार की समस्त अड़चनों ने मिलकर भी न पहुँचाई होगी।

सृष्टि के सब प्राणियों से अधिक बुद्धिमान माना जाने वाला मनुष्य जब यह सोचता है कि "दोष तो दूसरों में ही हैं, उन्हीं की निंदा करनी है, उन्हें ही सुधारना चाहिए। हम स्वयं तो पूर्ण निर्दोष हैं, हमें सुधरने की कोई जरूरत नहीं।" तब यह कहना पड़ता है कि उसकी तथाकथित बुद्धिमत्ता अवास्तविक है। इस दृष्टिकोण के कारण अपनी गलतियों का सुधार कर सकना तो दूर कोई उस ओर इशारा भी करता है, तो हमें अपना अपमान दिखाई पड़ता है। दोष दिखाने वाले को अपना शुभचिंतक मानकर उसका आभार मानने की अपेक्षा मनुष्य जब उलटे उस पर क्रुद्ध होता है, शत्रुता

मानता है और अपना अपमान अनुभव करता है, तो यह कहना चाहिए कि उसने सच्ची प्रगति की ओर चलने के लिए अभी एक पैर उठाना भी नहीं सीखा।

बाहरी उन्नति की जितनी चिंता की जाती है, उतनी ही भीतरी उन्नति के बारे में भी की जाए, तो मनुष्य दोहरा लाभ उठा सकता है, किंतु यदि आंतरिक उन्नति को गया-बीता रखा और बाहरी उन्नति के लिए ही निरंतर दौड़-धूप होती रही तो कुछ साधन-सामग्री भले ही इकट्ठा कर ली जाए, पर उसमें भी उसे शांति न मिलेगी। अपने दोषों की ओर से अनभिज्ञ रहने से बड़ा प्रमाद इस संसार में और कोई नहीं हो सकता, इसका मूल्य जीवन की असफलता का पश्चाताप करते हुए ही चुकाना पड़ता है।

आरंभ छोटे-छोटे दोष-दुर्गुणों से करना चाहिए। उन्हें ढूँढ़ना और हटाना चाहिए। इस क्रम से आगे बढ़ने वाले को जो छोटी-छोटी सफलताएँ मिलती हैं, उनसे उसका साहस बढ़ता चलता है। उस सुधार से जो प्रत्यक्ष लाभ मिलते हैं, उन्हें देखते हुए बड़े कदम उठाने का साहस भी होता है और उन्हें पूरा करने का मनोबल भी संचित हो चुका होता है।

गुण, कर्म, स्वभाव में आवश्यक सुधार किए बिना प्रगति नहीं हो सकती है। गुण, कर्म, स्वभाव का मानवोचित परिष्कार करते हुए व्यक्तित्व को सुविकसित करने में संलग्न होना चाहिए। दुर्व्यवहार का कुफल दुःख और बैचेनी है, फिर वह चाहे अपने साथ हो या दूसरे के साथ। भलाई की बात यह है कि आप जो औरों से अपने लिए चाहते हैं, वैसा ही बरताव दूसरों के साथ भी करें।

बुद्धि और विचार की शक्ति मनुष्य में अन्य प्राणियों की अपेक्षा अधिक है, इसलिए वह अपनी भलाई का विचार कर सकता है। बुद्धि के सदुपयोग या दुरुपयोग से ही वह सुख-शांति या क्लेश और कलह की परिस्थितियाँ तैयार करता है। इसका दोषारोपण किसी दूसरे पर करना, मनुष्य की जड़ता का ही चिह्न समझा

जाएगा। मनुष्य अपने कर्मों का फल आप भोगता है, इसके लिए किसी दूसरे को अपराधी नहीं कह सकते।

अपनी शारीरिक त्रुटियों पर विचार कीजिए। आज के जन-जीवन में पान, बीड़ी, सिगरेट, तंबाकू, मिर्च-मसाले, मिठाई-खटाई, अंडे, मांस आदि कितने अभक्ष्य पदार्थों का सेवन लोग करते हैं। लोगों के स्वास्थ्य खराब हों, तो इसमें आश्चर्य की कौन-सी बात है। रोज नई-नई बीमारियाँ उगती आ रही हैं, तो इसका दोषी और कौन होगा? एक ओर खाद्य-पदार्थों में दूषित तत्त्वों का प्रवेश और दूसरी ओर बढ़ती हुई असंयम की प्रवृत्ति, दोनों ने मिलकर स्वास्थ्य की ऐसी बरबादी मचाई है कि लोगों में चलने-फिरने जितनी ही शक्ति शेष बची है। मौसम के परिवर्तन को सहन करने की शक्ति तक नहीं रही, मनुष्यों के शरीरों में। शरीर के प्रति आत्मघात के इतने भयानक परिणाम मनुष्य के नाम पर कलंक ही लगा रहे हैं।

अश्लील साहित्य, सिनेमा के गंदे गाने, दूरदर्शन और भद्दे चित्रों से कामोत्तेजना के कारण मनुष्य का शरीर तो बरबाद होता ही है, मानसिक संस्थान भी दूषित होता है। जिसके फलस्वरूप सारा जीवन दुःख, शोक और रोगों के रूप में दिखाई देता है। शान-शौकत, तड़क-भड़क, शृंगार प्रियता के कारण चारित्रिक पतन भी अपनी सीमा पर पहुँच गया है। आर्थिक व्यवस्था भी लड़खड़ा रही है। मनुष्य को किसी तरफ चैन या संतोष नहीं मिल रहा। बेचारा विक्षिप्त-सा होकर इधर-उधर भटक रहा है। उसका नैतिक स्तर गिरता जा रहा है।

भ्रष्टाचार के कारण आज सभी दुःखी हैं, फिर भी नैतिक साहस किसी में नहीं आता। सभी स्वार्थ साधनों में लिप्त हैं। स्वयं कुछ न देकर, दूसरों से ऐंठ लेने की नीति के कारण न तो कहीं सहयोग रह गया है और न सहानुभूति। मुसीबतों में सच्चे हृदय से सहानुभूति दिखाने वाले भी नहीं रहे। मानवता का

इतना अध:पतन शायद ही किसी युग में हुआ हो। उसी अनुपात में लोगों का कष्ट और पीड़ाओं से परेशान होना भी स्वाभाविक ही है।

अपने सुखों को बरबाद कर डालने की जिम्मेदारी मनुष्य पर ही है। उचित प्रयत्नों की बात भुलाकर मनुष्य असुरता की ओर बढ़ रहा है। इसी से वह दु:खी है। छुटकारे का उपाय एक ही है कि वह इन पतनोन्मुख दुष्प्रवृत्तियों का परित्याग करे और सदाचारी जीवन जीने में सुख और संतोष अनुभव करें। हमें बाह्य व्यक्ति, पदार्थ और कारण बुरे दिखाई पड़ते हैं, पर यह नहीं सूझता कि अपना दृष्टिकोण ही तो कहीं दूषित नहीं है। आत्मनिरीक्षण इस संसार का सबसे कठिन काम है। अपने दोषों को ढूँढ़ सकना समुद्र के तल में से मोती ढूँढ़ लाने वाले गोताखोरों के कार्य से भी अधिक दुष्कर है। अपने दोषों को स्वीकार कर सकना किसी साहसी से ही बन पड़ता है और सुधारने के प्रयत्न तो कोई बिरला ही शूरवीर करता है। यही कारण है कि हममें से अधिकांश व्यक्ति दोषदर्शी, छिंद्रान्वेषी दृष्टिकोण अपनाए रहते हैं और हर किसी को दोषी, निंदनीय, घृणित एवं दुर्भावनायुक्त समझते रहते हैं। परिणाम स्वरूप सर्वत्र हमें दुष्टता और शत्रुता ही दीखती है। निराशा और व्यथा ही घेरे रहती है। आइए! देखें कौन-कौन से दोष, दुर्गुण, दुष्प्रवृत्तियाँ एवं दुर्भावनाएँ हमारे जीवन की उन्नति में किस प्रकार बाधक बनती हैं।

(१) दुर्व्यसन–

सबसे दुर्गुणी व्यक्ति दुर्व्यसनी होता है। दुर्व्यसन मनुष्य के शारीरिक और मानसिक दोनों प्रकार के स्वास्थ्यों के शत्रु होते हैं। शराब, जुआ, व्यभिचार ही नहीं, बल्कि आलस्य, प्रमाद आदि भी दुर्व्यसन ही हैं।

यदि मनुष्य शराब पीता है या अन्य किसी प्रकार का नशा करता है, जुआ खेलता है अथवा व्यभिचार में प्रवृत्त है तो वह न

केवल धन का क्षय करता है अपितु अनेक प्रकार की शारीरिक, मानसिक एवं बौद्धिक व्याधियों को भी आमंत्रित करता है। उन्नति के लिए इनका त्याग अत्यंत आवश्यक है।

(२) अहंकार एवं लोभ–

जीवन प्रगति में मनुष्य का अहंकार बहुत बड़ा बाधक है। अहंकार से भेद-बुद्धि उत्पन्न होती है जो मनुष्य को मनुष्य से ही दूर कर देती है। मनुष्य में पाप प्रवृत्तियाँ प्रबल हो उठती हैं। वह न करने योग्य कार्य करने लगता है। अहंकार के दोष से मति विपरीत हो जाती है और मनुष्य को गलत कार्यों में ही सही का भान होने लगता है।

अहंकार और लोभ एक-दूसरे के अभिन्न साथी हैं। जहाँ एक होगा, वहाँ दूसरे का होना अनिवार्य है। अहं के दोष से मनुष्य का लोभ इस सीमा तक बढ़ जाता है कि वह संसार की प्रत्येक वस्तु पर एकाधिकार चाहने लगता है। उसकी अधिकार लिप्सा असीमित हो जाती है। वह संसार के समग्र साधनों का लाभ केवल स्वयं ही उठाना चाहता है, किसी को उसमें भागीदार होते नहीं देख सकता। निर्बल अहंकारी जो समाज का कुछ बिगाड़ नहीं पाता, अपने मन में ही जलता-भुनता और क्षोभ करता रहता है। अपना हृदय जलाता, शक्ति नष्ट करता है।

उन्नति एवं प्रगति के लिए किए जाने वाले प्रयत्नों में अहंकार का त्याग सबसे प्रथम एवं प्रमुख प्रयत्न है। इससे उन्नति का मार्ग तो प्रशस्त होता ही है, साथ ही स्वयं में भी बड़ी संतोष एवं शांतिदायक स्थिति होती है।

(३) अभिमान–

जब मनुष्य अपने आपको सामान्य स्तर पर न समझकर असाधारण, विशेष, बड़ा, महत्त्वपूर्ण समझने लगता है, तभी अभिमान का अंकुर फूट निकलता है, जो दिनों-दिन बढ़ता हुआ विशाल रूप धारण कर लेता है। झूठी प्रशंसा, उद्दंडता, स्वेच्छाचार, शेखीखोरी

से भी मनुष्य अपनी वस्तुस्थिति को न समझकर अभिमान के परों से उड़ने लगता है।

अपने रंग-रूप, सामर्थ्य, शक्ति की विशेषताओं का अभिमान मनुष्य के पतन का कारण बन जाता है। वह कुछ-का-कुछ लगने लगता है। उसकी विवेकशीलता, विचार-बुद्धि, दूरदर्शिता मारी जाती है। इससे अनायास ही दूसरे लोग शत्रु बन जाते हैं। अपने उक्त व्यवहार के कारण दिनों-दिन उसके विरोधियों, शत्रुओं की संख्या बढ़ जाती है और यही पतन, असफलता, विनाश का मार्ग है। उसकी सारी शक्ति विरोधों, द्वेष, षड्यंत्रों में नष्ट हो जाती है। रचनात्मक दृष्टि से वह कुछ भी नहीं कर पाता।

किसी का विषय क्षेत्र में अभिमान हो जाने पर मनुष्य की प्रगति, विकास का मार्ग अवरुद्ध हो जाता है। न्यूटन महोदय ने अपने गणित की महत्त्वपूर्ण खोज काफी समय तक प्रकाशित ही नहीं की, किंतु बहुत समय बीत जाने के बाद उन्होंने उस खोज को एक पत्र में प्रकाशित कर दिया, तो अनेक लोगों के धन्यवाद, अभिवादन, प्रशंसापत्र उनके पास आने लगे। इस पर उन्होंने दुःखी होकर कहा था-"अब मेरी प्रसिद्धि खूब बढ़ेगी, किंतु विद्या जिसके लिए मैंने जीवन लगा दिया, उसका विकास रुक जाएगा।"

(४) अनियंत्रित महत्त्वाकांक्षाएँ-

हमें लक्ष्य-भ्रष्ट करने में विकृत महत्त्वाकांक्षाओं का बड़ा हाथ है। ये हमें जीवन के सहज और स्वाभाविक मार्ग से भटकाकर गलत मार्ग पर ले जाती है। इनके कारण हमें जो करना चाहिए, उसकी तो हम उपेक्षा कर देते हैं और जो हमें नहीं करना चाहिए, वह करने लगते हैं।

यों जीवन में आकांक्षाओं का होना आवश्यक है, क्योंकि इनके बिना तो जीवन जड़ बन जाएगा, प्रगति का द्वार ही बंद हो जाएगा। आज संसार का जो विकसित प्रगतिशील स्वरूप दिखाई देता है, वह बहुत से व्यक्तियों की आकांक्षाओं का ही परिणाम है।

इन्हीं के कारण तो संसार में महान वैज्ञानिक आश्चर्यों के द्वार खोल देता है।

महत्त्वाकांक्षा तो उत्कृष्ट, महान, आदर्श के साकार करने का साहस तथा कर्मठतायुक्त अभियान है, जिसके गर्भ में स्वस्थ और संतुलित मनोभूमि, जागरूक चेतना, विवेकयुक्त बुद्धि काम करती है और जगत में आश्चर्यजनक सफलताओं के मार्ग खोलती है। विकृत महत्त्वाकांक्षा निम्नगामिनी होती है। जिनके कारण हम जीवनभर सहज मार्ग नहीं अपना पाते और दुःख और असंतोष ही पाते हैं।

अपनी महत्त्वाकांक्षाओं के बारे में हमें विवेकपूर्ण बुद्धि से सोचना चाहिए कि वे कितनी यथार्थ और कितनी उपयोगी हैं। कहीं हम भुलावे में तो नहीं हैं। वे हमें जीवन के सही रास्ते पर ले जा रही हैं या हमें पथभ्रष्ट कर रही हैं। हमारी आकांक्षाओं के पीछे कोई प्रलोभन तो नहीं, कोई स्वार्थ बुद्धि तो काम नहीं कर रही? महत्त्वाकांक्षाएँ यदि निकृष्ट स्तर की हों, तो उन्हें त्याग देना चाहिए। श्रेयस्कर तो केवल श्रेष्ठता की ओर ले जाने वाली महत्त्वाकांक्षाएँ ही हो सकती हैं।

(५) असत्य–

असत्य को संसार के सभी धर्मों, संप्रदायों, समाज-प्रणालियों में बुरा माना है। सभी महापुरुषों ने असत्य को छोड़ देने का उपदेश दिया है। किसी वास्तविक तथ्य को, सही बात को छुपाकर उसके बदले दूसरी ही नई मनगढ़ंत बात कहना, वैसा ही करना, असत्य का अनुसरण करना है। अक्सर लोग किसी दंड से बचने के लिए अथवा अपने दोषों को छिपाने या किसी लाभ की प्राप्ति के लिए झूठ बोलते हैं। अनुचित रूप से दूसरों को दोष देना एवं निंदा करना भी असत्य भाषण ही माना जाता है। इसी तरह अनाप-सनाप बकना, कटुता भरे वचन भी असत्य भाषण के ही रूप हैं। किसी भी रूप में असत्य भाषण का आधार प्रलोभन, राग, द्वेष, लोभ आदि ही होते हैं। इसका व्यक्ति के जीवन पर भारी प्रभाव पड़ता है।

असत्य के त्याग की शिक्षा किसी रूढ़ि परंपरा पर आधारित नहीं है, वरन् यह उन वैज्ञानिक सिद्धांतों पर आधारित है कि जिनसे असत्य के दुष्प्रभाव की जाँच जीवन-विशारदों ने की है।

(६) स्वार्थपरता–

नियति की प्रत्येक क्रिया परस्पर आदान-प्रदान के आधार पर चलती है। हर पदार्थ कुछ छोड़ता है, तब उसे कुछ मिलता है। 'त्याग से प्राप्ति' का नियम इतना सुनिश्चित है कि इसे तोड़ने की बात सोचने का जो कोई भी दुस्साहस करेगा, वह अपनी प्रगति और स्थिति के लिए संकट ही उत्पन्न करेगा। प्रकृति की इस सुनिश्चित व्यवस्था को हमें ध्यानपूर्वक देखना और समझना चाहिए। साथ ही प्रयत्न यह भी करना चाहिए कि हम अपनी नीति, विचारणा, आस्था एवं क्रिया का निर्माण इसी आधार पर करते रहें। संकीर्णता और स्वार्थ के लिए मानवीय जीवन पद्धति में कोई स्थान नहीं हो सकता। जिस किसी के जीवन में इन्हें जितना स्थान मिलेगा, उसके लिए उतनी ही अवनति एवं आपत्ति की संभावना बनी रहेगी।

स्वार्थ की अधिकता दु:ख का बहुत बड़ा कारण है। यह संसार सबके लिए समान रूप से है। अपनी-अपनी आवश्यकतानुसार इसके साधनों का उपयोग करने का सबको अधिकार है। जो स्वार्थी है पहले तो वह हर वस्तु को केवल अपने लिए चाहता है, फिर अधिक-से-अधिक साधन उचित-अनुचित हर उपाय से संचित कर लेता है। इसके बाद भी जब वह अन्य व्यक्तियों को सांसारिक साधनों का उपयोग करता देखता है, तो बुरा मानता है, ईर्ष्या करता है। स्वार्थी व्यक्ति को दुनिया की पराई चीज अपनी दीखती है और जब किसी दूसरे को उसका उपयोग करते देखता है, तो ऐसा अनुभव करता है कि मानो वह व्यक्ति उसकी चीज छीन रहा हो, उसे लूट रहा हो। समय पड़ने पर एक बार शत्रु सहयोग कर देगा, पर स्वार्थी व्यक्ति नहीं करेगा, क्योंकि स्वार्थी सबसे बड़ा असहयोगी और अत्यधिक संकीर्ण होता है। हर बुद्धिमान

व्यक्ति को उन्नति में बाधक इस स्वार्थ के भयानक विषधर से अपनी रक्षा करते रहना चाहिए।

(७) ईर्ष्या–

ईर्ष्यालु व्यक्ति की सबसे बड़ी पहचान यह है कि वह किसी की सुख-शांति नहीं देख सकता, उन्नति सहन नहीं कर सकता। वह अकारण ही उन्नतिशील व्यक्तियों की आलोचना करता, उन पर झूठे दोषारोपण करता और उनके कार्यों का अवमूल्यन करता दिखाई देता है। ईर्ष्या का जन्म स्वयं अपनी उन कमजोरियों से होता है जो उन्नति-पथ में बाधक होती हैं। जब मनुष्य अपनी कमियों से असफलता का शिकार बनता है, तब उसमें पराजय की भावना आ जाती है, किंतु अपने अहंकार के कारण वह उनका हेतु अपने अंदर न देखकर दूसरों पर दोषारोपण किया करता है।

ईर्ष्या कमजोर और हलकी मनोभूमि वालों को बड़ी जल्दी अपना शिकार बना लेती है। ऐसे लोगों में शक्ति-सामर्थ्य की, पुरुषार्थ की कमी रहती है, जिसके फलस्वरूप वे अपने जीवन में संतोषजनक कोई काम नहीं कर पाते और निरंतर अपने अंदर एक खालीपन अनुभव किया करते हैं। असंतोष ही वास्तव में ईर्ष्या का जन्मदाता है। मनुष्य या तो कोई संतोषजनक कार्य कर सके अथवा अपनी स्थिति में संतुष्ट रहे, तो वह अवश्य ही ईर्ष्या की आग से बचा रह सकता है।

निश्चय ही मनुष्य के अपने हाथ में हैं कि वह किसी के लिए अपने मन में ईर्ष्या रखता है अथवा सद्भावना। किसी की सफलता अथवा उन्नति में प्रसन्न होने से आपकी गाँठ से कुछ भी तो नहीं जाता, उलटे दूसरों का स्नेह अथवा श्रद्धा-पात्र बनकर आपको लाभ-ही-लाभ होगा।

(८) अश्लीलता और कामुकता–

कामुकता और अश्लीलता का अर्थ इतना ही नहीं है कि मनुष्य प्रत्यक्ष रूप से शारीरिक संबंध स्थापित करे। मन से ऐसे

विषयों का ध्यान करने वाले और भी दूषित होते हैं। कामुकता के विचारों और निरंतर उनका चिंतन करते रहने से मनुष्य का मानसिक तथा आत्मिक बल खोखला हो जाता है। शारीरिक दृष्टि से चाहे वह बलवान और आकर्षक जान पड़े, पर नैतिकता, साहस, धैर्य आदि का सर्वथा अभाव हो जाता है। ब्रह्मचर्य और संयम के द्वारा मनुष्य के भीतर से एक प्रकार की शक्ति विद्युत या चुंबक की-सी पैदा होती है, वह इस प्रकार के निकृष्ट विचारों तथा आचरणों द्वारा जाती रहती है। ऐसे व्यक्ति अपनी प्रतिज्ञा पर दृढ़ नहीं रह सकते और न किसी कठिन परिस्थिति में धैर्यपूर्वक उसका मुकाबला कर सकते हैं। चिंता, निराशा, आशंका, अविश्वास आदि की भावनाएँ सदैव उनमें उत्पन्न हुआ करती हैं। मनुष्य की सर्वतोमुखी उन्नति में सबसे बड़ा बाधक और शत्रु यही विकार है। इससे रक्षा के लिए हरेक को हर संभव प्रयास करना चाहिए और अपनी शक्तियों के दुरुपयोग से बचना चाहिए।

(९) मस्तिष्क की उद्विग्नता–

परमात्मा की ओर से मनुष्य को जो संपदाएँ मिली हैं, उनमें मस्तिष्क सबसे अधिक मूल्यवान तथा महत्त्वपूर्ण संपदा है। उचित रूप से प्रयोग किए जाने पर यह बड़ी महान सृजनात्मक शक्ति के रूप में सिद्ध होता है। अंर्तद्वंद्वों, संदेहों, भयों, कुविचारों, कुभावनाओं, आवेशों, मनोविकारों आदि से इसकी रक्षा की जानी चाहिए। शारीरिक शक्ति और साधना की सुविधा होते हुए भी, यदि मनुष्य का मस्तिष्क विकृत हो जाए, तो वह संसार का कोई काम करने योग्य नहीं रह जाता। मनुष्य की वास्तविक शक्ति उसका शरीर नहीं, मस्तिष्क ही होता है।

आवेगों, उद्वेगों से बचने के लिए मन को सुसंस्कृत बनाने की भी अत्यंत आवश्यकता है। असंस्कृत, अनपढ़, नादान मन ही बात-बात पर उद्वेलित हो जाता है। आवेगों से बचने के लिए मन को विवेकशील, धैर्यवान, सहिष्णु बनाना आवश्यक है। एक ही

रास्ता है जीवन पथ पर आगे बढ़ने का, वह है सबको धैर्यपूर्वक सहन किया जाए, बचकर अपना रास्ता बना लिया जाए।

(१०) जल्दबाजी और उतावली–

आतुरता और अधीरता की बुराई मनुष्य को बुरी तरह परेशान करती है। प्राय: हमें हर बात की बहुत जल्दी रहती है, जिस कार्य में जितना समय एवं श्रम लगना आवश्यक है, उतना नहीं लगाना चाहते, अभीष्ट आकांक्षा की सफलता तुरत-फुरत देखना चाहते हैं। इसके लिए कई बार अनीति का मार्ग भी अपनाते हैं।

धैर्यपूर्वक सदाचरण के मार्ग पर चलते रहना और अपने में जो दुर्बलताएँ हों, उन्हें एक-एक करके हटाते चलना, यही तरीका सही है। इस सुनिश्चित पद्धति को छोड़कर अधीर लोग बहुत जल्दी अत्यधिक प्राप्त करने की चेष्टा करते हैं और जो कुछ उनके पास था, उसे भी गँवा बैठते हैं।

उतावलापन मनुष्य स्वभाव का एक दोष है। इसीलिए एक कहावत प्रचलित है-"उतावला सो बावला"। कोई भी काम करने का एक तरीका होता है, एक व्यवस्था होती है। प्राय: लोग उतावली करते हैं और परिणाम उलटा हो जाता है, जल्दी के बजाए देर हो जाती है, सो भी काम अव्यवस्थित, अस्त-व्यस्त एवं त्रुटिपूर्ण होता है। जल्दबाज व्यक्ति हर काम में उतावली करता है, खाने में उतावली, कहीं जाने में उतावली, बात करने में उतावली आदि और काम बनाने की बजाय बिगाड़ ही देता है। इसीलिए कहते हैं कि काम को पूरी तरह चित्त लगाकर निरंतरता के साथ करिए, न ज्यादा विलंब हो, न ज्यादा जल्दी। उतावली वास्तव में शीघ्रता नहीं कमजोर मन की विक्षिप्तता होती है। इस मानसिक दुर्बलता से बचना चाहिए और काम को जमे हुए ढंग से करना चाहिए।

उन्नति और अभीष्ट मात्रा में इच्छित सफलता तुरत-फुरत नहीं मिलती, तो निराशा भी उत्पन्न हो जाती है। लोग अनेक काम आरंभ करते हैं, सफलता में देर लगती देख छोड़ बैठते हैं और फिर

नया काम शुरू करते हैं। इस प्रकार अपना धन, समय और श्रम बरबाद करते रहते हैं। ऐसे लोगों में जोश बहुत होता है, पर वे निराश भी जल्दी हो जाते हैं और मनोरथ पूरा करने के लिए साधु-संत के आशीर्वाद, देवताओं के वरदान, जंत्र-मंत्र आदि उपाय तलाशते हैं।

हमें जानना चाहिए कि हर कार्य समय साध्य है और श्रम साध्य भी। कोई मार्ग ऐसा नहीं जिसमें रुकावटें और बाधाएँ न हों। उन्हें हटाने के लिए प्रयत्न भी करना पड़ता है और धैर्यपूर्वक प्रतीक्षा भी। आज नहीं तो कल, कल नहीं तो परसों, परिश्रमी और पुरुषार्थी को तो सफलता मिलती ही है और यदि न भी मिले तो उसकी प्रतिभा और क्षमता तो बढ़ती रहती है। प्रयत्नशीलता से, पुरुषार्थ से व्यक्तित्व निखरता है और उसके आधार पर प्रगति की ऊँची मंजिल पर चढ़ सकना संभव हो जाता है।

फल की आतुरता, प्रगति के मार्ग में सबसे बड़ी बाधा है। धैर्य और साहसपूर्वक अपना कर्त्तव्य करते रहना और उचित मार्ग पर चलते रहना ही हमारे लिए श्रेयस्कर है।

(११) परदोषदर्शन–

यह सारा संसार गुण-दोषमय है। संसार की कोई भी वस्तु अथवा प्राणी सर्वथा गुणसंपन्न अथवा दोषमुक्त नहीं है। सभी में कुछ-न-कुछ दोष मिलेगा। परमात्मा ही अकेले पूर्ण एवं दोष रहित है। अन्य सब कुछ गुण-दोषमय एवं अपूर्ण है। सामान्यतः मनुष्यों में दोष-दर्शन का भाव रहा करता है।

दोषदर्शी का वास्तव में यह बड़ा भारी दुर्भाग्य है कि वह किसी व्यक्ति अथवा वस्तु में गुण ही नहीं पाता। दूसरों के दोष देखते रहने वाले व्यक्ति स्वभावतः दोषग्राही भर होते हैं। दोष दर्शन से मनुष्य में दूसरों के ऐसे अनेक दोष भी घर कर जाते हैं, जो उसमें पहले से नहीं थे। जिस विषय में रुचि रखकर उसकी चरचा एवं चिंतन किया जाएगा, वह मनुष्य के स्वभाव का अंग बन जाता है

और धीरे-धीरे चेतना पर छा जाया करता है। दोषदर्शी व्यक्ति दूसरों की निंदा करने के सिवाय और कुछ नहीं कर सकता। निंदा की वृत्ति समाज में घृणा तथा वैमनस्य को जन्म देती है।

परदोषदर्शी निंदक अपने मित्रों की संख्या कम कर लेता है और शत्रुओं की संख्या बढ़ा लेता है। दूसरों की दोष-गणना, छिद्रान्वेषण एवं निंदा करने का कुप्रभाव अपने पर ही पड़ता है। परदोषदर्शन की दुर्बलता त्यागकर आत्मदोष दर्शन का साहस विकसित कीजिए। जब दृष्टि देखने में समर्थ है, तो वह गुण भी देखेगी और दोष भी। आपके प्रति यदि किसी का व्यवहार अनुचित प्रतीत होता है, तो यह मानने के पहले कि सारा दोष उसी का है, अपने पर विचार कर लिया करें। दूसरों पर दोषारोपण करने का आधा कारण तो स्वयंमेव समाप्त हो जाता है।

अपनी प्रशंसा सभी को प्यारी लगती है, पर व्यंग्य या आलोचना हर किसी को अप्रिय है। कोई नहीं चाहता कि अकारण लोग उसका उपहास करें, मजाक उड़ाएँ। किसी को अप्रिय बात कह देने, उचित सम्मान न देने, समानता का व्यवहार न करने के कारण ही मधुर संबंधों में (भाई-भाई, पिता-पुत्र, पति-पत्नी आदि) भी विकृति आ जाती है और घर की शान, समृद्धि तथा उन्नति का द्वार बंद कर जाती है। आपके अप्रिय व्यवहार के कारण यदि अपशब्द, कटुता या तिरस्कार मिलता है, तो इसमें अपराधी आप भी हैं। आपने ही प्रारंभ में इस स्थिति को जन्म दिया है। इसलिए दूसरों से प्रतिकार की भावना बनाने के पूर्व अपना भी दोष-दर्शन कर लिया करें। गुण औरों के और दोष अपने देखिए। जीवन में गुणों का विकास करने का यही तरीका है। परगुण एवं आत्मदोषदर्शी बनिए। दूसरों के दोष देखना, छिद्र खोजना, निंदा तथा आलोचना करने में अपने अमूल्य समय एवं अनमोल शक्ति का अपव्यय न करके उन्हें सत्कर्मों में लगाइए और संसार में सम्मान एवं सफलतापूर्वक जीकर जीवन पथ को प्रशस्त कर लीजिए।

(१२) आत्मग्लानि–

आत्मग्लानि मनुष्य के मन की एक भावना ग्रंथि है जो जाने-अनजाने, भूलवश या असावधानी में किए गए पापों पर अत्यधिक पश्चाताप करने से पैदा हो जाती है। वैसे किसी भी दुष्कृत्य, पाप-कर्म पर मनुष्य को पश्चाताप अवश्य होता है और एक सीमा तक यह आवश्यक भी है, जब मनुष्य भविष्य में वैसा न करने का संकल्प करता है, पाप कर्मों से बचने के लिए भूल सुधार का दृढ़ प्रयत्न होता है। ऐसी स्थिति में पश्चाताप मनुष्य का पाप से उद्धार भी कर देता है, लेकिन जब यह सीमा से अधिक बढ़ जाता है तब आत्मग्लानि का रूप धारण कर लेता है। आत्मग्लानि की स्थिति में मनुष्य सुधार की ओर अग्रसर नहीं होता, वरन् अपने आपको पापी, दुराचारी मान बैठता है। इस हीनभावना से उसकी कार्यक्षमता, सृजनशीलता व्यर्थ ही नष्ट होने लगती है। हीन विचारों में डूबे रहने से, कई शारीरिक और मानसिक व्याधियाँ उत्पन्न हो जाती हैं। इस तरह के लोग जीवनभर आत्मग्लानि में डूबे रहते हैं। उनके जीवन की महत्त्वपूर्ण संभावनाएँ नष्ट हो जाती हैं। उसकी महत्त्वाकांक्षाएँ, आशा-अभिलाषाएँ, उमंगें असमय में ही मुरझा जाती हैं। ऐसे होनहार, प्रतिभावान, जीवट संपन्न युवकों की संख्या कम नहीं है, जो आत्मग्लानि के शिकार होकर अपने जीवन को नष्ट कर लेते हैं। किसी सामान्य-सी भूल को बहुत महत्त्व देकर जीवनभर लज्जा, शोक में डूबे रहकर अपराधी की तरह मानसिक परेशानी में डूबे रहते हैं। अपनी अबोध अवस्था में या अज्ञानवश किए गए किसी पाप पर जीवनभर पश्चाताप करते रहते हैं, दु:खी बने रहते हैं। आप से जो कुछ बुराई हो चुकी, उसे भूल जाइए। आत्मग्लानि को बढ़ने न दें, अन्यथा यह एक ऐसी मानसिक दुर्बलता के रूप में जम जाएगी, जो कुछ भी न करने देगी। कोई भी बुराई क्यों न हो गई हो, उसे अनावश्यक तूल न दीजिए। कीचड़ में गिर पड़ने पर उठकर उसे धो लेना ही श्रेयस्कर है। लज्जा, भय, संकोच को दूर करें, पुराने

पापों को भूल जाएँ, मन में आत्मविश्वास, साहस की भावनाओं को जगाएँ। स्मरण रहे कि इससे मनुष्य की मौलिक शक्तियों और क्षमताओं का बहुत ज्यादा ह्रास होता है। अतः सफल जीवन के लिए आत्मग्लानि से बचें।

(१३) क्रोध–

क्रोध तो इन समस्त दुर्गुणों का सम्राट है। क्रोध के आवेग में जो कुछ भी हो जाए कम ही है, क्योंकि इसका आवेग आने पर मनुष्य की सोचने-विचारने की शक्ति क्षीण हो जाती है और वह आवेग में कुछ भी कर सकता है। मारपीट, कत्ल, आत्महत्या, नृशंस घटनाएँ क्रोध के आवेग में ही घटती हैं। क्रोध एक प्रकार की आँधी है, जब वह आती है तो विवेक को ही नष्ट कर देती है। क्रोध इतना फुरतीला मनोविकार है कि इसमें सोचने-विचारने, समझाने-बुझाने का अवसर नहीं रहता। क्रोध से मनुष्य के पुण्य कार्य, सद्भावनाएँ, सद्गुण उसी तरह नष्ट हो जाते हैं, जैसे बाढ़ आने पर कोई उद्यान नष्ट हो जाता है। यह संक्रामक है, एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति तक फैलता है और इस तरह पूरे समाज में अशांति की आग सुलग जाती है। यदि कारणवश क्रोध तत्काल प्रकट नहीं हो पाता या वह बहुत दिनों तक बना रहता है, तो बैर का रूप ले लेता है। हमको भी जीवन के इस भयंकर शत्रु से बचने के लिए सावधान रहना चाहिए।

(१४) प्रतिशोध–

प्रतिशोध की भावना तब आती है, जब किसी से शत्रुता होती है, किंतु यदि सचमुच देखा जाए तो इस संसार में न कोई किसी का शत्रु है और न मित्र। स्वार्थपूर्ण प्रवृत्तियों के कारण ही यह विरोधाभास दिखाई देता है। लोग समझते हैं, दुश्मन से बदला चुकाना शान की बात है। इसे वे साहस का कार्य भी समझते हैं, परंतु प्रतिशोध साहस नहीं है, साहस तो तब है जब आप उसे सहन कर जाएँ। इस तरह की सहनशीलता मनुष्य की अंतर्मुखी प्रवृत्तियों को विकसित करती

है, मनुष्य को विचारशील बनाती है, उसे कष्टों से बचाती है, उन्नति की ओर अग्रसर करती है। उसके लिए संसार में से शत्रुता का नाम ही मिट गया, जिसने कड़ुवाहट को भी उदारतापूर्वक पी जाना सीख लिया। विरोधी बातों को कभी मस्तिष्क में टिकने न दिया कीजिए, यह न जाने कब विद्रोह पैदा कर दे। परदोषदर्शन, घृणा तथा द्वेष करके भी मन में प्रतिशोध के भाव न रहने दीजिए। प्रत्येक व्यक्ति में अच्छाई ढूँढ़ा कीजिए। गुण-ग्राहकता से आपके सद्‌गुण बढ़ेंगे। घृणा के बदले प्रेम किया कीजिए। किसी का अहित न सोचिए, बन पड़े, तो उपकार कीजिए, हित करिए। कोई अपराध भी करता है तो उसे भी क्षमा कर दीजिए। यह मत सोचिए कि इससे आपको हानि होगी। सद्‌गुणों की, सद्‌विचारों की कीमत कई गुना अधिक होकर लौटती है और मनुष्य के अंत:करण को शीतल बना देती है। सद्‌भाव सारे वातावरण में फैलकर आपके हृदय में पवित्रता, शांति तथा मैत्री का विस्तार करेंगे। इस तरह के मंगल कर्म करने वाले की कभी दुर्गति नहीं होती। वह चिरकाल तक धरती के सुखों का उपभोग करता रहता है।

(१५) असंतोष–

असंतोष एक घातक दुर्गुण है। असंतोष का जन्म अधिकतर ईर्ष्या अथवा हिंसा की भावना से होता है। जब कोई अपने ऊपर दृष्टि डालकर किसी अपने से अधिक धनवान, बलवान अथवा मानवान को देखता है और यह सोचने लगता है कि यह हमसे अधिक सुखी तथा संपन्न है, प्रगति एवं उन्नति में हमसे बहुत आगे बढ़ा हुआ है, समाज में इसका बहुत मान-सम्मान है, जबकि मेरा कम या बिलकुल नहीं है, तब उसे अपने उस लक्षित व्यक्ति के प्रति ईर्ष्या होने लगती है, जो असंतोष को लेकर आती है और उसके बाद तो एक-से-दूसरे और दूसरे-से-तीसरे अवगुण के जन्म की लड़ी लग जाती है, जो कि बहुमूल्य मानव-जीवन की धूल उड़ाकर रख देती है। मनुष्य होकर भी अपने अंदर असंतोष

का विष बनाए रखना स्वयं अपनी कमी है, उसे दूर कर दीजिए, आप असंतोष से छुटकारा पा जाएँगे। अपने जीवन को उन्नति के मार्ग पर लगाइए। भूलकर भी न तो अपना कम मूल्यांकन कीजिए, न अपने को दीन-हीन तथा अभागा मानिए, ईर्ष्या-द्वेष से बचकर चलिए, अपनी ओर तथा अपनी परिस्थितियों पर दृष्टि रखिए, तब देखिए कि असंतोष का कोई भी कारण आपके पास नहीं रह जाता है।

(१६) आलस्य–

दुनिया में यदि कोई भयंकर बीमारी है, तो वह है आलस्य-पर-आलस्य। यह समस्त रोगों का राजा है, उसे मौत से भी अधिक भयंकर कह देना कोई अत्युक्ति न होगी। आलस्य के प्रभाव में पड़ने पर मनुष्य की क्रिया-शक्ति कुंठित होने लगती है। आलस्य के कुठार द्वारा कल्पवृक्ष के समान उस शरीर की जड़ काटते रहना, उसकी शक्ति, क्षमताओं एवं योग्यताओं को नष्ट करते रहना पाप ही है, जो मानव के महान-से-महान मनोरथों को चूर कर सकता है। शक्ति-संपन्नता, गौरव-ज्ञान, मान-प्रतिष्ठा, यश-कीर्ति आदि ऐसी कौन-सी समृद्धि अथवा ऐश्वर्य है जो शरीररूपी देवता को प्रसन्न करने पर नहीं मिल सकता। किसी को कोई अधिकार नहीं कि वह उत्तरदायित्व से फिरकर आलस्य, प्रमाद अथवा निष्क्रियता द्वारा पृथ्वी का भार बने और उसे असुंदर, अव्यवस्थित, अशांत अथवा असुखकर बनाने की क्रिया करे।

(१७) निर्दयता–

आज संसार में प्रतिदिन हजारों-लाखों निर्दोष पशु-पक्षियों का संहार किया जाता है। कहीं भोजन के लिए, कहीं उनकी अस्थि-चर्म का उपयोग करने के लिए, तो कहीं देवी-देवताओं के नाम पर बलि के रूप में। इतना ही नहीं, मनोरंजन, शिकार खेलने तथा निशाना साधने के लिए भी न जाने कितने पशु-पक्षियों की अकारण हत्या की जा रही है। एक ओर जहाँ मनुष्य ईश्वर, जीव, प्रकृति,

जड़-चेतन, आत्मा, ज्ञान-विज्ञान की बात करता है, वहीं दूसरी ओर निर्बल, निरीह एवं निर्दोष प्राणियों की गरदन काट रहा है। क्रूरता संसार में सबसे बड़ा पाप है। किसी प्राणी के प्रति क्रूरता का व्यवहार करने वाला एक प्रकार से अपनी ही आत्मा के प्रति क्रूरता का व्यवहार करता है। संसार के समस्त प्राणियों में एक ही आत्मा का निवास रहता है। अन्याय अथवा अत्याचार को देख-सुनकर मौन रह जाने का अर्थ है, उस कुकृत्य का समर्थन करना। मौन स्वीकृति का लक्षण माना गया है। अन्याय अथवा अत्याचार का सामर्थ्य भर विरोध करना प्रत्येक विवेकशील एवं धार्मिक व्यक्ति का अनिवार्य कर्त्तव्य है।

अपने स्वभाव की त्रुटियों का निरीक्षण करके उनमें अवश्य सुधार करने के लिए यदि हम तैयार हो जाएँ, तो जीवन की तीन चौथाई से अधिक समस्याओं का हल तुरंत ही हो जाता है। यह कार्य हमें स्वयं ही करना होगा। अपनी परिस्थितियों का निर्माता मनुष्य स्वयं है। सुख और समुन्नति के लिए आत्म-दुष्प्रवृत्तियों से दूर रहने और सत्य, न्याय, समता आदि गुणों का प्रसार उसे ही करना पड़ेगा। हमारी भलाई भी इसी में है। सदाचरण को अपनाकर ही हम सुखी रह सकते हैं। हम स्वयं ही अपना उद्धार कर सकते हैं, अन्य कोई नहीं। इसे हृदय में अंकित कर लें।

महात्मा इमर्सन कहा करते थे कि "मुझे नरक में भेज दो, मैं वहाँ भी अपने लिए स्वर्ग बना लूँगा।" उनका यह दावा इसी आधार पर था कि अपनी निज की अंत:भूमि परिष्कृत कर लेने पर व्यक्ति में ऐसी सूझ-बूझ की, गुण, कर्म, स्वभाव की उत्पत्ति हो जाती है, जिससे बुरे व्यक्तियों को भी अपनी सज्जनता से प्रभावित करने एवं उनकी बुराइयों का अपने ऊपर प्रभाव न पड़ने देने की विशेषता-क्षमता सिद्ध हो सके। यदि ऐसी विशेषता कोई व्यक्ति अपने में पैदा कर ले, तो यही माना जाएगा कि उसने सारे संसार को सुधार लिया। □

सफलता के पाँच सूत्र

जीवन में सफलता पाने के जितने साधन बतलाए गए हैं, उनमें विद्वानों ने पाँच साधनों को प्रमुख स्थान दिया है। जो मनुष्य अपने में इन पाँच साधनों का समावेश कर लेता है, वह किसी भी स्थिति का क्यों न हो, अपनी वांछित सफलता का वरण अवश्य कर लेता है। ये पाँच साधन हैं–परिश्रम एवं पुरुषार्थ, आत्मविश्वास एवं बलिदान, स्नेह एवं सहानुभूति, साहस एवं नियमितता, प्रसन्नता एवं मानसिक संतुलन।

(१) परिश्रम एवं पुरुषार्थ–दीपक जलता है, संसार को प्रकाश देता है और श्रेय के रूप में सफलता प्राप्त करता है। दीपक की इस सफलता का रहस्य यही तो है कि वह अपने तेल तथा बत्ती को तिल-तिलकर जलाता रहता है। उसका प्रकाश वस्तुतः उसकी उस निरंतरता, ज्वलनशीलता का ही होता है, जिसको वह लौ के रूप में बत्ती से प्रकट करता है। दीपक का कर्त्तव्य जलना है। जिस समय भी वह अपने इस कर्त्तव्य से विरत होकर निष्क्रिय हो जाता है, प्रकाश रूपी सफलता उससे दूर चली जाती है। वह एक मूल्यहीन मिट्टी के पात्र से अधिक कुछ नहीं रह जाता।

इसी प्रकार जो मनुष्य अपने शरीर का सार परिश्रमरूपी तप में खरच करते हैं, अपनी शक्तियों तथा क्षमताओं का समुचित उपयोग करते हैं, वे आलोक पाकर कृतकृत्य हो जाते हैं। सक्रियता ही जीवन है और निष्क्रियता ही मृत्यु। श्रम से विरत रहकर आलस्य अथवा प्रमाद में पड़े रहने वाले मनुष्य को जीवित नहीं कहा जा सकता।

(२) आत्मविश्वास एवं बलिदान–आत्मविश्वास एवं स्वावलंबन से हीन व्यक्ति की कोई सहायता-सहयोग भी नहीं करता। नियम है कि लोग उसी की सहायता किया करते हैं, जो अपनी सहायता आप किया करता है और जिसका हृदय आत्म-विश्वास की भावना से ओत-प्रोत है।

मनुष्य परिश्रमी भी है और आत्मविश्वासी भी, किंतु उसमें जिज्ञासा अथवा लगन की कमी है, तो भी उसका नाम सफल व्यक्तियों की सूची में आ सकना कठिन है। जिसमें जिज्ञासा नहीं है, वह आगे बढ़ने और ऊपर चढ़ने कि लिए उत्साहित ही किस प्रकार हो सकता है? जिसमें जिज्ञासा है और उसे साकार करने के लिए लगनशीलता है, अपने ध्येय, लक्ष्य तथा उद्देश्य में निष्ठा है, वह उसे प्राप्त करने से कोई संभव उपाय उठा न रखेगा।

सफलता एक प्राप्ति है, उपलब्धि है, जिसको समाज में समाज की सहायता से ही पाया जाता है। नियम है कि जो देता है, वही पाता है। यदि कोई यह चाहे कि वह संसार में पाता तो सब कुछ चला जाए, ङ्कुकतु देना कुछ भी न पड़े, तो ऐसा स्वार्थी तथा संकीर्ण भावना वाला व्यक्ति इस आदान-प्रदान पर चलने वाले संसार में एक कदम भी आगे नहीं बढ़ सकता। अस्तु, सफलता पाने अथवा उसकी संभावनाएँ सुनिश्चित बनाने के लिए आवश्यक है कि किसी भी आवश्यक त्याग तथा बलिदान के लिए सदा तत्पर रहा जाए।

(३) स्नेह एवं सहानुभूति–सफलता अथवा उसके लिए प्रयत्न में यदि स्नेह तथा सहानुभूति का समावेश न किया जाएगा, तो वह या तो असफलता में बदल जाएगी अथवा प्राप्त ही नहीं होगी। जो क्रूर, कठोर तथा असंवेदनशील है, उसके ये दोष ही उसके मार्ग में काँटे बनकर बिखर जाएँगे। उन्नति तथा विकास की ओर चलने के इच्छुक को स्नेह तथा सहानुभूति को स्थान देना आवश्यक है,

जिससे कि प्रतिदान में वह भी स्नेह-सहानुभूति पाता रहे और उसका पथ प्रशस्त होता रहे।

(४) साहस एवं नियमितता—अपने गुणों के आधार पर श्रेय पथ पर बढ़ने वाले व्यक्ति में यदि निर्भयता की कमी है तो समझ लेना चाहिए कि वह अपने लक्ष्य तक न पहुँच सकेगा। भीरु व्यक्ति में आगे बढ़ने का साहस ही नहीं होता। वह पग-पग पर आपत्तियों तथा कठिनाइयों की शंका करता रहेगा। सफलता के मार्ग पर असफलता का भय अस्वाभाविक नहीं है। भीरु व्यक्ति इसी अज्ञात अथवा असंभाव्य असफलता के कारण अपना अभियान ही आरंभ न करेगा। जिस श्रेय का आरंभ ही न होगा, उसका परिणाम आ भी किस प्रकार सकता है? संसार में दुष्टों तथा दुश्मनों की कमी भी नहीं है। वे स्वभावत: ही उठते हुए व्यक्ति के मार्ग में अवरोध एवं विरोध बनकर खड़े हो जाते हैं। ऐसे समय में दुष्टों तथा खलों से निपटने के लिए उस साहस की आवश्यकता होती है, जो भीरु व्यक्ति में नहीं होता।

(५) प्रसन्नता एवं मानसिक संतुलन—सफलता पाने के लिए प्रसन्नता की उतनी ही आवश्यकता है, जितनी शरीर यात्रा के लिए जीवन की। अप्रसन्न व्यक्ति एक प्रकार से निर्जीव ही होता है। एक छोटी-सी असफलता, एक रंचक विरोध आ जाने पर वह छुई-मुई की तरह मुरझाकर निराश तथा हताश हो जाएगा, तब भला इस प्रकार के निम्न स्वभाव वाला व्यक्ति सफलता के महान पथ पर किस प्रकार आरूढ़ हो सकता है? मानसिक संतुलन प्रसन्नता के आधीन रहा करता है। अप्रसन्नता की स्थिति में मनुष्य का संतुलन असंभव है और अंसतुलन निश्चित रूप से असफलता की जननी है।

इस प्रकार सफलता के आकांक्षी व्यक्तियों को चाहिए कि वे श्रेय पाने के लिए सफलता के इन साधनों का अभ्यास एवं विकास करते हुए अपने पथ पर बढ़ें, उन्हें सफलता मिलेगी और अवश्य

मिलेगी। सतत क्रियाशीलता ही सफलता का आधार है। जो निष्क्रिय है, कुछ नहीं करता, हाथ-पाँव नहीं हिलाता, आलस्य में पड़ा रहता है, वह वास्तविक अर्थों में जीवित भी नहीं कहा जा सकता। फिर सफल क्या होगा? यह ठीक है कि सफलता का प्रारंभ मनुष्य के आंतरिक जीवन में ही होता है। समस्त महान कार्य विचार क्रम के रूप में मानस पटल पर उदित होते हैं, तब धीरे-धीरे बाह्य जगत में उनका प्रादुर्भाव होता है।

किसी भी कार्य की योजना बनाना, लंबी-लंबी बातें सोचना एक बात है, उसे वास्तविक जीवन में कार्यों द्वारा अभिव्यक्त करना बिलकुल दूसरी बात है। अनेक व्यक्ति यह गलती करते हैं कि अपनी समस्त शक्तियाँ केवल सोचने-विचारने, योजना निर्मित करने में लगा देते हैं। वास्तविक संसार में प्रत्यक्ष कर दिखाने का उन्हें अवसर ही प्राप्त नहीं होता। ठोस परिश्रम करने की उन्हें आदत नहीं होती। वे हाथ-पाँव के कार्य से दूर भागते हैं। बातें हजार बनाएँगे, किंतु कार्य रत्ती भर भी न करेंगे? संसार में इतनी आवश्यकता बातचीत, योजनाओं, जबानी जमा-खर्च की नहीं है, जितनी कार्य की। जो विचार कार्यरूप में परिणत हो गया, वह जीवित विचार कहा जाएगा। जिन विचारों, योजनाओं पर अमल नहीं हुआ, जिन्हें प्रत्यक्ष जीवन में नहीं उतारा गया, वह मृतप्राय हैं। उन पर व्यय की गई शक्ति अपव्यय ही है।

क्रियात्मक कार्य ही संसार का निर्माण करता है। सफल व्यक्ति अपने आंतरिक विचार तथा बाह्य कार्य में पर्याप्त समन्वय करने की अपूर्व क्षमता रखते हैं। उनके पास क्रियात्मक विचारों की शक्ति रहती है। वे अपने विचारों को जीवन देते हैं अर्थात उन पर निरंतर काम करते हैं और प्रत्यक्ष जीवन में उतारते हैं।

दृढ़ प्रयत्न और सतत प्रयोग करते रहने वाले पुरुष सिंहों ने इस संसार में विलक्षण क्रांतियाँ की हैं। परिस्थितियाँ उन्हें किसी भी तरह दबा नहीं पाईं। दु:ख, निराशा, अनुत्साह उनकी कभी राह नहीं

रोक पाए। एकाकी पुरुषार्थियों ने वह कर दिखाया है, जो अनुत्साह ग्रस्त कोई बड़ा राष्ट्र भी नहीं कर पाया है।

भाग्य और कुछ नहीं, बीते कल का पुरुषार्थ ही आज का भाग्य बनता है। इस तरह मनुष्य अपने प्रबल पुरुषार्थ द्वारा भाग्य को भी बदल सकता है, इसमें कुछ भी संदेह नहीं। इसीलिए तो कहा है–''मनुष्य अपने भाग्य का निर्माता आप है।''

अपनी शक्तियों का सदुपयोग मनुष्य को स्वयं करना चाहिए। दूसरों के भरोसे बैठना निकम्मापन है। ईश्वर की सहायता माँगने का अधिकार तब मिलता है, जब हम स्वावलंबी हों। उन्हीं की भगवान मदद भी करता है, जो अपनी मदद खुद करते हैं। अपने पाँवों खड़ा होकर ही मनुष्य उन्नति कर सकता है। पुरुषार्थ मनुष्य जीवन की पहली आवश्यकता है। इसके बिना किसी तरह की उन्नति संभव नहीं है। संघर्ष और सफलता का संबल पुरुषार्थ ही है।

जीवन की सफलता-असफलता पर हमारे व्यवहार की छोटी-छोटी बातों का भी बहुत बड़ा प्रभाव पड़ता है। छोटी-छोटी आदतें, स्वभाव की जरा-सी विकृति, रहन-सहन का गलत ढंग आदि सामान्य-सी बातें होने पर भी मनुष्य की उन्नति, विकास, सफलता के मार्ग में रोड़ा बनकर खड़ी हो जाती हैं, किंतु इनका सुधार न करके लोग अपनी असफलताओं के दूसरे कारण गढ़कर अपने आपको संतुष्ट करने का असफल प्रयास करते हैं।

प्रत्येक व्यक्ति स्वयं ही अपने आप एक चलता-फिरता-बोलता विज्ञापन है। यह भी सच है कि विज्ञापन जैसा होगा, उसका प्रभाव भी वैसा ही पड़ेगा। बात-चीत, वेश-भूषा, रहन-सहन से मनुष्य का व्यक्तित्व प्रदर्शित होता है। जिन बुरी आदतों से अपना गलत विज्ञापन हो, अपना फूहड़पन, बेवकूफी जाहिर हो, उन्हें छोड़ने का प्रयत्न करना आवश्यक है।

बातचीत का स्तर भी मनुष्य के व्यक्तित्व को प्रकट करता है। ज्यादा चुप रहने वाले अथवा अधिक बोलने वाले दोनों ही तरह के लोग अच्छे नहीं समझे जाते। आवश्यकतानुसार ठोस और नपी-तुली बातचीत करना मनुष्य के व्यक्तित्व का वजन बढ़ाता है। बिना सोचे-समझे, ऊटपटांग, भाषा की अशुद्धता, अशिष्टता, जोर-जोर से बातें करना, बीच में ही किसी को टोक देना, बेमौके बात करना, अपनी ही अपनी कहते जाना बातचीत के दोष हैं। बातचीत में अपने ही विषय, अनुभवों की भरमार रखना, दूसरों को मौका न देना, किसी की बहिन-बेटी के सौंदर्य की चर्चा करना, परनिंदा आदि से मनुष्य के ओछेपन का अंदाजा कोई भी सहज ही लगा सकता है।

किसी भी तरह के चारित्रिक, व्यावहारिक दोष मनुष्य को असफलता और पतन की ओर प्रेरित कर सकते हैं। समाज में उसका मूल्य एवं प्रभाव नष्ट कर सकते हैं। महान पंडित, विज्ञानी, बलवान रावण केवल अपने अहंकार और पर-स्त्री हरण में ही नष्ट हो गया। सारे समाज ने, यहाँ तक कि पशु-पक्षियों तक ने उसका विरोध किया। इसी तरह इतिहास के पृष्ठों पर लिखी पतन की कहानियों में मनुष्य की चारित्रिक-हीनता ही प्रमुख रही है। चरित्र और व्यवहार की साधारण-सी भूलें मनुष्य की उन्नति एवं विकास का रास्ता रोक लेती हैं। दूसरी ओर छोटी-छोटी बातों पर ध्यान देने वाले जागरूक, तत्पर एवं रचनात्मक दृष्टिकोण वाले लोग असफलताओं के बीच भी सफलता के नए मार्ग ढूँढ़ निकालते हैं और उस हेतु व्यापक सहयोग-संबल प्राप्त कर लेते हैं।

संसार में उन्नति करने और सफलता पाने की असंख्य दिशाएँ हैं। असंख्य लोग उनमें बढ़ते और सफल होने का प्रयत्न करते रहते हैं, किंतु कुछ लोग देखते-ही-देखते सफल हो जाते हैं और कुछ चींटी की चाल से रेंगते और तिल-तिल बढ़ते हुए जीवन-भर उतनी दूर तक नहीं जा पाते। दो विद्यार्थी परीक्षा देते हैं। उनमें से

एक पास हो जाता है और दूसरा फेल। फेल होने वाला विद्यार्थी साल-भर पढ़ता रहा, यथासाध्य अध्ययन में भी कमी नहीं की, किंतु किन्हीं विशेष कारणों अथवा संयोगवश फेल हो जाता है। दूसरा पास होने वाला विद्यार्थी साल-भर खेलता-कूदता और मटरगश्ती करता रहा। किताब को हाथ नहीं लगाता, किंतु परीक्षा में नकल द्वारा अथवा अन्य अनुचित उपायों से पास हो जाता है, तो क्या यह सफल और वह असफल माना जाएगा, नहीं। पढ़ने तथा परिश्रम करने के बाद भी संयोगवश फेल हो जाने वाला उसकी तुलना में सफल ही माना जाएगा।

सफलता की कसौटी परिणाम नहीं बल्कि वह मार्ग है, वह उपाय, वह साधन और वह आधार है, उन्नति एवं विकास के लिए जिन्हें अपनाया और काम में लाया गया है। इस विवेचना के प्रकाश में, सफलता के आकांक्षी की अपनी समझ है कि क्रियाविधि को महत्त्व देता है अथवा परिश्रम को। हल्दीघाटी के युद्ध में अकबर विजयी हुआ, लेकिन इतिहास में राणा प्रताप की शौर्यगाथा ही गाई जाती है। प्रश्न जीत-हार का नहीं है, प्रश्न है कि कौन बहादुरी से लड़ा।

मनुष्य की असफलता के कारणों में एक कारण अयोग्यता भी है। जिसने किसी काम को करने का सही ढंग सीखने में प्रमाद किया है, उसकी रीति-नीति के संबंध में ज्ञान अर्जित करने का कष्ट नहीं उठाया है, वह उस काम को ठीक से अंजाम दे सकने की आशा अपने से नहीं रख सकता। यदि वह हठ अथवा लोभ के वशीभूत उस काम को हाथ में ले भी लेगा तो दूसरों के साथ अपनी दृष्टि में भी उपहासास्पद बन जाएगा। किसी काम को सफलतापूर्वक करने के लिए उससे संबंधित योग्यता का होना नितांत आवश्यक है। योग्यता किसी दैवी वरदान के रूप में नहीं मिलती। वह एक ऐसा सुफल है, जिसकी प्राप्ति परिश्रम एवं पुरुषार्थ के पुरस्कारस्वरूप ही होती है। जो आलसी हैं, अकर्मण्य

हैं, काम करने में जिनका मन नहीं लगता, परिश्रम के नाम से जिन्हें पसीना आ जाता है, वे किसी विषय में समुचित योग्यता अर्जित कर सकते हैं, ऐसी आशा दिवा-स्वप्न के समान मिथ्या सिद्ध होगी। योग्यता की उपलब्धि परिश्रम एवं पुरुषार्थ द्वारा ही संभव है। किसी विषय में सफलता हस्तगत करने के लिए उस विषय की पर्याप्त योग्यता होना आवश्यक है और योग्यता की उपलब्धि परिश्रम एवं पुरुषार्थ पर निर्भर है। इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि सफलता का मूलभूत हेतु परिश्रम एवं पुरुषार्थ ही है।

"मनुष्य अपने भाग्य का निर्माता स्वयं है"-इस सूक्ति वाक्य को कर्मठ व्यक्तियों ने पुरुषार्थ द्वारा, असंभव को संभव सिद्ध करके संसार के सम्मुख एक सिद्ध मंत्र के रूप में प्रस्तुत किया।

जीवन में सफलता की आकांक्षा रखने वालों को चाहिए कि सामयिक असफलता को चुनौती की भाँति स्वीकार करें और अपनी सृजन शक्ति के बल पर असफलता की पोशाक निराशा को पास न फटकने दें। कठिनाइयों से भय मानना अंतर में छिपी कायरता का द्योतक है। कठिनाइयों को देखकर भयभीत होने के स्थान पर उन्हें दूर करने के लिए जी-जान से जुट जाना होगा। इस प्रकार पूरे उत्साह और साहस के साथ लक्ष्य की ओर आगे बढ़ने पर सफलता की आशा की जा सकती है। इसमें संदेह नहीं कि ऐसा अदम्य उत्साह और उद्योग की क्षमता प्रकट करने वाले पुरुषार्थी के गले में जयमाला पड़ती ही है।

सफलता की सिद्धि ही मनुष्य का जन्म सिद्ध अधिकार है। जो व्यक्ति अपने इस अधिकार की उपेक्षा करके यथा-तथा जी लेने में ही संतोष मानते हैं, वे इस बहुमूल्य मानव-जीवन का अवमूल्यन कर एक ऐसे सुअवसर को खो देते हैं, जिसका दोबारा मिल सकना संदिग्ध है। अस्तु, उठिए और आज से ही अपनी वांछित सफलता को वरण करने के लिए उद्योग में जुट पड़िए।

चरित्र–हमारी बहुमूल्य संपत्ति

सद्विचारों और सत्कर्मों की एकरूपता को ही चरित्र कहते हैं। जो अपनी इच्छाओं को नियंत्रित रखते हैं और उन्हें सत्कर्मों का रूप देते हैं, उन्हीं को चरित्रवान कहा जा सकता है। संयत इच्छाशक्ति से प्रेरित सदाचार का ही नाम चरित्र है।

एक विचारक ने कहा है–जब धन चला गया तो कुछ भी नहीं गया, जब स्वास्थ्य चला गया तो कुछ गया, पर जब चरित्र चला गया तो सब कुछ गया। समस्त मानव जीवन का कुछ सार है, तो वह है–मनुष्य का चरित्र।

स्वेट मार्टेन ने लिखा है–"संसार में ऐसे व्यक्तियों की आवश्यकता है, जो धन के लिए अपने आप को बेचते नहीं, जिनके रोम-रोम में ईमानदारी भरी हुई है, जिनके भीतर सत्य का दीपक प्रकाशित है, जिनकी अंतरात्मा दिग्दर्शक यंत्र की सुई के समान एक उज्ज्वल नक्षत्र की ओर देखा करती है, जो सत्य को प्रगट करने में क्रूर राक्षस का सामना करने से भी नहीं डरते हैं, जो कठिन कार्यों को देखकर हिचकिचाते नहीं, जो अपने नाम का ढिंढोरा पीटे बिना ही साहसपूर्वक काम करते जाते हैं, मेरी दृष्टि में वे ही चरित्रवान आदमी हैं।"

ऊपर लिखी गई लोकोक्ति का अर्थ यही है कि धन-दौलत, स्वास्थ्य आदि को फिर पाया जा सकता है, किंतु गया हुआ चरित्र किसी भी मूल्य पर दोबारा नहीं पाया जा सकता। उत्कृष्ट चरित्र ही मानव जीवन की कसौटी है। यों तो धन, विद्या, कला, शक्ति आदि का भी मनुष्य के जीवन में अपना स्थान है, महत्त्व है, किंतु धर्म-

बुद्धि द्वारा, चरित्र के द्वारा यदि इनका नियंत्रण नहीं होता, तो सब उलटे मनुष्य और समाज के लिए अहितकर सिद्ध हो सकते हैं। मनुष्य निर्धन हो, अधिक विद्वान, शक्ति, प्रभुता संपन्न न भी हो तो भी जीवन की उपयोगिता और महत्ता में कोई कमी नहीं आती। इसके विपरीत व्यक्ति इन सबसे संपन्न है, लेकिन चरित्रवान नहीं है, तो वह सबसे दीन-हीन व मलीन है। इससे न अपना भला हो सकेगा और न समाज का। उत्तम विचार वाला व्यक्ति समाज के लिए एक बहुत बड़ी संपत्ति है। विश्व कवि टैगोर के शब्दों में प्रतिभा से भी उच्च है चरित्र का स्थान। स्माइल्स ने लिखा है-चरित्र एक संपत्ति है, अन्य संपत्तियों से भी महान। अन्य संपत्तियाँ अस्थाई है, परंतु चरित्र की संपत्ति मानव जीवन की स्थाई निधि है।

जीवन की स्थाई सफलता का आधार मनुष्य का चरित्र ही है। इस आधार के बिना जैसे-तैसे सफलता प्राप्त कर भी ली जाए तो वह अधिक टिकाऊ नहीं हो सकती। व्यक्ति, परिवार, राष्ट्र की स्थाई समृद्धि और विकास हमारे चारित्रिक स्तर पर ही निर्भर करता है। चारित्रिक हीनता से ही शक्ति, समृद्धि और विकास का विघटन होता है। चरित्र एक दृढ़ चट्टान है, जिस पर खड़ा व्यक्ति अजेय और महान होता है। लोकमान्य तिलक ने कहा है-''संसार में सच्चरित्र व्यक्ति ही उन्नति प्राप्त करते हैं।''

संपूर्ण जीवन कार्य, व्यवहार, विचार, मनोभावों की निर्मलता से ऊँचा उठता है। शुद्धि से ही चरित्र का गठन होता है। सेवा, दया, परोपकार, उदारता, त्याग, शिष्टाचार, सद्व्यवहार आदि चरित्र के बाह्य अंग हैं, तो सद्भाव, उत्कृष्ट चिंतन, नियमित-व्यवस्थित जीवन, शांत-गंभीर मनोभूमि चरित्र के परोक्ष अंग हैं। आपके विचार इच्छाएँ, आकांक्षाएँ, आचरण जैसे हैं, उन्हीं के अनुरूप आपके चरित्र का गठन होता है और जैसा आपका चरित्र है, वैसी ही आपकी दुनिया बनती है। आपका जीवन, आपका संसार, आपके ही चरित्र की देन है।

चरित्रहीन व्यक्ति के पास यदि धन होगा, तो वह उसे भोग-विलास और अन्य दुष्प्रवृत्तियों में जल्दी ही नष्ट कर डालेगा। ऐसा व्यक्ति यदि विद्वान है, तो वह अपनी प्रतिभा-बुद्धि को अनेक षड़यंत्र, छल-कपट, धोखा आदि में उपयोग करेगा। शक्तिशाली होगा तो अत्याचार करेगा। ऐसा धन, विद्वता, शक्ति समाज के लिए घातक है, जो चरित्रहीन व्यक्ति के हाथ में हों। चरित्रवान व्यक्ति ही इन विभूतियों का सदुपयोग कर अपना तथा दूसरों का भला कर सकता है।

उत्तम चरित्र जीवन को सही दिशा में प्रेरित करता है, तो चरित्रहीनता पथ-भ्रष्ट करके कहीं भी विनाश के गर्त में ढकेल सकती है। खेद है कि भौतिकवाद की अंधी दौड़ में आज जीवन के मूल्यांकन के व्यापक स्तर बदलते जा रहे हैं। समाज में उनको प्रतिष्ठा मिलती है, लोग उनको महत्त्व देते हैं, जो धनी, संपत्तिवान, विद्वान, प्रतिभाशाली और उच्च पदस्थ हैं। इन सबके समक्ष चरित्र को प्रायः हम भूलते जा रहे हैं। यही कारण है कि चरित्र का मूल्य कम होता जा रहा है। हम धनवानों की जी हुजूरी करते हैं, नेताओं का मुँह तकते हैं, पंडितों की वाह-वाह करते हैं, किंतु चरित्रवान सदाचारी व्यक्ति को कोई महत्त्व नहीं देता। यह बहुत बड़ी सामाजिक विकृति है। इससे लोगों में चरित्र से विमुख होकर बाह्य सफलताएँ अर्जित करने की प्रवृत्ति पैदा होती है।

वर्तमान युग में हमारी संपदा, विद्वत्ता, शिक्षा काफी बढ़ी है। तथाकथित भोग-विलासपूर्ण जीवन स्तर भी बढ़ा है, किंतु इसी अनुपात में हमारा चरित्र दिनों-दिन गिरता जा रहा है। चरित्रवान व्यक्ति बहुत ही कम मिलते हैं। बढ़ता जा रहा भ्रष्टाचार, बेईमानी, धोखाधड़ी, भेदभाव, ईर्ष्या-द्वेष आदि बुराइयाँ, अपने चरित्र को भुलाकर, उक्त भौतिक संपदाओं के संग्रह की अंधी दौड़ में लगने का ही परिणाम है। जब तक हम अपने चरित्र के प्रति जागरूक न होंगे व चरित्र को सर्वोपरि न मानेंगे, तब तक हमारी व्यक्तिगत और

सामाजिक जीवन की विषमताएँ दूर नहीं होंगी। न हमारी समस्याओं का ही समाधान होगा।

चरित्र मानव-जीवन की नींव है। यदि नींव जर्जर व कमजोर होगी, तो जीवन का देवालय विश्वासपूर्वक खड़ा न रह सकेगा। वैसे तो संसार में जीने के लिए बड़े-बड़े दुश्चरित्र लोग भी जीते हैं, किंतु उनका जीना, जीना नहीं माना जा सकता। जीवन उसी का है, जिसके विषय में लोगों की बुरी धारणा न हो, जिसकी उपस्थिति से लोग दूर भागना न चाहें, जिस पर लोग विश्वास करें और जो स्वयं भी निरभीक, निष्कलंक एवं सम्मानपूर्वक जीता हो। जिसका चरित्र गिरा हुआ है, जो समाज में विश्वास के योग्य नहीं रहा है, उसे पग-पग पर असहयोग, असहानुभूति का ताप सहना ही पड़ेगा।

सच्चरित्र व्यक्ति अपने व्यवहार से समाज में सभी को शीघ्र एवं सहज ही प्रभावित कर लिया करता है। इसी कारण सभी लोग उसका सम्मान तो करते ही हैं, उसकी हर बात पर विश्वास भी करते हैं। उसके प्रत्येक क्रिया-कलाप को बड़े ध्यान से देखते और अनुभव करते हैं। उसका प्रभाव ग्रहण कर स्वयं जाने-अनजाने उसका अनुकरण करने का प्रयास भी करते रहते हैं। बुरे-से-बुरा आदमी भी चाहे ऊपर से मानता या कहता न हो, पर मन-ही-मन सच्चरित्र व्यक्ति के प्रति एक आदर का भाव रखता है, उससे डरा भी करता है। यह एक मनोवैज्ञानिक तथ्य है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि सच्चरित्रता और सचाई का जादू भी दूसरों के सिर पर चढ़कर बोला और उन्हें प्रभावित किया करता है।

जिन देशों में स्त्री-पुरुषों के बीच शील मर्यादाएँ निश्चित नहीं, वहाँ भारी सामाजिक पतन पैदा हुआ पाया जाता है। पाश्चात्य देश इस कुटिल मानसिकता और सामाजिकता में ग्रसित होने के कारण अपना श्रेय खो चुके हैं। पाश्चात्य सिद्धांतों पर आधारित इस घृणित दुष्प्रवृत्ति के कारण भारतीय संस्कृति और समाज कम अस्त-व्यस्त नहीं हुआ। इस विषैली कामुकता की दुर्भाग्यपूर्ण

स्वच्छंदता ने आज सारे सामाजिक ढाँचे को ही खोखला कर दिया है।

जीवन और समाज व्यक्तियों के समूह से ही बना करते हैं। उन्हें संचालित करने वाला होता है, व्यक्ति एवं व्यक्तियों का व्यवहार। जिस समाज के सभी व्यक्ति चारित्रिक और नैतिक दृष्टि से अच्छे, परिपुष्ट एवं उन्नत हुआ करते हैं, वह सारा समाज स्वयं ही सच्चरित्रता के उच्च मूल्यों को स्थापित करने वाला, उनका मान-सम्मान बढ़ाने वाला हुआ करता है। जब समाज का जीवन सच्चरित्र एवं उच्च मूल्यों वाला बन जाता है, तब देश और राष्ट्र भी स्वत: ही वैसा बनकर संसार के सामने एक आदर्श स्थापित कर दिया करते हैं।

प्राचीन काल में हमारा भारत विश्वगुरु होने, कहलाने का गौरव प्राप्त कर सका था, उसका कारण भी उसकी सच्चरित्रता और महान मानवीय नैतिक मूल्यों की रक्षा कर पाने का सामर्थ्य ही था। सच तो यह है कि चारित्रिक-ह्रास ही क्रमश: हमारे देश के पतन और पराधीनता का कारण बना। उसके बाद इस सत्य को समझकर जब देश ने नैतिक मूल्यों और चरित्र-रक्षा का प्रयास आरंभ किया, तो उसे वह शक्ति प्राप्त हो सकी, जिसके बल पर एक बार फिर देश को स्वतंत्र कराया जा सका।

चरित्र निर्माण में साहित्य का बड़ा महत्त्व है। महापुरुषों की जीवन कथाएँ पढ़ने से स्वयं भी वैसा बनने की इच्छा होती है। विचारों को दृढ़ता व शक्ति प्रदान करने वाला साहित्य आत्म निर्माण में बड़ा योगदान करता है। इससे आंतरिक विशेषताएँ जाग्रत होती हैं। अच्छी पुस्तकों से प्राप्त प्रेरणा सच्चे मित्र का कार्य करती है। इससे जीवन की सही दिशा का ज्ञान होता है। इसके विपरीत अश्लील साहित्य अध:पतन का कारण बनता है।

चरित्र रक्षा प्रत्येक मूल्य पर की जानी चाहिए। इसलिए छोटे-छोटे कार्यों की भी उपेक्षा करना ठीक नहीं। हमारी वेशभूषा, खानपान, उठना, बैठना, वार्तालाप, मनोरंजन के समय भी मर्यादाओं का

पालन होना चाहिए। वेशभूषा और आहार की सादगी और सरलता से विचार भी वैसे ही बनते हैं। मादक और उत्तेजक पदार्थों से चरित्र-बल क्षीण होता है और पशुवृत्ति जाग्रत होती है।

चरित्र मनुष्य की सबसे बड़ी शक्ति तथा संपदा है। संसार की अनंत संपदाओं का स्वामी होने पर भी यदि कोई चरित्रहीन है तो वह हर अर्थ में विपन्न ही माना जाएगा, लेकिन खेद के साथ यह स्वीकार करना पड़ता है कि आजकल लोगों के चारित्रिक पतन का जो नया दौर आरंभ हुआ है, वह कहीं रुकने का नाम ही नहीं ले रहा है। आज समूची व्यवस्था इस प्रकार से और इस सीमा तक भ्रष्ट हो चुकी है कि चाहकर भी किसी व्यक्ति के लिए सच्चरित्र एवं सभी तरह के नैतिक मूल्यों से संपन्न बनकर रह पाना संभव नहीं रह गया। इसी कारण आज चारों ओर मूल्यहीनता, आचार-विचार की भ्रष्टता आदि का राज्य कायम है। कहीं भी उसका अंत-किनारा नहीं दीख पड़ रहा। एक बार फिर से सहज मानवीय भावनाओं, मूल्यों और चरित्र को जगाकर ही आज के अराजकतापूर्ण वातावरण से छुटकारा पाया जा सकता है। अब यह जिम्मेदारी युवावर्ग पर आ पड़ी है कि देश का चरित्र ऊँचा उठाने के लिए स्वयं अपना चरित्र उज्ज्वल रखें और दूसरों के चरित्र की रक्षा करें।

जन नेतृत्व करने अथवा समाज की गति बदल देने की शक्ति केवल चरित्र से ही प्राप्त हो सकती है। चरित्रबल संसार में सब बलों से श्रेष्ठ और सारी संपत्तियों में मूल्यवान संपत्ति है। इस नश्वर मानव-जीवन में चरित्र ही अमर उपलब्धि है। वह मनुष्य को नर से नारायण बना देता है। □

मनुष्य परिस्थितियों का दास नहीं, वह उनका निर्माता, नियंत्रणकर्त्ता और स्वामी है।

निश्चित फलदायी जीवन-साधना

दार्शनिक दृष्टि से देखें या वैज्ञानिक दृष्टि से, मानव-जीवन को एक अमूल्य संपदा के रूप में ही स्वीकार किया जाता है। शारीरिक, मानसिक एवं आत्मिक क्षेत्र में ऐसी-ऐसी अद्‌भुत क्षमताएँ भरी पड़ी हैं कि सामान्य बुद्धि से उनकी कल्पना भी नहीं की जा सकती। यदि उन्हें विकसित करने की विधा अपनाई जा सके तथा सदुपयोग की दृष्टि पाई जा सके तो जीवन में लौकिक एवं अलौकिक संपदाओं और विभूतियों के ढेर लग सकते हैं।

मनुष्य को मानवोचित ही नहीं देवोचित जीवन जी सकने योग्य साधन भी प्राप्त हैं, फिर भी उसे पशु-तुल्य, दीन-हीन जीवन इसलिए जीना पड़ता है कि वह जीवन को परिपूर्ण सुडौल बनाने के लिए मूल तथ्यों पर न तो ध्यान ही देता है और न उनका अभ्यास ही करता है। जीवन को सही ढंग से जीने की कला जानना तथा कलात्मक ढंग से जीवन जीने को जीवन जीने की कला कहते हैं। इस प्रकार कलात्मक जीवन जीते हुए मनुष्य-जीवन के श्रेष्ठतम लक्ष्य तक पहुँचने के लिए अनेक सद्‌गुणों का विकास करना होता है। अपने अंदर अनेक दोषों का शोधन तथा अनेक सद्‌गुण, सत्प्रवृत्तियों एवं क्षमताओं का विकास करना होता है। उन्हें विकसित और सुनियोजित करने की विधा ही ''जीवन साधना'' कही जाती है। साधना एक ऐसी प्रक्रिया है जिसे ठीक ढंग से यदि संपन्न किया जाए तो कुरूप-से-कुरूप चीज भी सुंदरतम बन जाती है। एक पत्थर के टुकड़े पर कलाकार अपनी छैनी और हथौड़ी से अभ्यास करता है। उसे एक आकार देने का प्रयत्न करता है और

उसका प्रयत्न जब सफल हो जाता है तो वह टुकड़ा एक सुंदर मूर्ति का रूप धारण कर लेता है। मनुष्य का जीवन भी कला के सहारे ही पत्थर से मूर्ति में रूपांतरित किया जा सकता है और अनगढ़, बेडौल व्यक्तित्व को सुंदर तथा समुन्नत बनाया जा सकता है। जीवन-साधना द्वारा मनुष्य का व्यक्तित्व महामानवों, देवपुरुषों जैसा सक्षम एवं आकर्षक बनाया जाना संभव है।

जीवन-साधना आज की शोध का सबसे महत्त्वपूर्ण विषय है। अब पहले जैसी न तो मनःस्थिति है न परिस्थिति। शाश्वत सिद्धांतों को आज के परिवेश में किस प्रकार व्यावहारिक बनाया जा सकता है, यह असाधारण एवं अद्‌भुत कार्य है, क्योंकि विज्ञान, उद्योग, शिक्षा, विकास, प्रचलन आदि ने मिलजुलकर जो माहौल बनाया है, उससे एक प्रकार की नई संस्कृति ने जन्म लिया है। बहुसंख्यक लोग उससे प्रभावित ही नहीं हुए, अभ्यस्त भी बन गए हैं। यह जैसी भी है, सामने है। इसमें विलासिता, अहमन्यता, अनास्था, उच्छृंखलता, धूर्तता जैसी दुष्प्रवृत्तियों ने चतुरता और संपदा के समन्वय से कुछ ऐसा माहौल बनाया है कि इसे न निगलते बनता है न उगलते, न टूटती है और न छूटती। जीवन की दृष्टि से असफल, मानवता की दृष्टि से त्रुटिपूर्ण, व्यक्तित्व की दृष्टि से फूहड़ और आंतरिक दृष्टि से अशांति भरे हुए मनुष्यों का ही बाहुल्य है। इसका एक ही कारण है, जीवन जीने की कला से अनभिज्ञ होना और जीवन-साधना की उपेक्षा करना। जीवन लाखों-कराड़ों लोग जीते हैं, उसे जीना ही पड़ता है, पर जीवन जीने की कला से अनभिज्ञ होने, जीवन-साधना की उपेक्षा करने के कारण वह एक विवशता बन जाती है। जो मनुष्य समुद्र तल तक प्रवेश कर जाता है, चंद्रमा तक उड़ान भर सकता है, वह चाहे तो सुख-शांतिमय गौरवपूर्ण जीवन-प्रणाली भी अपना सकता है। जिसके आधार पर हर समस्या को सुलझाया और हर कठिनाई को हल किया जा सकता है।

जीवन-साधना का अर्थ है-अपने अनगढ़ व्यक्तित्व को सुगढ़ता प्रदान करना और उसे उपयोगी बनाना। प्रत्येक व्यक्ति में महान बनने की संभावना बीज रूप में विद्यमान है। प्रशिक्षण और अभ्यास द्वारा उनका विकास किया जा सकता है। जीवनसाधना में जीवन-साधक को चतुर्विधि प्रक्रिया संपन्न करनी पड़ती है। (१) जीवन के विकास में बाधक अवांछनीयताओं को ढूँढ़ निकालना, (२) कुसंस्कारों को परास्त करना, (३) जो सत्प्रवृत्तियाँ अभी अपने स्वभाव में नहीं हैं, उनका विकास करना तथा (४) उपलब्धियों को प्रकाश-दीप की तरह सुविस्तृत क्षेत्र में वितरित कर देना। इन चार चरणों को आत्मचिंतन, आत्मसुधार, आत्मनिर्माण और आत्मविकास के नाम से पुकारा जाता है। इन चतुर्विध साधनों को एक-एक करके नहीं, समन्वित रूप से ही अपनाया जाना चाहिए।

(१) आत्मचिंतन-आत्मचिंतन का अर्थ अपनी समीक्षा करना है। इसमें अपने आपके गुणों एवं दोषों को ढूँढ़ निकालने एवं वर्गीकृत करने के लिए प्रयत्न करना होता है। रोगी की स्थिति जानने के लिए उसके मल, मूत्र, ताप, रक्त, धड़कन आदि की जाँच-पड़ताल की जाती है और निदान करने के बाद ही सही उपचार बन पड़ता है। आत्मचिंतन-आत्मसमीक्षा का भी यही क्रम है। इसके लिए अपने आप से प्रश्न पूछने और उनके सही उत्तर ढूँढ़ने की चेष्टा की जानी चाहिए। हम जिन दुष्प्रवृत्तियों के लिए दूसरों की ङ्क्षनंदा करते हैं, उनमें से कोई अपने स्वभाव में तो सम्मिलित नहीं है, जिन बातों के कारण हम दूसरों से घृणा करते हैं, वे बातें अपने में तो नहीं हैं, जैसा व्यवहार हम दूसरों से अपने लिए नहीं चाहते हैं वैसा व्यवहार हम ही दूसरों के साथ तो नहीं करते, जैसे उपदेश हम आए दिन दूसरों को करते हैं, उनके अनुरूप हमारा आचरण है भी अथवा नहीं, जैसी प्रशंसा और प्रतिष्ठा हम चाहते हैं, वैसी विशेषताएँ हम में हैं या नहीं। इस तरह का सूक्ष्म आत्मनिरीक्षण

स्वयं व्यक्ति को करना चाहिए और अपनी कमियों को ढूँढ़ निकालना चाहिए।

दूसरे के गुण-अवगुण देखने में ही हर किसी की रुचि होती है और प्रत्येक व्यक्ति उसमें प्रवीण भी होता है। ऐसा अवसर कदाचित ही आता है कि अपने दोषों को निष्पक्ष रूप से देखा और स्वीकार किया जा सके। कोई हमारे दोष बताता है तो वह शत्रु जैसा प्रतीत होता है। जिस कार्य को कभी किया ही न हो, वह सरलता से अभ्यास में नहीं आता। अतः अपने दोषों को ढूँढ़ने में कठोरता बरतने और दृढ़ता अपनाने की क्षमता उत्पन्न करनी चाहिए।

(२) आत्मसुधार—दुष्प्रवृत्तियों को छोड़ने के लिए, कुसंस्कारों को नष्ट करने के लिए और अपनी कमियों, दोषों को दूर करने के लिए आत्मसुधार का क्रम अपनाना पड़ता है। इसके लिए अभ्यास और विचार-संघर्ष के दो मोर्चे तैयार करने होते हैं। अभ्यस्त कुसंस्कारों की आदत तोड़ने के लिए, बाह्य क्रियाकलापों पर नियंत्रण और उनकी जड़ें उखाड़ने के लिए विचार-संघर्ष की पृष्ठभूमि बनानी चाहिए। पुराने अभ्यास को नए अभ्यास बनाकर तोड़ा जाए और कुसंस्कार को विचार-संघर्ष द्वारा नष्ट किया जाए। जैसे थल-सेना से थल-सेना लड़ती है और नभ-सेना से नभ-सेना मुकाबला करती है। यही नीति कुसंस्कारों के लिए भी अपनानी पड़ती है। जो भी जब उभरे उसी से संघर्ष किया जाए। बुरी आदतें जब उभरने के लिए मचल रही हों, तो उसके स्थान पर उचित सत्कर्म ही करने का आग्रह खड़ा किया जाए और मनोबलपूर्वक अनुचित को दबाने तथा उचित को अपनाने का साहस किया जाए। मनोबल यदि दुर्बल होगा तो ही हारना पड़ेगा अन्यथा सत्साहस जुटा लेने पर तो श्रेष्ठ की स्थापना में सफलता ही मिलती है। इसके लिए पहले छोटी-छोटी बुरी आदतों से लड़ाई आरंभ करनी चाहिए। उन्हें जब हरा दिया जाएगा तो अधिक पुरानी और अधिक बड़ी दुष्प्रवृत्तियों को परास्त करने योग्य मनोबल भी जुटने लगेगा।

(३) **आत्मनिर्माण**–जीवन-साधना का तीसरा चरण आत्मनिर्माण है। इसका अर्थ है–अपने व्यक्तित्व को उत्कृष्ट और सुसंस्कृत बनाने के लिए योजनाबद्ध प्रयत्न। दुर्गुणों को निरस्त करने के बाद सद्‌गुणों की प्रतिष्ठापना भी तो होनी चाहिए। खेत में से कँटीली झाड़ियाँ, पुरानी फसल की सूखी जड़ें उखाड़ दी गईं, इससे खेती का उद्‌देश्य तो पूरा नहीं होता, शेष आधी बात तब बनेगी जब उस भूमि पर सुरम्य उद्यान लगाया जाए और उसे पाल-पोसकर बड़ा किया जाए। बीमारी का चला जाना, रोग को मिटा देना आधा काम है। उसके बाद दुर्बल शरीर को बलिष्ठ बनाने के लिए उचित आहार-विहार जुटाना भी आवश्यक है। इसी प्रकार दुर्गुणों को निरस्त करने के बाद सद्‌गुणों की संपदा एकत्रित करना भी अत्यंत आवश्यक है। सद्‌विचार और सत्कर्म की समग्र जीवन पद्धति अपनाने से ही व्यक्तित्व का सुसंस्कृत बनना संभव होता है। अपना लक्ष्य यदि आदर्श बनना है तो इसके लिए व्यक्ति में आदर्श गुणों और उत्कृष्ट विशेषताओं का अभिवर्द्धन करना ही पड़ेगा। इसमें संकल्पनिष्ठ, धैर्यवान और सतत प्रयत्नशील रहने वाले व्यक्ति ही सफल होते हैं।

(४) **आत्मविकास**–जीवन-साधना की अंतिम सीढ़ी आत्मविकास है। आत्मविकास अर्थात आत्मीयता का विकास करना। सामान्यतः लोगों का ङ्क्षचतन और क्रियाकलाप अपने शरीर, मन तथा अपने परिवार की सुविधाओं तक ही सीमित रहता है और वे कोल्हू के बैल की तरह जीवन-संपदा को इसी परिधि में नष्ट कर देते हैं। स्मरण रखा जाना चाहिए कि मानवीय व्यक्तित्व ईश्वर की सर्वश्रेष्ठ कलाकृति है। इसके पीछे स्रष्टा का जो श्रम लगा है, उसके पीछे उसका यही उद्‌देश्य है कि मनुष्य उसके सहयोगी की तरह सृष्टि की सुव्यवस्था में संलग्न रहकर हाथ बँटाए। मानव-जीवन के रूप में हमें जो अमूल्य अवसर मिला है, उसे मूर्खों की भाँति व्यर्थ न जाने दें।

यदि हम अपनी स्थिति को देखें तो प्रतीत होगा कि शरीर और परिवार का उचित निर्वाह करते हुए भी हमारे पास इतना समय और श्रम बचा रहता है कि उससे परमार्थ प्रयोजनों की भूमिका निबाही जाती रह सके। आत्मीयता का विस्तार किया जाए तो सभी कोई अपने शरीर और कुटुंबियों की तरह अपनेपन की भाव शृंखला में बँध जाते हैं और सबका दु:ख अपना दु:ख तथा सबका सुख अपना सुख लगने लगता है। जो व्यवहार, सहयोग हम दूसरों से अपने लिए पाने की आकांक्षा करते हैं, फिर उसे दूसरों के लिए देने की भावना भी उमँगने लगती है। लोकमंगल और जनकल्याण की सेवा साधना की इच्छाएँ जगती हैं तथा उसकी योजनाएँ बनने लगती हैं।

इस स्थिति में पहुँचा व्यक्ति सीमित न रहकर असीम बन जाता है और उसका कार्यक्षेत्र भी व्यापक परिधि में सत्प्रवृत्तियों का संवर्द्धक बन जाता है। ऐसे व्यक्ति अपनी आवश्यकताओं को घटाने और निर्वाह की न्यूनतम आवश्यकताएँ रखकर शेष क्षमता और संपदा को सत्प्रयोजनों में लगाए रहते हैं। सामाजिक जीवन में जिन व्यक्तियों को उच्च सम्मान मिलता है, संसार के इतिहास में जिन महामानवों का उज्ज्वल चरित्र जगमगा रहा है, वे आत्मविकास के इसी मार्ग का अवलंबन लेते हुए महानता के उच्च शिखर तक पहुँच सके हैं।

जीवन-साधना के इन चार चरणों का सम्मिलित प्रयोग व्यक्ति को उत्कृष्ट व्यक्तित्व तथा उज्ज्वल चरित्र प्रदान करता है। आवश्यकता निष्ठा, सूझ-बूझ और दृढ़तापूर्वक उन्हें अपनाने की है। आत्मिक प्रगति का भवन इन्हीं चार दीवारों से मिलकर बना है। चार दिशाओं की तरह उत्कर्ष के चार आधार यही हैं। उत्कर्ष के उच्च शिखर पर चढ़ने के लिए इस रीति-नीति को अपनाने के अतिरिक्त और कोई मार्ग नहीं है। जीवन-साधना वास्तव में कल्पवृक्ष है। उसकी छाया में मनुष्य जीवन की महानतम उपलब्धियाँ प्राप्त कर सकता है। इसमें तनिक भी शंका की आवश्यकता नहीं है।□

सर्व सुलभ साधना–सेवा

प्राणी मात्र की सेवा करना, मनुष्य का परम कर्त्तव्य है। सेवा मानव-जीवन को उत्कृष्ट और पूर्ण बनाने वाली एक महत्त्वपूर्ण साधना है। जो फल अनेक तरह की तपश्चर्याओं, साधनाओं, कर्मकांडों, उपासनाओं से प्राप्त नहीं हो पाता है, वह मनुष्य को सेवा के द्वारा सहज ही मिल जाता है। संसार को छोड़ने वाले, कठोर तपश्चर्या करने वाले बुद्ध को अंत में पीड़ितों की सेवा करने की प्रेरणा वापस संसार में घसीट लाई। सुकरात, ईसा, मुहम्मद, रामकृष्ण, गाँधी, दयानंद एवं पूर्वकालीन ऋषि-महर्षियों का जीवन-मंत्र सेवा ही तो था। जीवन-लक्ष्य की मंजिल का मार्ग सेवा की सीढ़ियों पर से होकर ही जाता है। सचमुच सेवा का मार्ग ज्ञान, भक्ति, तप, योग आदि के मार्ग से भी ऊँचा है। इसके लिए ज्ञान, पुरुषार्थ, साधनों की नहीं, भावना की आवश्यकता होती है।

कौस्तुभ मुनि वर्षों से दीन-दु:खी को भोजन कराने के बाद स्वयं भोजन करने का नियम निभाते चले आ रहे थे, किंतु एक दिन उनके द्वार पर कोई सेवा का अधिकारी नहीं आया। वे बड़े दु:खी हुए। तभी उन्होंने एक वृक्ष के नीचे पड़े कुष्ठ पीड़ित वृद्ध को देखा। वे इसे ईश्वर कृपा समझकर उनके पास पहुँचे और भोजन ग्रहण करने का निवेदन किया। वृद्ध बोला–"मैं जाति का शूद्र हूँ, आपकी उदारता पाने का अधिकार मुझ शूद्र को कहाँ?" सर्वत्र एक ही परमात्मा को देखने वाले कौस्तुभ मुनि के लिए कोई शूद्र कैसे हो सकता था? उन्होंने उसका वैसा ही आतिथ्य किया जैसा किसी उच्च वर्ग का किया जाता है।

जीवन के उद्देश्य को पूर्ण करने की दृष्टि से, अंतरात्मा के संतोष की दृष्टि से, लोककल्याण की दृष्टि से, ईश्वर को प्रसन्न करने की दृष्टि से मानवता के आदर्शों को उज्ज्वल रखने की दृष्टि से, अपना नाम सत्पुरुषों की चिरस्मरणीय श्रेणी में अंकित कराने की दृष्टि से, भारतीय धर्म और संस्कृति का मान बढ़ाने की दृष्टि से सेवा मार्ग ही एक ऐसा मार्ग है, जिस पर चलना हमारे लिए सब प्रकार उचित एवं आवश्यक है।

सेवा का अर्थ है–दूसरों के भले की बात सोचना व आवश्यकतानुसार और यथाशक्ति हर संभव उपाय से दूसरों के भले के लिए कार्य करना। नीतिकारों ने प्रकृति का उदाहरण देते हुए कहा है–"नदियाँ अपना जल स्वयं पीने के लिए नहीं, दूसरों को पिलाकर उनकी प्यास शांत करने के लिए बहा करती हैं। वृक्ष अपने फल स्वयं नहीं खाते, बल्कि संसार के प्राणियों को अर्पित कर देते हैं। उसी प्रकार सज्जन और सेवाभावी लोगों का धन ऐश्वर्य के लिए नहीं, बल्कि लोक-साधना, समाज की भलाई और विकास के लिए हुआ करता है।"

जब नदी, सरोवर, समुद्र, वृक्ष, पशु, घास-पात, सूर्य, चंद्र आदि सभी सेवा-धर्म को अपनाकर अपना कर्त्तव्य पालन कर रहे हैं, तो हम मनुष्य होकर भी इस मंगलमय पथ के पथिक बनकर अपने जीवन को धन्य क्यों न बनाएँ? जिन्होंने मानव-जन्म सार्थक बनाने के इस मार्ग को समझा, उन्हीं का नाम इतिहास के अमर पृष्ठों पर सदा के लिए अंकित हुआ है।

मथुरा के समीप एक छोटे गाँव की बाल-विधवा ने सारे दिन चक्की चलाकर दो आने रोज कमाने और गुजारा करने का नियम बनाया। इसी में से दो पैसा रोज नियमित रूप से परमार्थ के लिए बचाए। वृद्धावस्था में एक हजार रुपये की राशि जमा हो गई, जिससे उसने मथुरा-देहली मार्ग पर एक पक्का कुआँ बनवा दिया। मधुर, शीतल जल वाला यह कुआँ "पिसनहारी का कुआँ" नाम से

प्रसिद्ध है। जो इसका शीतल जल पीता है और इसका इतिहास सुनता है, वह उस उदार देवात्मा को शत-शत नमन करता, भावभरी श्रद्धांजलि चढ़ाता है। यदि भावना और अंत:करण उदार हो तो परमार्थ के लिए क्या कुछ नहीं किया जा सकता।

अपने दैनिक जीवन में अन्य आवश्यक कार्यों की ही भाँति सेवा-कार्यों के लिए भी कुछ समय निर्धारित रखें। हमारी बुद्धि में सेवावृत्ति रहे। हर कार्य को ईमानदारी और लोककल्याण की दृष्टि से करें। अपने विचार और व्यवहार में सेवा-तत्त्व की स्थापना करें और दूसरों को सुख पहुँचाने, उनके दु:खों में हाथ बँटाने एवं पिछड़े हुओं को आगे बढ़ाने के लिए यथा अवसर मन-वचन-कर्म से जो कुछ बन पड़े, वह करते रहें।

अपनी दिनचर्या में से कुछ समय निश्चित रूप से सेवा-कार्य के लिए देना चाहिए और इसे बात के धनी, प्रणवीर सत्पुरुषों की तरह आजीवन निबाहते रहने का पूरा-पूरा प्रयत्न करना चाहिए। कभी कोई व्यवधान आ पड़े, तो उसे पुन: प्रारंभ कर देना चाहिए। अपनी शक्ति और सामर्थ्य के अनुसार, स्थानीय आवश्यकता और परिस्थिति को देखते हुए सेवा-कार्यों के लिए हर कोई छोटा-मोटा कार्यक्रम आसानी से बना सकता है।

अमृतलाल ठक्कर इंजीनियर थे। जिस क्षेत्र में काम करते थे, वह अछूतों का था। गंदगी, बीमारी, गरीबी के कारण उनकी दशा अत्यंत दयनीय थी। ठक्कर नौकरी से बचा समय इनकी सेवा में लगाते। इतने से ही उनकी स्थिति में भारी सुधार-परिवर्तन दीखने लगा। ठक्कर विचारने लगे-"क्यों न समूचा जीवन इसी पुनीत कार्य में लगाया जाए।" उन्होंने नौकरी छोड़ दी और गाँधी जी के सहयोग से हरिजन सुधार आंदोलन को देशव्यापी बना सके। समाज-सेवियों में उनका नाम अविस्मरणीय रहेगा।

हमें सेवा को जीवन के एक आवश्यक व्रत के रूप में ग्रहण करना चाहिए। सेवा की साधना कोई भी किसी भी परिस्थिति में

कर सकता है। इसके लिए कोई विशेष योग्यता या धन की आवश्यकता नहीं होती। यदि हमें सेवा की इच्छा हो तो अत्यंत व्यस्त जीवन में से भी समय निकाल सकते हैं। सेवा के लिए आवश्यकता है–उत्कृष्ट अभिलाषा और प्रबल भावना की। सेवा को जीवन-साधना का अंग मानकर हम आंशिक रूप में ही चालू कर सकते हैं। अधिक नहीं प्रतिदिन एक-दो घंटे ही निकाल लें तो बहुत हैं और वह किसी के लिए कठिन नहीं हैं। जब लोग खेल-कूद, मनोरंजन, सैर-सपाटों के लिए समय निकाल लेते हैं, तो कोई कारण नहीं कि वे प्रतिदिन कुछ भी समय सेवा जैसी उत्कृष्ट साधना के लिए न निकाल सकें। सेवा के लिए कोई निश्चित स्थान नहीं होता। इसके लिए किसी दिखावे की भी आवश्यकता नहीं है। सच्चा सेवक वही है जो बिना प्रदर्शन अपना कार्य करता रहे। सेवा कार्य किसी प्रशंसा प्राप्त करने के लिए नहीं, बल्कि अपना कर्त्तव्य समझकर किया जाता है।

सेवा-कार्यों में केवल दूसरों का हित होता हो, अपना कुछ भी भला न होता हो, यह सोचना गलत है। आत्मिक संतोष, प्रफुल्लता और सद्भावनाओं के अनेक गुण अपने व्यक्तित्व में विकसित होते हैं। उदारता, दया, सहिष्णुता, करुणा, वाणी में मधुरता आदि कई सद्गुणों का प्रादुर्भाव और विकास होता है, जिनके कारण सेवाभावी मनुष्य अन्य सामान्य लोगों की अपेक्षा द्रुतगति से महानता की ओर सफलता की सीढ़ियाँ चढ़ता चला जाता है, क्योंकि उसे अन्य लोगों की अपेक्षा अधिक सद्भाव व सहयोग मिलता है। व्यक्तित्व में महानता भी सेवा-धर्म अपनाने से ही आती है। महात्मा गाँधी अपने अत्यंत व्यस्त कार्यक्रमों में भी सेवा का अवसर निकाल ही लेते थे और उनकी सेवा-निष्ठा ने ही उन्हें मोहनदास करमचंद गाँधी से महात्मा गाँधी के स्तर तक पहुँचाया।

सेवा-साधना सभी दृष्टि से मनुष्य मात्र के लिए आवश्यक है। नैतिक, सामाजिक, भौतिक और आत्मिक उन्नति के लिए

सेवा-मार्ग अपनाना मनुष्य मात्र का कर्त्तव्य है। सेवा-भाव रखने वाले व्यक्ति को जाति-धर्म, छूत-अछूत की भावना से परे होना चाहिए। दीन-दुखियों की सेवा करने वाला स्वयं परमेश्वरस्वरूप होता है। निःस्वार्थ भाव से की हुई सेवा सतत फलीभूत होती है।

बाबा साहब आमटे एक साधारण वकील थे। चाहते तो अपना गुजारा भलीभाँति चला सकते थे, परंतु उनके अंतः से निस्सृत सद्भाव ने उनकी दिशाधारा ही बदल दी। अपंगों, कुष्ठ रोग से ग्रस्त व्यक्तियों के पुनर्वास हेतु उन्होंने अपना सारा जीवन लगा दिया। उन्हें स्वावलंबी बनाया तथा यह प्रमाणित किया कि दुर्दैव को भी चुनौती दी जा सकती है। रोग की चिकित्सा व शल्य क्रिया द्वारा यथासंभव रोगियों को कार्य करने योग्य बना देने के कार्य में उनके परिवार ने भी योगदान किया। शासन व जनता से भी सहयोग-सम्मान मिला। आज भी आश्रम के संचालन का सारा व्यय तथा आसपास के क्षेत्र में रचनात्मक कार्यों का दायित्व ये स्वावलंबी कुष्ठ रोगी ही उठाते हैं। जो भिखारी बन जगह-जगह मारे-मारे फिरते थे, उनके लिए तो वे देवदूत ही हुए।

सद्भाव जिनके अंदर कूट-कूटकर भरा हो, उनसे सेवा-धर्म निबाहे बिना रहा ही नहीं जाता। परिस्थितियाँ कुछ भी हों, वे अपना कर्त्तव्य पूरा करते हैं। अंतःकरण की यह सदाशयता ही उन्हें महान बनाती है।

आदमी काम की अधिकता से नहीं, वरन उसे भार समझकर अनियमित रूप से करने पर थकता है।

विपत्तियों से डरिए नहीं जूझिए

मनुष्य की इच्छा हो या न हो, जीवन में परिवर्तनशील परिस्थितियाँ आती रहती हैं। आज उतार है तो कल चढ़ाव। चढ़े हुए गिरते हैं और गिरे हुए उठते हैं। आज उँगली के इशारे पर चलने वाले अनेक अनुयायी हैं, तो कल सुख-दुःख की पूछने वाला एक भी नहीं रहता। रंक कहाने वाला एक दिन धनपति बन जाता है तो धनवान निर्धन बन जाता है। जीवन में इस तरह की परिवर्तनशील परिस्थितियाँ आते-जाते रहना नियति चक्र का सहज स्वाभाविक नियम है। अधिकांश व्यक्ति सुख, सुविधा, संपन्नता, लाभ, उन्नति आदि में प्रसन्न और सुखी रहते हैं, किंतु दुःख, कठिनाई, हानि आदि में दुःखी और उद्विग्न हो जाते हैं। यह मनुष्य के एकांगी दृष्टिकोण का परिणाम है और इसी के कारण कठिनाई, मुसीबत, कष्ट आदि शब्दों की रचना हुई। वस्तुतः परिवर्तन मानव-जीवन में उतना ही महत्त्वपूर्ण, सहज और स्वाभाविक है, जितना रात और दिन का होना, ऋतुओं का बदलना, आकाश में ग्रह-नक्षत्रों का विभिन्न स्थितियों में गतिशील रहना, किंतु केवल सुख, लाभ, अनुकूल परिस्थितियाँ की ही चाह के एकांगी दृष्टिकोण के फलस्वरूप मनुष्य दुःख, कठिनाई और विपन्नताओं में रोता है, दूसरों को अथवा ईश्वर को अपनी विपरीतताओं के लिए कोसता है, शिकायत करता है, किंतु इससे तो उसकी समस्याएँ बढ़ती ही जाती हैं, घटती नहीं। कठिनाइयाँ जीवन की एक सहज स्वाभाविक स्थिति है, जिन्हें स्वीकार करके मनुष्य अपने लिए उपयोगी बना सकता है। जिन कठिनाइयों में कई व्यक्ति रोते हैं, मानसिक क्लेश

अनुभव करते हैं, उन्हीं कठिनाइयों में दूसरे व्यक्ति नवीन प्रेरणा, नव उत्साह पाकर सफलता का वरण करते हैं। सबल मन वाला व्यक्ति बड़ी कठिनाइयों को भी स्वीकार करके आगे बढ़ता है तो निर्बल मन वाला सामान्य-सी कठिनाई में भी निश्चेष्ट हो जाता है।

परीक्षा की कसौटी पर प्रतिष्ठित हुए बिना कोई भी वस्तु उत्कृष्टता प्राप्त नहीं कर सकती, न उसका कोई मूल्य ही होता है। सोना भीषण गरमी में तपकर ही शुद्ध और उपयोगी होता है। कड़ी धूप में तपने पर ही खेतों में खड़ी फसल पकती है। आग की भयानक गोद में पिघलकर ही लोहा साँचे में ढलने के उपयुक्त बनता है। जन-जन द्वारा पूजी जाने वाली मूर्ति पर पैनी छैनी की असंख्य चोटें पड़ती हैं। परीक्षा की अग्नि में तपकर ही वस्तु शक्तिशाली, सौंदर्ययुक्त और उपयोगी बनती है। मनुष्य भी कठिनाइयों में तपकर ही उत्कृष्ट, सौंदर्ययुक्त, प्रभावशाली और महत्त्वपूर्ण बनता है। जीवन को अधिक उत्कृष्ट और महत्त्वपूर्ण बनाने के लिए मनुष्य को उतनी ही अधिक कठिनाइयों और परेशानियों में से गुजरना पड़ेगा। वस्तुतः कठिनाइयाँ, दुःख, परेशानियाँ जीवन की कसौटी हैं, जिनमें मनुष्य के व्यक्तित्व का रूप निखरता है।

कठिनाइयाँ मनुष्य के जीवन में महत्त्वपूर्ण स्थान रखती हैं। इन्हें खुले हृदय से स्वीकार करके मानसिक विकास प्राप्त किया जा सकता है। कठिनाइयों में खुलकर खेलने से इच्छाशक्ति प्रबल होती है और बड़े-बड़े काम करने की क्षमता प्राप्त होती है। कठिनाइयों में मनुष्य की आंतरिक शक्तियाँ एकत्रित और संगठित होकर काम करती हैं। जीवन की कोई भी साधना कठिनाइयों में होकर निकलने पर ही पूर्ण होती है। इस तरह मनुष्य चाहे तो कठिनाइयों को वरदान बना सकता है और अभिशाप भी। आवश्यकता इस बात की है कि कसौटी पर सफल होने के प्रयास न छोड़ें। अपनी साधना जारी रखें। जो मनुष्य कठिनाइयों का खुले दिल से स्वागत करता है, उनके साथ खेलता है, वह स्वयं तो उससे मिलने वाले लाभ प्राप्त

करता ही है, किंतु दूसरों के लिए प्रेरणा और आदर्श बन जाता है। एक कायर सैनिक को रण से भागता देखकर कई सैनिक भाग निकलते हैं। इसके विपरीत एक योद्धा जो अपने कर्त्तव्य को सामने रखकर कठिनाइयों में भी लड़ता रहता है, उसे देखकर अन्य सैनिक भी प्रेरणा और उत्साह प्राप्त कर लड़ते रहते हैं। उनकी वीरता के भाव जाग्रत होते हैं।

संसार में ऐसा कोई मनुष्य नहीं, जिसे जीवन में कभी मुसीबतों का, विपत्तियों का सामना न करना पड़ा हो। दिन और रात के समान सुख-दुःख का कालचक्र सदा घूमता ही रहता है। जैसे दिन के बाद रात्रि का आना अवश्यंभावी है, वैसे ही सुख के बाद दुःख का आना भी अनिवार्य है। इससे मनुष्य के साहस, धैर्य, सहिष्णुता और आध्यात्मिकता की परीक्षा होती है। विपत्तियाँ वास्तव में और कुछ नहीं, केवल हमारी प्रतिकूलताएँ हैं। **हम जिन वस्तुओं की, जिन परिस्थितियों की इच्छा करते हैं, उनका प्राप्त न होना ही विपत्ति कहलाता है। हमारा जीवन सादा, स्वावलंबी और सहिष्णु बनने पर विपत्तियों से हमें कम पाला पड़ेगा और यदि पाला पड़ा भी तो हम उसे हँसते हुए सहज भाव से स्वीकार कर उस पर हावी हो सकेंगे।** विपत्तियाँ साहस के साथ कर्म क्षेत्र में बढ़ने लिए चुनौती हैं। हम उनसे घबराएँ नहीं। बहुत-सी मुसीबतें तो केवल काल्पनिक होती हैं। छोटी-मोटी बातों को तूल देकर हम व्यर्थ ही अपने चारों ओर भय का भूत खड़ा कर लेते हैं।

सुबोधराय का जन्म पश्चिम बंगाल में हुआ। ६ वर्ष की आयु में ही एक दिन लेटे-लेटे उनकी नेत्र-ज्योति चली गई। उन्होंने निश्चय किया कि ज्ञान-चक्षुओं का उपयोग करेंगे। अंध विद्यालय में भरती हुए, एम०ए० प्रथम श्रेणी में पास किया। छात्रवृत्ति मिली तो इंग्लैंड, अमेरिका पढ़ने चले गए। उनकी कुशाग्र बुद्धि देखकर एक बंगाली विदुषी ने उनसे विवाह कर लिया। डॉ० सुबोध राय ने

पी.एच.डी. करने के उपरांत अपना जीवन अंधों के विद्यालय बनाने तथा उनके कल्याण की संस्थाएँ बनाने में लगाया।

ऐसी भी कई विपत्तियाँ हो सकती हैं, जिनका साहसपूर्वक मुकाबला करने पर भी हमारा घोर अनिष्ट कर दें, पर हमें उसे भी ईश्वरीय-विधान मानकर सहर्ष स्वीकार करना चाहिए। इससे हमारा आंतरिक मनोबल बढ़ेगा और हम कठिन-से-कठिन परिस्थितियों का सामना करने की शक्ति अर्जित कर सकेंगे। हमें हर परिस्थिति में अपने मन को संतुलित, शांत और स्थिर रखना चाहिए। हमें अपने से अधिक संपन्न और सुखी व्यक्तियों को देखकर ईर्ष्यालु एवं खिन्न होने की बजाय करोड़ों अपने से अधिक दुःखी, शक्तिहीन एवं अभावग्रस्त लोगों की ओर देखकर संतोष मानना चाहिए कि हम पर भगवान की बड़ी दया है।

स्मरण रखिए, विपत्तियाँ केवल कमजोर, कायर और निठल्ले को ही डराती, धमकाती और पराजित करती हैं और उन लोगों के वश में रहती हैं जो उनसे जूझने के लिए कमर कसकर तैयार रहते हैं। इस प्रकार के दृढ़ संकल्प वाले कर्मठ व्यक्ति कभी अपने जीवन में निराश नहीं होते, अपितु वे दूसरे निराश एवं हताश व्यक्तियों के लिए प्रेरणा के केंद्र बन जाते हैं। राम, कृष्ण, महावीर, बुद्ध, ईसा, मोहम्मद, स्वामी दयानंद, महात्मा गाँधी आदि महापुरुषों के जीवन संकटों और विपत्तियों से भरे हुए थे, पर वे संकटों की तनिक भी परवाह न करते हुए अपने कर्त्तव्य मार्ग पर अविचल और अबाध गति से अग्रसर होते रहे। फलतः वे अपने उद्देश्य में सफल हुए और आज संसार उन्हें ईश्वरीय अवतार मानकर पूजता है।

विपत्तियों एवं कठिनाइयों से जूझने में ही हमारा पुरुषार्थ है। यदि हम कोई महत्त्वपूर्ण कार्य करना चाहते हैं तो उसमें अनेक आपत्तियों का मुकाबला करने के लिए हमें तैयार ही रहना चाहिए। जिन्होंने इस रहस्य को समझकर धैर्य का आश्रय ग्रहण किया है,

संसार में वे ही सुखी समझे जाते हैं। धैर्य की परीक्षा सुख की अपेक्षा दु:ख में ही अधिक होती है। महापुरुषों की यह विशेषता होती है कि दु:खों के आने पर वे हमारी तरह अधीर नहीं हो जाते। उन्हें प्रारब्ध कर्मों का भोग समझकर वे प्रसन्नतापूर्वक सहन करते हैं। अपने प्रियजन के वियोग से हम अधीर हो जाते हैं। क्या वह हमारी अधीरता को देखकर लौट जाएँगे? यदि नहीं तो हमारा अधीर होना व्यर्थ है। जीवन की आवश्यक वस्तुएँ जब प्राप्त नहीं होती हैं, तो हम अधीर हो जाते हैं। छोटी-मोटी कठिनाइयाँ सामने आने पर हम अपना मानसिक संतुलन खो बैठते हैं। अभाव को दूर करने एवं कठिनाई को पार करने का रास्ता ढूँढ़ने की अपेक्षा हम अपना समय और शक्ति घबराने में खरच करते हैं। क्या करूँ? कहाँ जाऊँ? ऐसे अधीरता के विचारों में विकल हुए रोया करते हैं। शरीरधारी ऐसा कोई भी नहीं है, जिसने विपत्तियों के कड़ुवे फलों का स्वाद न चखा हो, फिर हम अधीर क्यों हो? बस, विवेकी और अविवेकी में यही अंतर है। जरा, मृत्यु और व्याधियाँ दोनों को ही होती हैं, परंतु मूर्ख विकल होकर विपत्तियों को और बढ़ा लेता है।

किसी भी महापुरुष का जीवन उठाकर देख लीजिए, वह कठिनाइयों का एक जीता-जागता इतिहास मिलेगा। किसी उद्देश्य के लिए जीवन भर कठिनाइयों से जूझते रहना ही महापुरुष होना है। कठिनाइयों से गुजरे बिना कोई भी अपने लक्ष्य को नहीं पा सकता। विद्वानों का कहना है कि जिस उद्देश्य का मार्ग कठिनाइयों के बीच होकर नहीं जाता, उसकी उच्चता में संदेह करना चाहिए। ऐसे अनेक महापुरुष हुए हैं, जो असुविधापूर्ण परिस्थितियों में रहे, उन्हें कठिनाइयों का सामना करना ही पड़ा, साथ ही जिन्हें किसी प्रकार की असुविधा नहीं थी, उन्होंने भी कठिन कामों को हाथ में लेकर कठिनाइयों को इच्छापूर्वक आमंत्रित किया।

ब्रिटेन के एक प्रधानमंत्री चर्चिल बचपन में तुतलाते थे। उन्होंने वाणी पर अधिकार करने का फैसला किया और घोर परिश्रम से वे

कुशल वक्ता बने। अपने व्यक्तित्व को पूर्णता तक पहुँचाने के लिए ही भारतीय ऋषि-मुनियों ने तपस्या का कष्ट-साध्य जीवन अपनाया। कष्ट और कठिनाइयों का अनुभव पाया हुआ व्यक्ति दूसरों के दुःख-दरद को ठीक-ठीक समझ लेता है और सामर्थ्यभर सहायता करने की कोशिश करता है। उसमें सहानुभूति, सौहार्द्र, सहयोग तथा संवेदना जैसे दैवी गुण आ जाते हैं। कष्ट पाया हुआ व्यक्ति दूसरों को सताने और दुःख देने से डरता है। कष्ट और कठिनाइयाँ मनुष्य के अहंकार को नष्ट करके उसमें विनम्रता, श्रद्धा और भक्ति के भाव भर देती हैं। कठिनाइयों की कृपा से ऐसे अनेक गुण पाकर मनुष्य का चरित्र चमक उठता है। कठिनाइयाँ मनुष्य को स्वस्थ और सुदृढ़ बनाती हैं। कठिनाई से उपार्जित सुख-साधनों में जितना संतोष होता है, उतना सहज उपलब्ध साधनों में नहीं। कठिनाइयाँ मनुष्य-जीवन के लिए वरदान रूप ही होती हैं। कष्ट और कठिनाइयों को जो व्यक्ति विवेक और पुरुषार्थ की कसौटी समझकर परीक्षा देने में नहीं हिचकते, वे जीवन की वास्तविक सुख-शांति को प्राप्त कर लेते हैं। केंवल मात्र सुख-सुविधाओं से भरा जीवन अधूरा है। जब तक मनुष्य दुःखों का अनुभव नहीं करता, कष्टों को सहन नहीं करता, वह अपूर्ण ही रहता है। मनुष्य की पूर्णता के लिए दुःख-तकलीफों का होना आवश्यक है। दुःखों की आग में गले बिना मनुष्य के मानसिक मल दूर नहीं होते और जब तक मल दूर नहीं होते मनुष्य अपने वास्तविक रूप में नहीं आ पाता। जहाँ दुःख की अनुभूति नहीं, वहाँ ईश्वर की अनुभूति असंभव है। यही कारण है कि भक्तों ने ईश्वर के समीप रहने के साधन के रूप में दुःख को सहर्ष स्वीकार किया है। कष्ट और कठिनाइयों को दुःखमूलक मानकर जो इनसे भागता है, उसे ये दुःख रूप में ही लग जाती है और जो बुद्धिमान इन्हें सुखमूलक मानकर इनका स्वागत करता है, उसे देवदूतों के समान वरदायिनी होती हैं। हम केवल सुख, प्रसन्नता, लाभ, सफलता की ही आकांक्षा रखते हैं। इसके विपरीत दुःख-

कठिनाइयों, परेशानियों, समस्याओं से हम कतराते हैं। उस स्थिति में हम में से बहुत से रोने लगते हैं। चिंता, शोक, क्लेश, अशांति में घुल-घुलकर असमय में ही जीवन नष्ट कर लेते हैं। दूसरे ऐसे भी लोग होते हैं जो इन कठिनाइयों को ही अपने विकास, उत्थान, महानता तथा प्रगति का साधन बना लेते हैं। कठिनाइयों में रोने के बजाय उनके समाधान का मार्ग ढूँढ़ना ही रोग का सही इलाज है। इसलिए संकट के समय अपने समस्त बुद्धि, विवेक और प्रयत्नों को इनके हल करने में लगा देना चाहिए, इससे तीन लाभ होंगे- (१) जब समस्त शक्तियाँ एकाग्र होकर किसी एक क्षेत्र में काम करेंगी तो संतोषजनक समाधान भी मिलेगा। (२) साथ ही शक्तियाँ अधिक सक्षम और विकसित होंगी। (३) बुद्धि, विवेक, अनुभव बढ़ेंगे। मनुष्य के व्यस्त रहने से कठिनाइयों के प्रति शोक, चिंता एवं उद्विग्नता में डूबने के लिए कोई समय ही नहीं मिलेगा। स्वामी विवेकानंद ने लिखा है-व्यस्त मनुष्य को आँसू बहाने के लिए कोई समय नहीं रहता। कठिनाई एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके अंतर्गत व्यक्ति सुदृढ़, प्रबुद्ध एवं अनुभवी बनता है। कठिनाइयाँ जीवन की कसौटी हैं, जिनमें हमारे आदर्श, नैतिकता एवं शक्तियों का मूल्यांकन होता है।

नेपोलियन नाटा था और गरीब घर में पैदा हुआ था। इन दोनों कारणों से आरंभिक जीवन में उसे उपहास और तिरस्कार सहने पड़े। इसके लिए कई बार उसके मन में विद्रोह उठा, पर वह शांत बना रहा। लोगों के मुँह जब बंद हुए, तब उसकी विशेषताओं के कारण एक राजकुमारी ने उससे विवाह कर लिया।

बिना विपत्ति की ठोकर लगे विवेक की आँख नहीं खुलती। सच्चे ज्ञान की कसौटी यह है कि वह कठिनाइयों में प्राप्त किया गया है। प्रसिद्ध उपन्यासकार मुंशी प्रेमचंद ने लिखा-विपत्तियों से बढ़कर तजुर्बा दिलाने वाला विद्यालय आज तक नहीं खुला। कठिनाइयाँ मनुष्य विकास का साधन हैं। जिस तरह आग की तेज भट्टी में

तपने पर सोने का रंग निखर आता है, वैसे ही सच्चे व्यक्ति का जीवन कठिनाइयों की आग से परिपक्व बनता है। महात्मा गाँधी, बुद्ध, ईसा आदि महापुरुष पग-पग पर कठिनाइयों से लड़े थे, तब महान सामाजिक व राजनैतिक क्रांतियों का संचालन कर सके थे। विपत्ति में मानसिक शक्तियाँ अंतर्मुखी हो जाती हैं। इससे मनुष्य को सत्य-असत्य, अपने-पराए का यथार्थ ज्ञान होता है। आत्मीय स्वजनों की पहचान भी कठिन समय आ जाने पर ही होती है। सच्चे मित्र की, आत्मीय की पहचान कठिनाइयों में होती है। अपना हितैषी कौन है और कौन धूर्तता का, धोखेबाजी का व्यवहार कर रहा है, इसकी परीक्षा मुसीबत पड़ने पर ही होती है। सन्मार्ग पर चलने वाले व्यक्ति की सच्ची परीक्षा कठिनाइयों में ही होती है। कठिनाइयाँ वे वरदान हैं, जिन्हें देकर परमात्मा हमें अपने पास बुलाना, अपनी पवित्र गोद में बिठाना चाहता है। विपत्ति वह खराद है, जिससे परमात्मा नर-रत्नों की चमक बढ़ाता है।

परिवार के एक अंधे ६३ वर्षीय सदस्य को परिवार के लोगों ने अपमानित कर दिया। उसके स्वाभिमान को चोट पहुँची। उसने न्यूजीलैंड की एक उच्च बस्ती में मकान बनाना प्रारंभ किया। मकान का नक्शा मस्तिष्क में जमाकर उसने कार्य प्रारंभ किया। ढाई वर्ष तक अनवरत श्रम कर ऐसी भव्य इमारत खड़ी की जिसकी कल्पना कोई इंजीनियर भी नहीं कर सकता।

देखने वाले आज भी दंग रह जाते हैं। यह मकान न्यूजीलैंड सरकार की संपत्ति और इसे सार्वजनिक प्रदर्शनी के रूप में सुरक्षित रखा गया है। इस महान कलाकार का नाम है-फ्रांसिस ए वरडेट। स्वाभिमान पर चोट पहुँचने से वरडेट में कला का ऐसा स्रोत फूटा कि वह महान कलाकार के रूप में अमर बन गया।

परिवर्तन संसार का स्वाभाविक गुण है। यह एकरस कदापि नहीं रह सकता। एक-सी स्थिति में रहते-रहते संसार के प्राणी ऊबकर विरक्त न होने लगें, इसलिए परमात्मा ने संसार में परिवर्तन

का एक अनिवार्य नियम बना दिया है। कठिनाइयों का आगमन भी इसी परिवर्तनशीलता के ही अंतर्गत हुआ करता है। मानव-जीवन संघर्ष पूर्ण प्रक्रिया है। परिवर्तन से डरना और संघर्ष से कतराना मनुष्य की बहुत बड़ी कायरता है। मनुष्य जब तक जीवित है, उसे परिवर्तन पूर्ण उतार-चढ़ाव और बनने-बिगड़ने वाली अनुकूल-प्रतिकूल परिस्थितियों का सामना करना ही होगा। दु:ख-सुख, हानि-लाभ, सफलता-असफलता, सुविधा एवं कठिनाइयों के बीच से गुजरना ही होगा। यह आएँगी ही और मनुष्य को इनसे जूझना ही होगा। यह बात दूसरी है कि कोई कायर इनकी मार खाकर रोता-चिल्लाता हुआ इनको पार करता है और कोई साहसी अपने आत्मबल एवं पुरुषार्थ का सहारा लेकर या तो इनको अनुकूल बना लेता है अथवा इनका मुख मोड़ देता है। यदि कठिनाइयाँ न आएँ तो मनुष्य साधारण रूप से रेलगाड़ी के पहिए की तरह निरुत्साह के साथ लुढ़कता चला जाए।.उसकी अलौकिक शक्तियों, उसकी क्षमताओं, उसकी अद्‌भुत बुद्धि और शक्तिशाली विवेक के चमत्कारों को देखने का अवसर ही न मिले। आपत्तियाँ संसार का स्वाभाविक धर्म हैं। वे आती हैं और सदा आती रहेंगी। उनसे न तो भयभीत होइए और न भागने की कोशिश करिए, बल्कि अपने पूरे आत्मबल, साहस और शूरता से उनका समाना कीजिए, उन पर विजय प्राप्त कीजिए और जीवन में बड़े-से-बड़ा लाभ उठाइए।

सज्जन अमीरी में गरीब जैसे नम्र और गरीबी में अमीर जैसे उदार रहते हैं।

शिक्षा ही नहीं विद्या भी

ज्ञान के दो अंग हैं–एक शिक्षा दूसरी विद्या। शिक्षा वह है जो स्कूल-कॉलेजों में पढ़ाई जाती है। जिसे पढ़कर लोग ग्रेजुएट, क्लर्क, डॉक्टर, वकील, इंजीनियर, प्रोफेसर आदि बनते हैं। यह जीविकोपार्जन एवं लोक-व्यवहार में निपुणता प्राप्त करने के लिए है। यह आवश्यक है क्योंकि इसके बिना सांसारिक जीवन में स्थिरता एवं उन्नति का मार्ग नहीं खुलता, पर इससे भी अधिक आवश्यक 'विद्या' है। जिस ज्ञान को प्राप्तकर मनुष्य अपनी मान्यताओं, भावनाओं, आकांक्षाओं एवं आदर्शों का निर्माण करता है, उसी ज्ञान को विद्या कहा जाता है। इसे प्राप्त करने का माध्यम स्कूल-कॉलेज नहीं, वरन स्वाध्याय और सत्संग है। चिंतन-मनन से, सत्साहित्य पढ़ने से, सज्जनों के साथ रहने से, उनके अभिवचन सुनने एवं कार्यकलाप देखने से विद्या की प्राप्ति होती है।

अक्षर अभ्यास और उसके सहारे विश्व की विभिन्न परिस्थितियों का ज्ञान शिक्षा कहलाता है। इतिहास, भूगोल, गणित, भौतिकशास्त्र, जंतुशास्त्र, रसायनशास्त्र, स्वास्थ्य विज्ञान, व्याकरण, भाषा, नागरिकशास्त्र, अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र आदि ये सब शिक्षा के विषय हैं। ज्ञान का महत्तर स्वरूप उसका विद्या रूप है। ज्ञान का अर्थ है–भावनात्मक स्तर को इस प्रकार उपयुक्त बनाना कि मनुष्य सांसारिक सफलताओं को भी प्राप्त करे और आध्यात्मिक, आंतरिक शक्तियों की सुख और शांति भी उपलब्ध कर ले। विद्या की परिभाषा करते हुए शास्त्रकारों ने सूत्र रूप में कह दिया है कि 'सा विद्या या विमुक्तये' विद्या वह है, जो मुक्ति प्रदान करे। जिसके द्वारा हम रोग, शोक, द्वेष, पाप, दीनता, वासना, गरीबी, बेकारी, अभाव, अज्ञान, कुसंस्कार आदि की दासता से मुक्त हो सकें, वह विद्या है। ऐसी विद्या प्राप्त करने वाले विद्वान कहे जाते हैं।

आज की शिक्षा उपर्युक्त कसौटी पर कसे जाने पर बिलकुल खरी सिद्ध नहीं होती। जीवन का एक तिहाई भाग स्कूल-कॉलेजों में व्यतीत करने बाद जब छात्र बाहर आते हैं, तो उपर्युक्त बंधनों से छूटना तो दूर उलटा अधिक जकड़े हुए निकलते हैं। शील, स्वास्थ्य, संयम, विवेक, विनय, श्रद्धा, उत्साह, वीरत्व, सेवा, सहयोग आदि विद्या द्वारा प्राप्त होने वाले स्वाभाविक गुण जब उनमें दृष्टिगोचर नहीं होते तो फिर किस प्रकार कहा जा सकता है कि उन्होंने विद्या प्राप्त की है या वे विद्वान हो गए हैं।

प्राणी जिस साधन प्रणाली से ज्ञान प्राप्त करता है, उसी का नाम शिक्षा है। मनुष्य को मानवता संपन्न बनाना, मानव शिक्षा का उद्देश्य है। मनुष्य के भीतर जब मानवता के बीज विद्यमान हैं, तब उसे पूर्ण मानव तक पहुँचाना, उसके चिंतन-चरित्र-आचरण में गुण-कर्म-स्वभाव में उत्कृष्टता का स्फुटीकरण ही शिक्षा का मूल उद्देश्य होना चाहिए, जबकि आज की शिक्षा का उद्देश्य केवल धन है। शिक्षा समाप्ति के बाद आज का छात्र जब विद्यालय से बाहर कदम रखता है तो उसके मस्तिष्क में एक ही विचार रहता है-अच्छी नौकरी प्राप्त करना और जैसे भी हो, अधिक-से-अधिक उपार्जन करना।

यहाँ शिक्षा का महत्त्व कम नहीं किया जा रहा है और न ही यह कहा जा रहा है कि शिक्षा अनुपयोगी है। शिक्षा की अनेकानेक उपलब्धियों, सुविधा-साधनों के रूप में सर्वत्र दिखाई पड़ ही रही है। रचनात्मक दिशा के प्रयास प्रशंसनीय है, किंतु वह बैल, गाय, घोड़े की भाँति हैं, जो तेजी से किसी भी दिशा में सृजन अथवा ध्वंस की ओर दौड़ सकती है। विद्या से उत्पन्न होने वाली सुसंस्कारिता एवं अंतः की महानता का अंकुश न होने से मनुष्य के स्वेच्छाचारी होने की पूरी-पूरी गुंजाइश रहती है। इसीलिए शिक्षा के साथ विद्या के समन्वय की आज आवश्यकता है।

शिक्षा का उद्देश्य नौकरी या सिर्फ अर्थोपार्जन नहीं अपितु विद्या का विस्तार करना है। देश के गौरव, अपनी प्रतिष्ठा और समाज में सुख, समृद्धि, संयम और चरित्र की रक्षा, धर्म की भावना को जाग्रत करना, अपने आपको सुधारना एवं स्वयं को सच्चरित्र बना लेना शिक्षा का ध्येय है। यदि इतना संभव हो जाए तो समझना चाहिए कि तथाकथित शिक्षा रूपी काया में पुनः विद्या रूपी प्राण का वास हो गया।

शिक्षा और विद्या दोनों महत्त्वपूर्ण हैं और दोनों ही समग्र मानवी विकास के लिए जरूरी हैं। जहाँ एक व्यक्ति के बहुमुखी भौतिक विकास के लिए उत्तरदायी है, वहाँ दूसरी व्यक्ति के अंतःक्षेत्र के परिशोधन, परिष्कार एवं उन्नयन की भूमिका संपादित करती है। अतः शिक्षा मनुष्य के बहिरंग जीवन को सुविकसित करती है और विद्या अंतरंग को। शिक्षा सांसारिक योग्यता, प्रतिभा बढ़ाती है और विद्या मनुष्य को सुसंस्कारी, उदार, उदात्त बनाती है, व्यक्तित्व को श्रेष्ठता एवं शालीनता से सुसंपन्न करती है। एक को सभ्यता के विकास का साधन तथा दूसरे को सांस्कृतिक उन्नति का माध्यम समझा जा सकता है। प्रगतिशील जीवन दोनों के समन्वय एवं सुविकसित होने पर बनता है।

जीवन निर्वाह के लिए साधन जुटाना है, पर यही पर्याप्त नहीं है। अंतरंग के विकास के बिना जीवन यात्रा अधूरी है। यदि बहिरंग जीवन में काम आने वाले साधन जुटा भी लिए तो भी वे आत्मिक प्रगति के अभाव में निरुद्देश्य ही पड़े रहेंगे। साधनों का अंबार होते हुए भी व्यक्ति अनगढ़ बना रहेगा, कोई लाभ उठा नहीं पाएगा।

विद्या व्यक्ति को विनम्र बनाती है, साथ-ही-साथ प्रेम, स्नेह, सौहार्द्र, सरलता, दया, करुणा, परोपकार, श्रद्धा, भक्ति, आत्मविश्वास, आत्मबल की अभिवृद्धि करती है, उसके अंतरंग के स्तर को ऊँचा उठाती है। विचारपूर्वक देखा जाए तो जिन व्यक्तियों में ये आध्यात्मिक गुण होते हैं, वे पढ़े-लिखे न होने पर

भी अपने आप में इतने सुखी, इतने संतुष्ट होते हैं कि मानो वे किसी इंद्र के राज्य का सुखोपभोग कर रहे हों। इन गुणों से शून्य अंत:करण वाले बहुत पढ़े-लिखे होने पर भी कटुता, कलह, रोग, शोक, मद, मोह, माया, दंभ, द्वेष, पाखंड के मायाजाल में बड़े कष्ट भोगा करते हैं।

शिक्षा तो कहीं भी मिल सकती है, पर विद्या के सूत्र कहीं-कहीं ही मिलते हैं, किंतु जब भी ऐसा अवसर आता है, व्यक्ति का कायाकल्प हो जाता है।

जहाँ शिक्षा और विद्या दोनों का समावेश हो जाता है, वहीं स्वर्ग उत्पन्न हो उठता है। शिक्षा से सांसारिक सफलताएँ अवश्यंभावी हैं और विद्याभ्यास से आंतरिक गुणों का यथा-प्रेम, दया, करुणा, विनय, विवेक आदि का विकास असंदिग्ध रूप से होता है। जहाँ यह दोनों बातें मिल जाती हैं, वहीं आनंद के फौबारे छूटने लगते हैं, स्वर्ग बन जाता है। इसीलिए शिक्षाभ्यास के साथ-साथ विद्याभ्यास की आवश्यकता भी सर्वोपरि है।

प्रगति का यह पथ हर व्यक्ति के लिए खुला है। जो किसी की प्रतीक्षा न कर स्वयं पुरुथार्थ में संलग्न होते हैं, वे अपनी संकल्पशक्ति से लक्ष्य को प्राप्त करते हैं। निरंतर हर पल जो सीखने को, स्वयं को प्रखर बनाने को उद्यत हो, वही विद्या का धनी बनता, श्रेय-सम्मान पाता व श्रेष्ठता के शिखर पर पहुँचता है और अपने जीवन का उत्कृष्ट निर्माण करता है।

श्रावस्ती के दो गिरहकट वहाँ पहुँचे, जहाँ भगवान बुद्ध के उपदेश सुनने के लिए भीड़ एकत्र थी। एक गिरहकट तो लोगों की जेबें काटता रहा। दूसरा बुद्ध के उपदेश सुनने लगा। भगवान बुद्ध कह रहे थे कि जो अपनी बुराइयों को ढूँढ़ता और उन्हें निकालने का साहस करता है, वही सच्चा पंडित है। बात हृदय में उतर गई, गिरहकट ने अपनी बुराइयाँ निकालनी प्रारंभ की और सचमुच एक दिन भगवान बुद्ध का परम शिष्य बन गया।

वेशभूषा की शालीनता

हर देश की अपनी एक प्रचलित वेशभूषा होती है, जो वहाँ की जलवायु और भौगोलिक परिस्थितियों के अनुसार निर्धारित होती है। हमारे देश की भी अपनी प्रचलित वेशभूषा है। परिधान विशेष पर न जाएँ, तो सामान्य तौर पर हमारे देश में पहने जाने वाले वस्त्र सादा व ढीले-ढाले होते थे। धोती, कुरता, साड़ी, लहँगा आदि ऐसे ही परिधान हैं, जो हमारे देश में प्रयुक्त किए जाते रहे हैं और किए जा रहे हैं।

भारतीय संस्कृति की सर्वोपरि विशेषता यही रही है कि यहाँ जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में सादगी को ही अधिक महत्त्व दिया गया है। यह विशेषता वस्त्राभूषण के साथ भी जुड़ी हुई है। पिछले दिनों हमें जो यवनों और अँगरेजों की दासता भुगतनी पड़ी, उससे हमारे संपूर्ण आचार-विचार ही परिवर्तित हो गए हैं। यह परिवर्तन खान-पान, रहन-सहन, बोल-चाल आदि सभी में समा गया है। वस्त्र भी आज हमारी सांस्कृतिक विशेषता, गौरव, जलवायु आदि के अनुरूप नहीं है। किसी भी अवस्था में देशकाल की परिस्थितियों के प्रतिकूल वस्त्र नुकसानदेह ही हो सकते हैं।

वस्त्र पहनने से कोई आधुनिक और परंपरावादी नहीं हो जाता है। वस्त्र सादे हों, स्वच्छ हों, शालीन हों, जिन्हें देखकर किसी के मन में किसी प्रकार की दुर्भावना उत्पन्न न हो, ढीले-ढाले हों, पसीना सूखता रहे, जिससे कि सीलन से होने वाले चर्म रोग जैसे दाद, खाज, खुजली न हों। यह ध्यान में रखने की बात है कि

कपड़ा जितना तंग होगा, उतना ही जल्दी फटेगा। आर्थिक हानि के साथ-साथ स्वास्थ्य की हानि भी कम नहीं, क्योंकि तंग कपड़ा रक्त प्रवाह में अवरोध पैदा करता है। सूती कपड़े स्वास्थ्य के लिए बहुत उपयोगी होते हैं।

आजकल कपड़े पहनने का ढंग कुछ विकृत होता जा रहा है। युवक-युवतियाँ इस फैशन की दौड़ में सबसे आगे हैं। सिनेमा में काम करने वाले अभिनेता और अभिनेत्रियाँ जिस ढंग के कपड़े पहनते हैं, वे उसी ढंग के कपड़े बनवाकर पहनते हैं। कपड़े पहनने का अर्थ अपनी लज्जा को ढकने की बजाय उघाड़ना हो गया है। अनुकरण बुरा नहीं, पर अंधानुकरण तो बुरा होता ही है। आजकल फैशन के नाम पर जो नंगापन चला है, उससे समाज की जो हानि हो रही है, उससे कोई अनभिज्ञ नहीं है। कसे-कसाए और शरीर के उतार-चढ़ाव को दिखाने वाले कपड़े दर्शकों के मन में विकार ही उत्पन्न नहीं करते, वरन स्वास्थ्य के लिए भी हानिकारक होते हैं। भड़कीले वस्त्रों से आँखों पर भी बुरा असर पड़ता है, विशेषकर लाल रंग से। कपड़े हलके रंग के सभ्य और शालीन होने चाहिए।

बाल बुद्धि के लोग शारीरिक सौंदर्य और रूप का आकर्षण बढ़ाने के लिए तरह-तरह से वेश-विन्यास और रूप-सज्जा किया करते हैं। संभव है, इससे उन्हें कुछ क्षणिक सफलता मिलती हो, किंतु इस प्रकार भड़कीला वेश-विन्यास और बाहरी चमक बढ़ाने से मनुष्य के चरित्र का पतन ही हुआ है। विचित्र प्रकार की वेशभूषा, विदेशियों की नकल अच्छे व्यक्तित्व का प्रतीक नहीं हो सकती। प्रत्येक देश, काल और परिस्थिति के अनुसार जहाँ संस्कृति, रीति-रिवाज और सामाजिक आचार-संहिता में एकता होती है, उसी में सीमित रहने में हमारा बड़प्पन, सादगी, शालीनता तथा सांस्कृतिक गौरव माना जा सकता है।

बालों से मनुष्य का व्यक्तित्व समझ में आता है। मनुष्य की उजड्डता, ओछापन और चारित्रिक हीनता की झलक भी बालों से

मिलती है। छोटे कटाए हुए बाल मनुष्य की योग्यता प्रकट करते हैं। सुव्यवस्थित ढंग से रखे हुए बाल व्यक्त करते हैं कि व्यक्ति का स्वभाव, आचरण सामान्य व्यक्तियों की अपेक्षा कुछ अधिक सुंदर होना चाहिए, किंतु बड़े-बड़े, अस्त-व्यस्त और बिखरे हुए बालों से मनुष्य का ओछापन जाहिर होता है।

तड़क-भड़क युक्त पश्चिमी लिवास यह तो बताता है कि व्यक्ति सभ्य है, पर वह सुसंस्कृत ही होगा, ऐसा दावे के साथ नहीं कहा जा सकता। प्रारंभ से ही हमारे देश में चरित्र, चिंतन, व्यवहार को व्यक्तित्व के मूल्यांकन का आधार माना गया, जो सही था, किंतु समय के साथ-साथ मूल्यांकन की कसौटी बदली और अब सभ्य-असभ्य में विभेद का एक मोटा आधार पोशाक को माना जाने लगा है।

वेशभूषा की विकृति का स्त्रियों के जीवन में प्रवेश एक चिंतनीय विषय है। आज सभ्य और आधुनिक कहलाने वाली स्त्रियाँ अपने शरीर के वस्त्र सिकोड़ती और तंग करती जा रही हैं। जिसका बुरा प्रभाव न सिर्फ उनके स्वास्थ्य पर पड़ता है, वरन् समस्त समाज इस दुष्प्रभाव से संक्रमित होता है। स्त्रियों का आधुनिक पहनावा इतना फूहड़ और भड़कीला हो रहा है कि हर शरमदार की आँखें नीची हो जाती हैं। दुराचार को प्रोत्साहन देने में सिनेमा, नाच, अश्लील गाने जितने सहायक हो रहे हैं, वस्त्र सज्जा उससे कहीं अधिक ही है। हमारी बच्चियाँ अब उन वस्त्रों की ओर अधिक आकर्षित होती हैं, जो विचित्र प्रकार के रंग-बिरंगे तथा आधे छोटे होते हैं। स्त्रियों के वस्त्र ऐसे होने चाहिए, जिनसे उनका अधिकांश शरीर ढका रहे, किंतु वस्तुस्थिति इससे सर्वथा विपरीत है।

स्त्रियों की भारतीय वेशभूषा को अंतरराष्ट्रीय प्रतिष्ठा प्राप्त है। अतः यह नहीं कहा जा सकता कि उनकी पोशाक किसी देश की महिलाओं से निकृष्ट है। आज जहाँ साड़ी और पूरी बाँह के ब्लाउज का प्रचलन दूसरे देशों में बढ़ रहा है, वहाँ

यह सबसे अधिक आवश्यक है कि अपनी परंपराओं का अनुशीलन पहले अपने घर में ही हो। हमारी बहन-बेटियों को इस बात पर अधिक ध्यान देना चाहिए और वस्त्रों की सादगी अपनाने का प्रयत्न करना चाहिए। यह संयम उन बालिकाओं को अधिक अपनाने की आवश्यकता है जो इस समय शिक्षा के क्षेत्र में बढ़ रही हैं, क्योंकि महिलाओं के निर्माण की भावी बागडोर उन्हीं के हाथों आने वाली है।

व्यापक अनुसंधान के पश्चात् शोधकर्त्ताओं ने यह निष्कर्ष निकाला कि भड़कीले तथा चमकदार कपड़े मच्छरों तथा हानिकारक रोगजनक कीड़े-मकोड़ों को अपनी ओर आकर्षित करते हैं। आकर्षित होकर आने वाले ये मच्छर तथा कीट-पतंग उन वस्त्रों को तो हानि पहुँचाते ही हैं, उस व्यक्ति के स्वास्थ्य को भी हानि पहुँचाते हैं। मच्छरों के द्वारा उत्पन्न होने वाले रोगों का आक्रमण उन पर सहज ही हो जाता है। कई कीड़े-मकोड़े जहरीले होते हैं। इनके काटने से शारीरिक व्याधियाँ होती हैं। इस अनुसंधान से इस बात का स्पष्टीकरण भी हुआ कि श्वेत तथा गेरुए वस्त्र इन कीड़े-मकोड़ों तथा मच्छरों को आकर्षित नहीं करते। इन रंगों के प्रति वे उदासीन होते हैं। भारतीय संस्कृति में श्वेत तथा पीत वस्त्रों को प्रमुखता दी है तथा शोभाजनक माना है। भारतीय संस्कृति का आधार जो वैज्ञानिक तथ्य रहे हैं, उन्हें आज विस्मृत ही किया जा चुका है, पर उनकी महत्ता को अस्वीकार नहीं किया जा सकता है।

हमारे नवयुवक व नवयुवतियाँ आज जाने कैसे-कैसे चटकीले वस्त्रों से अपने आपको चित्र-विचित्र बनाए दे रहे हैं। जिन वस्त्रों में व्यक्तित्व की झलक नहीं मिलती, जिनके पीछे कोई कारण तथा वैज्ञानिक आधार नहीं, उन्हें यों ही फैशन के नाम पर अपना लेना दिमागी दिवालियापन दिखाने के अतिरिक्त और क्या हो सकता है। फैशन एक अँगरेजी शब्द है, जिसका हिंदी अर्थ 'सभ्य और शालीन वेशभूषा तथा रहन-सहन' होता है, परंतु इस शब्द की जन्मभूमि

इंग्लैंड में यह शब्द नाटक या रंगमंच पर काम करने वाले उन कलाकारों के लिए प्रयुक्त किया जाता था, जो नाटक में मसखरे का काम किया करते थे। उनकी वेशभूषा और विचित्र शृंगार तथा रूप ग्रहण करने की कला को फैशन समझा जाता था। बाद में इसका प्रयोग केवल शृंगार और साज-सज्जा के लिए ही किया जाने लगा। एक के बाद एक मंजिल तय करता हुआ, यह शब्द अब शरीर को लजाने, आकर्षक दिखाने की चेष्टा करने और केवल भड़कीले वस्त्र पहनने तक ही संकेत करता है, परंतु फैशन के रूप में शृंगार की जो विधा चल पड़ी है, वह इस शब्द के जन्मवृत की ओर अनायास ही ध्यान आकर्षित करती है और विचारशील व्यक्तियों को यह सोचने के लिए बाध्य करती है कि फैशन का अर्थ कहीं व्यक्ति को सचमुच नाटक का विचित्र पात्र बना देना ही तो नहीं है।

क्या शिक्षित और क्या अशिक्षित, क्या किशोर और क्या वयस्क, प्रौढ़ सभी में तेजी के साथ यूनीसैक्स की कला फैली है और लोगों ने इसे अपनाया है। इस तरह की वेशभूषा में आदमी और औरत में खास तौर से युवक और युवतियों में अंतर करना मुश्किल हो जाता है। यह फैशन पश्चिम में उठे नारी समानता की अंध-मान्यताओं से जन्मा है। नर और नारी की समानता एक मानने योग्य सिद्धांत है। सभ्यता ने इस दिशा में जो भूलें की हैं, उन्हें सुधारने की आवश्यकता है, परंतु वह अविवेकपूर्ण न होना चाहिए। नारी अपने मूल स्वभाव, गुणों और क्षमताओं को भूले नहीं। समानता की बात जहाँ तक विवेक सम्मत है, वहाँ तक तो मान्य है ही।

हमारे देश में जो भी ऊँचे दरजे के विद्वान और विचारक हुए हैं, वे भारतीय परिधान की महत्ता को समझने वाले और उसकी रक्षा करने वाले हुए हैं। इस विषय में ईश्वरचंद्र विद्यासागर का उदाहरण बड़ा अनुकरणीय है। वे बंगाल के शिक्षा विभाग में एक उच्च पद पर नियुक्त कर दिए गए थे, जिसके कारण उनको प्राय: बड़े अंगरेज अधिकारियों से मिलना-जुलना पड़ता था। एक बार

यह कायदा बना दिया गया कि गवर्नर के पास कोई देशी पोशाक में न जाए और वहाँ कोट-पैंट पहनकर जाना ही आवश्यक है। जब विद्यासागर जी को इस नियम की सूचना मिली तो वे गवर्नर साहब के पास पहुँचे और उनसे कहा-"मैं आज अंतिम बार आपके पास आया हूँ। अब मैं सरकारी नौकरी नहीं कर सकूँगा।" गवर्नर साहब ने इसका कारण पूछा तो उन्होंने स्पष्ट कह दिया कि मैं किसी भी दशा में अपनी स्वदेशी पोशाक को नहीं छोड़ सकता। गवर्नर साहब उनके जातीय स्वाभिमान को देखकर प्रसन्न हुए और आज्ञा दी कि यह नियम आप पर लागू नहीं होगा।

इसी प्रकार लोकमान्य तिलक चोटी के विद्वान और भारत के सर्वमान्य नेता होते हुए भी सदा महाराष्ट्रीय पोशाक धोती, पगड़ी आदि पहनने थे। विलायत जाने के अवसर पर भी उन्होंने इस नियम को नहीं छोड़ा। इसी प्रकार मदन मोहन मालवीय जी भारतीय पोशाक के परम भक्त थे। वे सदा बड़ी-बड़ी सरकारी काउंसिल और कमेटियों में नियत वस्त्रों में ही जाते थे। गाँधीजी की विशेषता तो जगत प्रसिद्ध है। उन्होंने भारतीय आदर्श का पालन करने के लिए लंगोटी और ओढ़ने के एक वस्त्र के अतिरिक्त सब कपड़ों का त्यागकर दिया था और विलायत में ब्रिटिश सम्राट के महल में निमंत्रित किए जाने पर भी उसी वेश में वहाँ गए। बादशाही महलों में पूरी पोशाक में ही जाने का नियम है और खुले पाँव रखकर वहाँ किसी भी व्यक्ति के प्रवेश करने का निषेध है, पर गाँधीजी के लिए इस नियम को एक विशेष आज्ञा द्वारा हटा दिया गया और वे लंगोटी पहनकर ही सम्राट से मिले।

रवीन्द्रनाथ टैगोर ने कहा है कि जब तक समाज आधुनिकता के संदर्भ में वेश-विन्यास को महत्त्व देता रहेगा, तब तक वह न तो सही अर्थों में आधुनिक बन पाएगा, न सभ्य कहलाने का अधिकारी होगा। हम प्रगतिशील हैं, इसका मापदंड समय के हिसाब से व्यक्तित्व में आई जागरूकता और सुसंस्कारिता होनी चाहिए, न

कि फैशन के नाम पर चलने वाले चित्र-विचित्र लिवासों का प्रदर्शन। यदि प्रगतिशीलता का प्रतीक अंग प्रदर्शन करने वाले छोटे और तंग वस्त्रों को मान लिया जाए, तो फिर यह कहना अत्युक्तिपूर्ण न होगा कि हम प्रतिगामिता के उस आदिम युग की ओर खिसकते चले जा रहे हैं, जहाँ से सर्वथा वस्त्रहीन स्थिति में मनुष्य का विकास हुआ था।

छात्र एवं युवा वर्ग के लिए अत्यंत उपयोगी साहित्य

१. इक्कीसवीं सदी का संविधान	१०.००
२. शिक्षा विद्या का सार्थक समन्वय	६.००
३. प्रज्ञा अभियान का योग व्यायाम	३.००
४. युग धर्म—पर्यावरण संरक्षण	१८.००
५. जनसंख्या विस्फोट एक चुनौती	६.००
६. इक्कीसवाँ जोड़ा (उपन्यास)	११.००
७. नैतिक शिक्षा भाग-१ व भाग-२ प्रत्येक	२०.००
८. वर्तमान चुनौतियाँ और युवा वर्ग	३.००
९. समग्र क्रांति हेतु युवाओं की तैयारी	५.००
१०. संकल्पशक्ति की प्रचंड प्रक्रिया	४.००
११. मन के हारे हार है मन के जीते जीत	६.००
१२. आगे बढ़ने की तैयारी	३.००
१३. प्रखर प्रतिभा की जननी इच्छाशक्ति	४.००
१४. जीवन लक्ष्य और उसकी प्राप्ति	३.००
१५. बाल निर्माण की कहानियाँ भाग १ से १६ तक प्रत्येक	६.००

महापुरुषों के प्रेरणाप्रद जीवन चरित्रों पर ६७ पुस्तकें प्रकाशित की गई हैं। प्रत्येक का मूल्य ३) रुपये है।

व्यसनों के पिशाच से बचें

व्यसनों से कोसों दूर रहें, क्योंकि वे प्राणघातक शत्रु हैं। इनमें मादक पदार्थ प्रधान होता है। तम्बाकू, चाय, गाँजा, चरस, भाँग, अफीम, शराब आदि नशीली चीजें एक-से-एक बढ़कर हानिकारक हैं। जैसे थके हुए घोड़े को चाबुक मारकर दौड़ाते हैं, परंतु अंत में उससे घोड़े की बची-खुची शक्ति भी नष्ट हो जाती है, उसी प्रकार नशा पीने से आंरभ में तो कुछ फुर्ती-सी दिखलाई पड़ती है, परंतु बाद में उससे रही-सही शक्ति भी जाती रहती है। मादक द्रव्य सेवन करने वाला व्यक्ति दिन-दिन क्षीण होते-होते अकाल मृत्यु के मुख में चला जाता है। व्यसन मित्र के रूप में हमारे शरीर में घुसते हैं और शत्रु बनकर उसे मार डालते हैं।

नशीले पदार्थों के अतिरिक्त और भी ऐसी आदतें हैं जो शरीर और मन को हानि पहुँचाती हैं, पर आकर्षण और आदत के कारण मनुष्य उनका गुलाम बन जाता है। सिनेमा, नाच-रंग, व्यभिचार, जुआ आदि कितनी ही हानिकारक और अप्रतिष्ठाजनक आदतों में लोग फँस जाते हैं और अपना धन, समय तथा स्वास्थ्य बरबाद कर डालते हैं।

ये दुर्व्यसन कुछ थोड़े-से व्यक्तियों के जीवन को ही नष्ट नहीं करते, वरन बड़े-बड़े देश, राष्ट्र, जन-समुदाय इनके कारण सर्वनाश के गड्ढे में गिर जाते हैं। जैसा भारतीय इतिहास के पाठक जानते हैं कि मुगल साम्राज्य का मूलोच्छेद शराबखोरी के कारण ही हुआ। इसी प्रकार चीन का राष्ट्रीय गौरव अफीमखोरी के कारण नष्ट हो गया। पुराने जमाने में भी मिश्र, यूनान और रोम के उन्नतिशील और

शक्तिशाली राष्ट्र मद्य के फंदे में फँसकर पतन के गर्त में गिर चुके हैं। हमारे प्राचीन इतिहास में यादवों का शक्तिशाली राज्य मद्यपान के व्यसन के कारण ही नष्ट हो गया और श्रीकृष्ण जैसे लोकोत्तर पुरुष भी उसकी रक्षा न कर सके।

इन दिनों नशेबाजी का प्रचलन दिनों-दिन बढ़ता जा रहा है। नशे अनेक प्रकार के हैं। भाँग, गाँजा, अफीम, चरस, शराब तो बहुत दिनों से प्रचलित हैं ही, अब हेरोइन, मारीजुआना, स्मैक नाम के अनेक प्रकार के रासायनिक नशे चल रहे हैं, जो अभ्यासी को कुछ ही दिनों में विक्षिप्त स्तर का बनाकर मौत के मुँह में धकेल देते हैं। बीड़ी, सिगरेट, गुटखा, चाय, काफी जैसे नशे भी अब दैनिक व्यवहार में सम्मिलित हो गए हैं। इनके कारण जनसमाज दिनों-दिन अधिक दुर्बल, रुग्ण, सनकी एवं अनगढ़ बनता चला जाता है।

नशेबाजी का प्रारंभ दूसरों की देखा-देखी चस्का चखने की दृष्टि से होता है। कुछ दिनों चार-दोस्तों के साथ चल पड़ता है, फिर बढ़ने लगता है। कुछ फुर्ती-चुस्ती जैसी भी लगती है, किंतु वे अनुभव वैसे ही होते हैं जैसे कि चिड़िया या मछली को जाल में फँसाने के लिए कुछ लालच दिखाया जाता है और बाद में उनका कचूमर निकला दिया जाता है। चूहे इसी प्रकार से लालच में पिंजड़े में फँसते हैं और दुर्गति कराते हैं।

नशे कुछ ही समय में आदत बन जाते हैं। नशे की वांछित मात्रा न मिलने पर बार-बार नशे की तलब उठती रहती है। न मिलने पर बेचैनी होती है। आदत सुधारने का मनोबल नहीं रहता। आदी व्यक्ति कुछ भी उपाय करके अपना व्यसन पूरा करनें का प्रयत्न करता है। एक ओर जीवनी शक्ति घटती जाने से काम-धंधा पूरी मात्रा में ठीक तरह नहीं हो पाता। अतएव आमदनी घटना स्वाभाविक ही है। दूसरी ओर नशे खरीदने के लिए अधिकाधिक पैसों की मांग बढ़ती जाती है। नशे भी बेशर्म होते हैं। नियत सीमा में रहकर संतुष्ट नहीं होते। उन्हें और अधिक मात्रा में लेने की

आवश्यकता अनुभव होती है। यह अधिकता बरबादी को और भी निकट घसीट लाती है।

नशेबाजों का स्वास्थ्य खराब होता है। बौद्धिक क्षमता घटती जाती है। काम करने की शक्ति कम होती जाती है। फलतः कर्ज लेने से लेकर घर का सामान बेचना और चोरी, उठाईगीरी, जालसाजी जैसे तरीके अपनाकर किसी प्रकार काम चलाते हैं और अपनी प्रतिष्ठा हर किसी की दृष्टि में गिरा लेते हैं। उनका न कोई सम्मान करता है और न कोई उन्हें सहयोग देता है। यह हानियाँ ऐसी हैं, जिन्हें सर्वनाशी ही कह सकते हैं। इनमें सबका सब प्रकार से अहित ही है। लाभ तो किसी का कुछ है ही नहीं।

नशेबाजी की तरह ही एक और दुर्व्यसन है–ठाठ–बाट का। अपने–आपको असाधारण सिद्ध करने के लिए कितने ही लोग अमीरी का ढोंग बनाते हैं। इस पर वे ढेरों पैसा खर्च करते हैं। तरह–तरह की डिजाइन के बहुमूल्य कपड़े, कीमती जेवर, सौंदर्य प्रसाधन तो इसी उद्देश्य के लिए अपनाए जाते हैं कि लोग उन्हें बड़ा अमीर मानें और समझें कि इनके पास इतना अंधा–धुंध पैसा है कि निरर्थक कार्यों में भी उसे आँख मूँदकर उड़ा सकते हैं। विवाह–शादियों में लोग अपनी नाक ऊँची रखने के लिए ही अंधा–धुंध खरच करते हैं। इन लोगों का मन दूसरों से अपने को बड़ा सिद्ध करने का होता है। उसी निमित्त फिजूलखरची उनका एक व्यसन बन जाता है। सस्ती वाहवाही लूटने के लिए वे ऐसे प्रपंच रचते और सरंजाम जुटाते हैं। इसमें ढेरों पैसा खरच होता है, समय लगता है। इतने पर भी वह उद्देश्य पूरा नहीं होता, जिसके लिए यह प्रपंच रचा गया था। लोग वास्तविकता समझ जाते हैं। जो प्रदर्शन में पैसा उड़ाते हैं, वे वस्तुतः अमीर नहीं होते। मात्र लबादा ओढ़ते हैं एवं मुखौटा लगाते हैं, जो समझदारों की दृष्टि में छिपा नहीं रहता। खरचीले व्यक्ति को मूर्ख या बेईमान समझा जाता है। जिस पैसे के अनेक सदुपयोग हो सकते हैं, उसे जो इस प्रकार

प्रदर्शनों में उड़ाता है, उसे अहंकारी, नासमझ या बेईमान स्तर का गिना जाता है। साम्यवादी हवा ने अब वास्तविक अमीरों के प्रति भी विरोधी वातावरण बना दिया है। फिर जो नकली अमीर हैं, वे तो उपहासास्पद ही बनते हैं। अच्छा हो 'सादा जीवन-उच्च विचार' की नीति अपनाई जाए। औसत नागरिक स्तर का निर्वाह किया जाए। बचत बैंक में भी जमा की जा सकती है, जिसमें उतने की ब्याज मिले। यह पैसा देश के विकास कार्यों में लगाकर सार्वजनिक समृद्धि बढ़ाए।

नशेबाजी ऐसी ही आदत है, जिसका किसी प्रकार समर्थन नहीं किया जा सकता है। उसे अपनाने में बड़े आदमियों द्वारा अपनाई गई शान-शौकत का अनुकरण ही मूल कारण होता है। स्वाद जैसी कोई बात भी उसमें नहीं होती है। समझने-समझाने का प्रयत्न किया जाए तो इन दिनों बहुप्रचलित मद्यपान की अनेकानेक हानियाँ गिनाई जा सकती हैं। पाचन तंत्र उनके कारण बुरी तरह क्षतिग्रस्त होता है, मानसिक कुशलता घटती है और कुकल्पनाएँ उस क्षेत्र में डेरा डालतीं और बुद्धिमत्ता का हरण करती हैं। पैसे की बरबादी प्रत्यक्ष है। कार्यक्षमता में कमी होती जाती है। नशेबाजों का सम्मान चला जाता है। उनकी प्रामाणिकता पर विश्वास नहीं रहता। दरिद्रता बढ़ती है और पारिवारिक कलह, असंतोष उत्पन्न करती है। बच्चे जो देखते हैं, सो सीखते हैं। नशेबाज आमतौर से दुर्गुणी और बुरी आदतों के आदी देखे गए हैं। आयुष्य घटता है, दुर्बलता और रुग्णता का शिकार रहना पड़ता है। ऐसी-ऐसी अनेक हानियाँ गिनाई जा सकती हैं। इतने पर भी लोग इस दुर्व्यसन को अपनाते और बढ़ाते ही जाते हैं।

इन हानियों को समझने-समझाने का प्रयास भी प्रायः निष्फल ही रहता है, क्योंकि प्रचलन का अनुकरण करने में जो कौतुक-कौतूहल का मजा आता है, वह मूर्खतापूर्ण होते हुए भी रुचिकर लगता है। तथाकथित बड़े लोगों में कुछ-न-कुछ अच्छाइयाँ भी

होती हैं, उन्हें कोई नहीं समझता, किंतु बुराइयों की नकल करते हुए समझा जाता है कि इस आधार पर हम भी बड़ों की बिरादरी में सम्मिलित हो सकेंगे। स्कूल-कालेजों के नवयुवक चुपके-चुपके इस कुटेब को अपनाने लगे हैं। वे यदि अपने को आरंभ में ही निकम्मा बना लेंगे तो बड़े होने पर क्या तो अपना भला कर सकेंगे और क्या समाज के काम आ सकेंगे?

चाय, कॉफी, सिगरेट, अफीम, कोकीन, स्मैक, हेरोइन आदि को तनाव या थकान मिटाने के लिए प्रयुक्त किया जाता है, पर देखा यह गया है कि यह नशीले पदार्थ मात्र उत्तेजना भर प्रदान करते हैं और थके घोड़ों में चाबुक लगाकर दौड़ाने जैसा छल करते हैं। पीछे जैसे ही उत्तेजक पदार्थ आदत में सम्मिलित हो जाते हैं, तब वे छोड़े नहीं छूटते और कालांतर में उनका प्रभाव भी कुछ कम प्राणघातक नहीं होता।

इंडियन कौंसिल ऑफ मेडिकल रिसर्च के पर्यवेक्षकों ने पाया है कि अपने देश में युवा पीढ़ी विभिन्न कारणों से नशीली दवाओं की ओर सर्वाधिक आकर्षित होती जा रही है। इसके शिकार लड़के-लड़कियाँ विशेष रूप से शहरों में पाए जाते हैं, जबकि छोटे शहरों, कस्बों में लोग सिगरेट, चरस, भाँग जैसे पदार्थों का सेवन करते हैं। व्यक्ति को शारीरिक, मानसिक, पारिवारिक, आर्थिक दृष्टि से दुर्बल बनाने वाले नशेबाजी के व्यसन का स्वच्छंद रूप से बढ़ते रहना अत्यंत घातक है। शारीरिक-मानसिक दृष्टि से दुर्बल मनुष्य उत्पादन क्या करेगा? पूँजी को दुष्प्रवृत्ति में खरच करके राष्ट्रीय संपदा को क्षति ही पहुँचाएगा। नशेबाजी के साथ-साथ अपराधों के समाचारों का बढ़ना नितांत स्वाभाविक है। शारीरिक और मानसिक विकारों की वृद्धि नशेबाजी के साथ अविच्छिन्न रूप से जुड़ी हुई है।

लोग एक-दूसरे की देखा-देखी इस दुर्व्यसन में लिप्त होते हैं और उसे शान, बड़प्पन, अमीरी या सभ्यता का चिह्न मानकर पीते

हैं। इस भ्रांत धारणा का उन्मूलन किया जाना चाहिए। कुमार्गगामिता शान की नहीं, निंदा की चीज है। ओछे लोगों ने उसे शान का चिह्न मान भी लिया हो तो भी हर विचारशील व्यक्ति का कर्त्तव्य है कि गुण-अवगुण की कसौटी पर परखकर ही किसी प्रचलन का अनुगमन करें। नशेबाजी हर दृष्टि से हानिकारक सिद्ध होती है। उसके सेवन में मूर्खता के अतिरिक्त और कुछ भी सार नहीं है। अपने पैरों कुल्हाड़ी मारने की उक्ति नशेबाजी के ऊपर शत-प्रतिशत घटती है।

समाज में यदि कोई व्यक्ति गंदगी फैलाता है, धूम्रपान करता है, शराब पीता है, नशीले पदार्थों का सेवन करता है, तो उसका दूसरों पर प्रभाव पड़े बिना नहीं रहता। उसकी गंदी आदतों को लोग शौक-शौक में सीख लेते हैं। कच्ची मनोभूमि के लोगों को बिगड़ते देर नहीं लगती। दुर्व्यसनी लोग जब यह दलील देते हैं कि वे शराब पीने, जुआ खेलने में स्वयं का पैसा खरच करते हैं, दूसरों को उन्हें रोकने का क्या हक है? तो उनकी यह दलील उसी प्रकार ठीक नहीं है, जैसे नाव में बैठने वाला व्यक्ति यदि यह कहे कि वह तो अपने स्थान पर जहाँ वह बैठा है, छेद करेगा। क्या उसके साथी उसे छेद करने देंगे? नहीं, क्योंकि वे जानते हैं कि यदि उसने छेद कर दिया तो पूरी नाव ही डूब जाएगी। इसी प्रकार समाज की नाव में दुर्व्यसनों के यदि छेद होते रहे तो क्या पड़ोसी देखते रहेंगे? यदि ऐसा हुआ तो पूरा समाज ही डूब जाएगा।

दुराचारियों के चंगुल में फँसकर बरबाद न होना पड़े, इसकी व्यवस्था स्वाध्याय और सत्संग से ही बनेगी। मनुष्य स्वयं यदि अपनी मान-मर्यादा, ज्ञान-गरिमा और आत्मगौरव के प्रति जागरूक रहता है, अपने जीवन का महत्त्व समझता है, तो दुर्व्यसनों से मुक्त रहना सरल होगा। उसे कुसंग भी प्रभावित नहीं कर सकेगा। अपने अंदर ज्ञान की ऊर्जा पैदा करें। समझ का स्तर ऊँचा करें। दुर्व्यसनों

से दूर रहें तो जीवन को सार्थक बनाने का अवसर मिलेगा। मन को कभी कमजोर न बनाएँ। कमजोर मन:स्थिति के व्यक्ति पर दुर्व्यसन हावी हो सकते हैं। ये दुर्व्यसन जीवन का अभिशाप हैं और दुर्व्यसनी समाज का कोढ़।

तम्बाकू : तम्बाकू का प्रचार इन दिनों बेहद बढ़ गया है। पुराने जमाने में इसे कभी-कभी औषधि के रूप में काम में लाया जाता था, पर इधर कुछ सौ वर्षों से इसने एक बहुत बड़े दुर्व्यसन का रूप धारण कर लिया है। बच्चे से लेकर वृद्धों तक बीड़ी, सिगरेट मुँह से लगाए देखे जाते हैं और स्त्रियाँ तक इससे नहीं बची हैं। इसके जहरीले धुएँ से मनुष्य निर्बल, आलसी, विलासी और उत्तेजक स्वभाव का बनता है। तम्बाकू का अधिक सेवन करने वालों को क्षय रोग, हृदय रोग, उदर रोग, नेत्रों की खराबी, नपुंसकता, पागलपन आदि तरह-तरह की बीमारियाँ उत्पन्न हो जाती हैं। विदेशों के बड़े-बड़े डॉक्टरों ने खोज करके बतलाया है कि महाभयानक 'केंसर' रोग का एक बड़ा कारण धूम्रपान ही होता है।

तम्बाकू में एक भयंकर विष पाया जाता है, जिसे 'निकोटिन' कहते हैं। यह मनुष्य पर धीरे-धीरे प्रभाव डालकर प्राणांत करता है। निकोटिन की एक बूँद खरगोश की त्वचा पर डालने से उसकी मृत्यु हो जाती है। चीन में आत्महत्या करने का यह एक सुगम साधन बन गया है। वहाँ लोग जीवन से तंग आकर हुक्के का सड़ा पानी पीकर आत्महत्या कर लेते हैं।

तम्बाकू का सबसे घातक प्रभाव हमारे रक्त पर पड़ता है। विषैले तत्त्व फेफड़े और हृदय तक पहुँचकर मनुष्य के रक्त को विकारमय, रोगी और निर्बल बना देते हैं। जब यह विषैला रक्त नलिकाओं में प्रवाहित होता है तो रोग धीरे-धीरे उस पर अपना अधिकार जमा लेते हैं।

सर्वप्रथम रोग क्षय या तपैदिक है। तपैदिक का कारण दूषित वायु है। सिगरेट, हुक्का या बीड़ी का दूषित धुआँ जब पुन:-पुन:

श्वासोच्छवास द्वारा अंदर पहुँचता है तो इसका विषैला प्रभाव हमारी जीवनी-शक्ति पर पड़ता है। अधिक धूम्रपान करने वाले के फेफड़े सड़ जाते हैं। तम्बाकू मस्तिष्क को निष्क्रिय करता है। हृदय रोग तम्बाकू की विशेष देन है। इसका विष हमारे फेफड़ों और हृदय पर आक्रमण किया करता है। तम्बाकू के विष के प्रभाव से हृदय की आवरणात्मक त्वचा सुन्न पड़ जाती है और हृदय की गति को विषम बना देती है। तम्बाकू के विष से न केवल फेंफड़े, हृदय या मस्तिष्क, प्रत्युत नेत्रों को भी हानि पहुँचती है। तम्बाकू कामोद्दीपक पदार्थ है, इससे मनुष्य व्यभिचार, अशिष्टता, अनीति की ओर प्रवृत्त होता है। तम्बाकू पीने से चरित्रहीनता आती है। तम्बाकू से दाँत खराब होकर उनका रंग पीला और मटमैला हो जाता है। इस प्रकार तम्बाकू मनुष्य के स्वाभाविक स्वास्थ्य को नष्ट करके शरीर में तरह-तरह के विकार उत्पन्न कर देती है। यह मनुष्य के शरीर के लिए एक विजातीय द्रव्य है, इसलिए शरीर इसे किसी भी दशा में अपने भीतर नहीं रख सकता और इसी से तम्बाकू खाने वालों को जगह-जगह थूकते रहने की घृणित आदत पड़ जाती है। पीने वाले धुआँ निकालते हैं और सूँघने वाले झींकते हैं।

'सिगरेट' शब्द की परिभाषा करते हुए डॉ० जॉनसन ने अपने शब्दकोश में लिखा है-"सिगरेट कागज में लिपटे हुए तम्बाकू की एक नली आकार की ढाई या तीन इंच लंबी एक वस्तु है, जिसके एक सिरे पर धुआँ होता है तथा दूसरे सिरे पर होता है, एक बेवकूफ आदमी।"

बड़ी हैरानी है कि आज के युग में हर मान्यता और सिद्धांत को विज्ञान की कसौटी पर कसकर ही ग्रहण करने वाली सभ्य पीढ़ी स्वास्थ्य के लिए सिगरेट के हानिकारक परिणाम को जानकर भी इसे छोड़ती नहीं। दो-चार व्यक्ति ही ऐसा कर रहे हों, यह बात नहीं है, वरन सिगरेट-धूम्रपान जिस गति से आधुनिक सभ्यता का प्रतीक चिह्न बनता जा रहा है, उसे देखते हुए कहना

पड़ता है कि आज के बौद्धिक युग में भी धूम्रपान को सभ्यता का अंग मानकर अपनाने वाले लोग जो पूरी बौद्धिकता का दारोमदार अपने कंधों पर मानते हैं, कहीं बौद्धिक दृष्टि से दिवालिया तो नहीं हो गए।

वैज्ञानिक शोधों से यहाँ तक पता लगाया जा चुका है कि धूम्रपान करना तो दूर रहा, धूम्रपान न करने वाले, पर साथ रहने वाले व्यक्ति भी सिगरेट, बीड़ी के धुएँ से होने वाले हानिकारक परिणामों से नहीं बच पाते हैं। हाल ही में लंदन के तीन डाक्टरों ने इस संबंध में अनेक परीक्षण किए हैं। इसके लिए उन्होंने बीस ऐसे व्यक्तियों को लिया जिनमें से दस तो सिगरेट पीते थे और दस नहीं पीते थे। उन्हें एक ऐसे कमरे में रखा गया था, जहाँ काफी मात्रा में सिगरेट का धुआँ भरा हुआ था। दोनों तरह के लोगों का रक्त परीक्षण तुलनात्मक अध्ययन प्रयोग के पहले और प्रयोग के बाद किया गया। प्रयोग के बाद वाले परीक्षण में यह पाया गया है कि बीसों ही व्यक्तियों के रक्त में कार्बन मोनोक्साइड की मात्रा बढ़ गई थी और धूम्रपान करने वालों की तुलना में धूम्रपान न करने वालों को सिगरेट के धुएँ ने अधिक प्रभावित किया था।

धूम्रपान के कारण अनिवार्य रूप से खून में कार्बन मोनोक्साइड की मात्रा बढ़ जाती है। कैंसर और क्षय रोग की संभावना धूम्रपान करने वालों में अधिक रहती है। कारण यह है कि सिगरेट का धुआँ फेफड़ों को प्रभावित करता है। फेफड़ों पर जैसे ही कोई विषैला प्रभाव हुआ, क्षय रोग घेर लेता है और इधर रक्त में कार्बन-मोनोक्साइड का बढ़ना, कैंसर का डर पैदा करता है, क्योंकि अधिक प्रतिशत में बढ़ा वह तत्त्व रक्त की ऑक्सीजन धारण करने की क्षमता कम कर देता है। इससे हृदय और श्वसन तंत्र पर भी काफी दबाव पड़ता है। हृदय को फेफड़ों तक रक्त पहुँचाने के लिए अधिक कार्य करना पड़ता है, फलस्वरूप हृदय दौर्बल्य, फेफड़ों में केंसर और अन्यान्य इसी प्रकार के असाध्य रोग उत्पन्न होते हैं।

धूम्रपान की अधिकता अल्सर रोग का भी कारण बनती है। अधिक मात्रा में बीड़ी-सिगरेट का सेवन करने वालों में आँखों के लैंस में निकोटिन जमा होने लगती है और धीरे-धीरे खराबी आने लगती है, जो अंततः अंधत्व के रूप में फलती है। जान-बूझकर यह विष अपने अंदर जाने देने में कौन-सी समझदारी है, यह समझ में नहीं आता।

मदिरा अथवा शराब : मदिरा सेवन करने वालों की दलील है कि भोजन के साथ थोड़ी-सी शराब ले लेने से पाचन क्रिया भलीभाँति हो जाती है। स्थूल दृष्टि से अवश्य ऐसा प्रतीत होता है कि भोजन खूब पच रहा है। खुलकर झूठी भूख लगने लगती है। इसका कारण यह होता है कि मदिरा में एल्कोहल होता है, जोकि भोजन को गला देता है, किंतु उसकी प्रतिक्रिया आँतों पर भी होती है। भीतर-ही-भीतर आँतें भी गलती रहती हैं और शरीर की पाचन प्रणाली की दशा इतनी बिगड़ जाती है कि शराबी आदमी अनेक उदर संबंधी रोगों से ग्रसित होकर काल-कवलित हो जाता है।

कुछ व्यक्तियों की यह गलत धारणा है कि शराब से शक्ति प्राप्त होती है। शराब उत्तेजक मात्र है। पीने के कुछ काल तक इससे हमारी पूर्व संचित शक्ति एकत्रित होकर उद्दीप्त मात्र होती है, नई शक्ति नहीं आती। यह शक्ति उत्पन्न करने के स्थान पर, नशे के बाद मनुष्य को निर्बल, निस्तेज और निकम्मा बना जाती है। आदत पड़ने पर इसकी उत्तेजना के बिना कार्य में तबियत नहीं लगती। गरीब भारत का इतना रुपया इसमें व्यय हो जाता है कि पौष्टिक भोजन, दूध, फल इत्यादि के लिए कुछ शेष नहीं बचता। अतः मन से यह भ्रमात्मक धारणा निकाल देनी चाहिए कि शराब विचार शक्ति के विकास में सहायक है। इसके विपरीत शराब से उलटे मनुष्य की रचनात्मक शक्तियाँ जैसे-कल्पना, भावना, विचार दृढ़ता, निश्चय, काव्य प्रतिभा, मानसिक संतुलन, विवेक, तर्क शक्ति का ह्रास होता है।

पान : नित्य बाजारों, गलियों और रेलवे स्टेशनों पर बढ़ती हुई पान की आदत देखी जा सकती है। आधुनिक युग में पान का व्यसन उत्तरोत्तर वृद्धि पर है। इसका प्रयोग प्रायः हानिकर है, यह लोग जानते ही नहीं। आधुनिक सभ्यता ने इसे कुछ ऐसा अपना लिया है कि इसमें अशिष्टता, हानि या अश्लीलता नहीं समझी जाती।

पान वासना उद्दीप्त करने वाला उत्तेजक मिश्रण है। मध्य युग में वेश्याएँ विशेष रूप से पान का उपयोग करती थीं। वेश्या, मदिरा और पान इन तीनों का संग है। मध्य युग में वेश्याओं और कामुकता को विशेष प्रोत्साहन मिलने से पान की लोकप्रियता बढ़ी। मुगल बादशाह और नबाव पान के आदी ही नहीं बन गए थे, वरन यह व्यसन इतनी बढ़ती पर था कि उसके बिना उनका जीवन दूभर हो गया था। पानदान और वेश्याएँ उनके साथ युद्ध में भी रहती थीं।

आजकल पान का प्रचार इतना बढ़ गया है कि साधारण व्यक्ति दो-चार पान खा ही लेता है। पान का रासायनिक विश्लेषण करने पर इसमें पियोरीन, पियारिडीन, ऐरेकोलीन, एमीलीन, मरक्यूरिक एलमीन, पियरोपेटीन इत्यादि विष-तत्त्व विद्यमान रहते हैं। स्थान वैभिन्य के साथ-साथ पान के रासायनिक तत्त्व भी परिवर्तित होते रहते हैं। जैसे मद्रासी पान में पियरोपेटीन नामक विष की मात्रा अधिक है। बंगला पान सबसे अधिक विषयुक्त समझा जाता है।

पियरोपेटीन नामक विष हृदय गति को शिथिल तथा निष्क्रिय बनाने वाला होता है। विषों के प्रभाव से मस्तिष्क अशांत रहने लगता है। नींद का लोप हो जाता है। पान से कामेंद्रियाँ उत्तेजित रहती हैं तथा मन विषय-वासनामय गंदे विचारों से परिपूर्ण रहता है।

अधिक पान खाने से भूख कम होती जाती है। सौ में से नब्बे या इससे भी अधिक के दाँत गिरने का कारण उनका पान का बहुत अधिक व्यवहार ही है। पान के रेशे, सुपाड़ी के बारीक टुकड़े और चूना जाकर दाँतों के बीच में फँस जाता है। समय पाकर ये इतने

अधिक हो जाते हैं कि दाँतों पर जोर डालकर उनके बीच संधि को बढ़ा देते हैं। इनको हटाने के लिए जीभ सदा दाँतों के बीच में लगी रहती है। कुछ समय पश्चात मसूड़ों में सूजन हो जाती है और उनके भीतर पीव उत्पन्न हो जाता है। दाँतों में असह्य पीड़ा होती है और कुछ समय पश्चात जब उनकी जड़ की नसें आदि भलीभाँति नष्ट हो जाती हैं, तो वे गिर पड़ते हैं। पान का व्यसन दाँतों का अंत कर देता है।

पान खाना अशिष्टता, ओछेपन तथा कामोत्तेजक स्वभाव का द्योतक है। पान की दुकान पर खड़े होकर पान खाना असभ्य, वासनाप्रिय, दिखावटी, अस्थिरता, लोलुपता को स्पष्ट करता है। मनुष्य का पतन प्रायः पान से ही प्रारंभ होता है। वह इसे साधारण-सा व्यसन मानकर हँसी-हँसी में आरंभ करता है, किंतु धीरे-धीरे यह आदत का एक अंग बन जाता है। तंबाकू खाने की तबियत करती है, फिर सिगरेट प्रारंभ होती है, अंत में मदिरा और व्यभिचार तक पहुँच जाती है। अतः चतुर व्यक्ति को इस व्यसन से दूर ही रहना चाहिए। सुपाड़ी का भी शौक बुरा है। इससे खुश्की रहती है, दाँतों पर अनावश्यक बोझ पड़ता है, कुछ चबाए बिना मन नहीं मानता, मन एकाग्र नहीं हो पाता और चंचलता बढ़ती रहती है।

चाय : चाय एवं काफी सभ्य समाज में पनपने वाले मादक पदार्थ हैं। सभ्य जगत ने और नशीली चीजों की तरह इन्हें भी अपना लिया है। वास्तव में दोनों जीवनी शक्ति का ह्रास करती हैं। इनके प्रयोग से शरीर से निकलने वाले कारबोलिक ऐसिड का परिमाण बढ़ जाता है।

प्रथम हानि पाचन शक्ति का ह्रास है। बदहजमी, भूख की कमी, अपच में चाय बड़ी सहायक होती है। सर विलियम रॉबर्ट लिखते हैं-"थोड़ी मात्रा में भी चाय और काफी का सेवन करने से हमारे शरीर के पाचक रस कमजोर हो जाते हैं, जिससे अन्न के पौष्टिक तत्त्वों के सत्वों को हमारा शरीर नहीं खींच सकता, दूसरे

शब्दों में यही अग्निमांद्य अथवा अजीर्ण होता है। दाँतों के रोगों में वृद्धि का एक कारण गरम-गरम चाय का व्यवहार भी है।''

चाय क्षणिक उत्तेजना देती है। उत्तेजना समाप्त होने के पश्चात मनुष्यों को स्वाभाविक शक्ति कम लगने लगती है। यह शक्ति बढ़ाती नहीं, पुरानी शक्ति को क्षण भर के लिए उत्तेजित मात्र कर देती है। चाय से सिर में दरद बना रहता है। लोगों में यह भ्रांतिमूलक धारणा बैठ गई है कि चाय से भोजन हजम हो जाता है। वास्तव में इससे उलटे पाचन क्रिया में व्यवधान उपस्थित हो जाता है। दिल की धड़कन की शिकायत बढ़ जाती है और अंग भारी रहते हैं।

चाय में दो प्रकार के विषैले पदार्थों का अस्तित्व है। (१) टेनिन (२) कैफीन। चाय पीते समय हम जो कसैला-कसैला स्वाद अनुभव करते हैं, वह टेनिन है तथा शरीर के लिए हानिकर है। यह चमड़े का तनाव बढ़ा देता है। जब यह मानव शरीर के भीतर प्रविष्ट होता है तो आमाशय की झिल्ली को अनुचित तनाव की स्थिति में ला देता है। इससे आमाशय में भोजन का परिपाक सहज में नहीं होता। न इसका पोषण झिल्ली कर सकती है। कैफीन एक प्रकार का उत्तेजक है, जो मस्तिष्क को उत्तेजित करता है। चाय का पेपीन नामक विष भी टेनिन जैसा ही दूषित है।

शारीरिक हानि के विचार से शराब और चाय एक ही प्रकार के हैं। अंतर केवल महँगी और सस्ती का है। शराब मदहोश बनाकर अल्पकाल के लिए दुःख हरती है, किंतु चाय उत्तेजना देती और नींद हरती है। अमूल्य जीवन तथा शरीर के स्वास्थ्य को नष्ट करने में यह शराब से कम नहीं है, क्योंकि वह उससे सस्ती है और इसका प्रचार स्थान-स्थान पर है। इससे क्षुधा नष्ट हो जाती है तथा चाय के अतिरिक्त और किसी प्रकार की इच्छा नहीं रह जाती। हृदय की गति निर्बल पड़ जाती है। इसके बिना मन खिन्न चिड़चिड़ा और मस्तिष्क कार्य रहित-सा रहता है।

विशेषज्ञों का कहना है कि "चाय का कैफीन कब्ज उत्पन्न करता है। कैफीन विष दिल की धड़कन को बढ़ा देता है और कभी-कभी तो दिल की धड़कन इतनी बढ़ जाती है कि आदमी मर तक जाता है। इससे गठिया आदि वात रोग भी उत्पन्न हो जाते हैं। गुर्दे पर इसका ऐसा बुरा प्रभाव पड़ता है कि बहुमूत्र की शिकायत शुरू हो जाती है। चक्कर आना, आवाज बदल जाना, रक्त विकार, लकवा हो जाना, मूर्च्छा आ जाना, नींद का कम हो जाना आदि ऐसे दुष्ट रोग है जो चाय में रहने वाले साइनोजेन, स्ट्रिनाइन, साइनाईड आदि विषों के कारण उत्पन्न होते हैं।"

चाय के प्रचार में हमारी दिखावटी अंधानुकरण करने की दूषित मनोवृत्ति ने विशेष योग प्रदान किया है। ठंढे मुल्कों के लिए चाय आवश्यक हो सकती है, किंतु भारत जैसे गरम देश के लिए यह हानिकारक ही है।

भाँग, गाँजा और चरस : भाँग और गाँजा भारत के ग्रामों में फैले हुए महारोग हैं, जो निरंतर भयंकर विनाश कर रहे हैं। स्मरण रखिए भाँग, गाँजा, चरस इत्यादि भयंकर विषैले पदार्थ हैं। इनमें प्रवृत्त होने से मानव की वृत्तियाँ पापमय हो जाती हैं। मन उत्तेजना एवं विकारों से परिपूर्ण हो जाता है। सुश्रुत ने इन्हें कफ और खाँसीवर्द्धक बताया है। भाँग का पौधा विषैला है, जिससे भाँग, गाँजा, चरस तीनों नशीले पदार्थ तैयार होते हैं। सुश्रुत ने भाँग या गाँजे के पौधे का स्थावर विषों में उल्लेख किया है और इसकी जड़ को विष माना है।

कुछ चिकित्सकों के अनुसार इन मादक वस्तुओं के प्रयोग से शक्ति क्षीण होती है, नेत्र का रंग सुर्ख पड़ जाता है और सिर में चक्कर आने लगते हैं। भाँग पीकर मदहोश हो जाते हैं और भोजन अधिक खाते हैं, किंतु यह तो एक प्रकार की अस्वाभाविक क्षुधा होती है। नशा उतरने पर अपच, पेट का भारीपन, उलटी और पेट के अन्य विकार उत्पन्न होते हैं। गाँजा पीने वालों के दिमाग बहुत

जल्दी बिगड़ जाते हैं। भाँग पीने वालों की चित्त की स्थिरता जाती रहती है और उचित-अनुचित का विवेक नहीं रहता। भँगड़ी व्यक्ति सनकी होता है। उसके मन में जैसे ही एक बात उठती है, वह वैसे ही उसे कर बैठता है। ये व्यर्थ के व्यय मनुष्य को पनपने नहीं देते। गरीब की अधिकतर आय इन्हीं अनावश्यक मादक वस्तुओं में नष्ट हुआ करती है। भाँग, गाँजा, चरस इत्यादि से मनुष्य की वासना उद्दीप्त होती है और वह व्यभिचार में प्रवृत्त होता है। ऐसा व्यक्ति व्यापार, उद्यम, कलाकौशल या किसी उत्तरदायित्व पूर्ण कार्य के करने योग्य नहीं रह जाता।

अफीम : शराब, तंबाकू, पान आदि की भाँति अफीम भी प्रचलित व्यसन है। इसका नशा घातक है और तनिक-सी अधिक मात्रा में लेने से मृत्यु का भय है। भारत में बच्चों तक को अफीम दी जाती है। थकावट तथा जाड़े को भगाने के लिए भी उसका उपयोग किया जाता है। किसी बीमारी को रोकने या भगाने के लिए लोग अफीम का सेवन करते हैं और अनेक केवल व्यसन के लिए खाया करते हैं।

थकावट और जाड़ों से मुक्ति के लिए इसका प्रयोग करना मूर्खता है, क्योंकि इससे कहीं स्वास्थ्यकर वस्तुएँ इसके लिए उपलब्ध हो सकती हैं। क्षण भर नशे में हम यह भूले रह सकते हैं कि हम थके हुए नहीं हैं, किंतु अफीम का नशा उतरने पर और भी निर्बलता एवं आलस्य धर दबाता है। न दरद, न थकान, न जाड़ा कोई भी हटते नहीं, वरन यह नशा रोग या थकान के लक्षणों को ढक देता है।

पैटन के अनुसार अफीमची को (१) कब्ज, (२) रक्त की न्यूनता, (३) भूख कम लगना, (४) हृदय, फेफड़े एवं गुर्दों के रोग, (५) स्नायुजन्य कमजोरी, (६) फुर्तीलेपन का अभाव, (७) आलस्य, निद्रा में कमी, चित्त भ्रम, दिवा स्वप्न, (८) नैतिक भावना की कमजोरी (९) कठोर कार्यों से भागना, (१०) अविश्वास और शारीरिक निर्बलता उत्पन्न होते हैं।

मानसिक क्षेत्र में, अफीम के प्रयोग से ज्ञानात्मक शक्तियाँ निर्बल होती हैं। विशेषत: स्मरण शक्ति बिगड़ जाती है। स्नायु और ज्ञानतंतुओं में रोग लग जाते हैं। कुटेब पड़ जाने से यदि नियमित समय पर अफीम प्राप्त न हो तो किसी भी कार्य में तबियत नहीं लगती, हाथ-पाँव बेजान से पड़े रहते हैं, क्योंकि अफीम उनकी स्वाभाविक शक्ति को पहले ही नष्ट कर डालती है। अफीम की आदत धीरे-धीरे मनुष्य के शरीर और आत्मा को भी खा जाती है। जिन स्थानों में अफीम खाने या पीने की आदत है, वहाँ का संपूर्ण पुरुष वर्ग निकम्मा हो जाता है।

अश्लील विचार, चरित्रहीनता, सिनेमा एवं दूरदर्शन : आखिर शरीर में रोग क्यों न बढ़ें? इस प्रश्न का विश्लेषण करते हुए आचार्य विनोबा भावे लिखते हैं, ''शहर के लोग ठीक व्यायाम नहीं करते। घरों में बैठे रहते हैं। उनको अच्छी हवा नहीं मिलती। अधिक कपड़े पहनते हैं, जिससे सूर्य की किरणों से वंचित रहते हैं। घर भी ऐसा बनाते हैं, जिसमें प्रकृति से दूर रहना पड़ता है, काम भी ऐसा जिसमें कुदरत से कोई प्रयोजन नहीं। रात को जागेंगे, सिनेमा देखेंगे, खराब किताबें पढ़ेंगे। इस प्रकार अपने शरीर और मन को विकृत करते रहते हैं, तो रोग बढ़ेगा ही।''

अश्लील और गंदा विषय-भोग संबंधी साहित्य वैसा ही घातक है, जैसा भले चंगे व्यक्ति के लिए विष। नई उमर में जब मनुष्य को जीवन और जगत का अनुभव नहीं होता, वह अश्लीलता की ओर प्रवृत्त रहता है। यौवन के उन्माद की आँधी में गंदा साहित्य सोई हुई काम-वृत्तियों को कच्ची आयु में उद्दीप्त कर देता है। आज जिधर देखो उधर उत्तेजक चित्र, वासना संबंधी प्रेम की कहानियाँ, अश्लील उपन्यास, विज्ञापन इत्यादि छप रहे हैं। सिनेमा, दूरदर्शन और इंटरनेट ने तो गजब का अंधेर मचा रखा है।

गंदा साहित्य नीति और धर्म का शत्रु है। यह पशुत्व की अभिवृद्धि करता है। समाज में इससे आध्यात्मिकता का लेशमात्र

भी न रहने पाएगा। आवश्यकता इस बात की है कि जनता को इस गंदे साहित्य की दुष्टताओं, रोमांस की गंदी करतूतों, मानसिक व्यभिचार की त्रुटियों के प्रति सावधान कर दिया जाए।

माता-पिता-शिक्षक का पुनीत कर्त्तव्य है कि वे अपने बच्चे को स्वस्थ, सात्विक, आध्यात्मिक शक्ति, बल, पौरुष, सद्‌गुणों को विकसित करने वाला साहित्य पढ़ने के लिए दें। यदि आप स्वयं युवक हैं तो मन पर कड़ा नियंत्रण रखें, अन्यथा पतन की कोई मर्यादा नहीं है। वासना की ओर लालची नेत्रों से देखने वाला किसी-न-किसी दिन व्यभिचारी बनेगा और मान-प्रतिष्ठा का क्षय करेगा। अपने आपको ऐसी पुस्तकों के वातावरण में रखिए जिससे आपकी सर्वोच्च शक्तियों के विकास में सहायता प्राप्त हो। श्रम-संकल्प दृढ़ हो, व्यायाम, दीर्घायु, पौरुष, कीर्ति, भजन-पूजन, आध्यात्मिक या सांसारिक उन्नति होती रहे। खाली मन शैतान की दुकान है। मन को कोई विषय ऐसा चाहिए, जिस पर वह चिंतन, मनन, विचार इत्यादि शक्तियाँ एकाग्र कर सके। उसे चिंतन के लिए आपको कोई-न-कोई श्रेष्ठ विषय देना होगा।

बड़े-बड़े शहरों में व्यभिचार के अड्डे पनप रहे हैं, जहाँ देश के नवयुवक यौवन, तेज, स्वास्थ्य और पौरुष नष्ट कर रहे हैं। समाज में ऐसे व्यक्तियों की कमी नहीं, जो व्यभिचार को प्रोत्साहन देते हैं या स्वयं ऐजेंट का निंदनीय कार्य करते रहते हैं। व्यभिचार मनुष्य के द्वारा किया हुआ सबसे घिनौना पाप कर्म है, जिसकी सजा हमें इसी जन्म में मिल जाती है। दुराचार से होने वाले रोगों की संख्या अधिक है। इस प्रकार कुकर्म, प्रायः चोरी, भय, लज्जा और पाप की झिझक के साथ किया जाता है। बाहर के स्त्री-पुरुषों से यौन संबंध स्थापित करने के पाप-प्रपंच उसके मन में उठा करते हैं। ये पाप-वृत्तियाँ कुछ समय लगातार अभ्यास में आते रहने पर मनुष्य के मन में गहरी उतर जाती हैं और जड़ जमा लेती है।

व्यभिचार की पापपूर्ण वृत्तियाँ मन में जम जाने से अंत:करण कलुषित हो जाता है। मनुष्य की प्रतिष्ठा एवं विश्वसनीयता स्वयं अपनी ही नजरों में कम हो जाती है तथा प्रत्येक क्षेत्र में सच्ची मैत्री या सहयोग भावना का अभाव मिलता है। ये सब बातें नरक की दारुण यातना के समान कष्टकर हैं।

पाठको! व्यभिचार की ओर आकर्षित मत होना। यह जितना ही लुभावना है, उतना ही दु:खदायी है। अग्नि की तरह यह सुनहरा-सुनहरा चमकता है, पर जरा-सी भूल से यह विनाश करने लगता है। इस सर्वनाश के मार्ग पर मत चलना, क्योंकि इसकी ओर जिसने भी कदम बढ़ाया है, उसे भारी रोग और विपत्ति का सामना करते हुए हाथ मल-मलकर पछताना पड़ा है। व्यभिचार सबसे बड़ा विश्वासघात है, क्योंकि किसी स्त्री के समीप तुम तभी पहुँच पाते हो, जब उसके घर वाले तुम्हारा विश्वास करते हैं। ऐसा कौन है, जो किसी अपरिचित को गृह में निधड़क पदार्पण करा सके और उससे मनचाही बातचीत करे। अत: पाप से डरो और संसार तथा अपनी लोकलाज-मर्यादा का ध्यान रखो। क्या व्यभिचार से उत्पन्न होने वाले छल, घृणा, बदनामी, कलंक, रोगों से तुम्हें तनिक भी भय नहीं?

सद्गृहस्थ वह है, जो पड़ोस की स्त्री के रूप में अपनी पुत्री या माता की छाया देखता है। धीर वह है जो पराई स्त्री को पाप की दृष्टि से नहीं देखता। स्वर्ग के वैभव का अधिकारी वह है जो स्त्रियों को माता, बहिन और पुत्री समझता हुआ उनके चरणों में प्रणाम करता है। व्यभिचार जैसे घृणित पाप से सावधान! सावधन!!

आज की दुनिया में शराब, गाँजा, सिगरेट, पान इत्यादि तो गजब ढा ही रहे हैं, किंतु उससे भी भयंकर समस्या मानसिक और नैतिक चरित्र हीनता की है। नशा पीकर बुद्धि विकार ग्रस्त होती है तथा मनुष्य मानसिक व्यभिचार में प्रवृत्त होता है। वासनामूलक कल्पनाओं के वायुमंडल में फँसा रहने से प्रत्यक्ष व्यभिचार की

ओर दुष्प्रवृत्ति होती है। व्यभिचार एक ऐसी सामाजिक बुराई है, जिससे मनुष्य का शारीरिक, सामाजिक और नैतिक पतन होता है। परिवारों का धन, संपदा, स्वास्थ्य नष्ट हो जाते हैं, बड़े-बड़े राष्ट्र विस्मृति के गर्त में डूब जाते हैं। विभिन्न रूपों में फैलकर व्यभिचार की महाव्याधि हमारे नागरिकों, समाज, गृहस्थ एवं राष्ट्रीय जीवन का अधःपतन कर रही है। इसके परिणामों का उल्लेख करते हुए हृदय काँप जाता है।

आज की पत्र-पत्रिकाओं, समाचार पत्रों में छपने वाले विज्ञापनों को देखिए। आज के समाज का आइना आपके समक्ष आ जाएगा। नामर्दी, नपुंसकता, वीर्यपात, स्वप्नदोष, गर्भपात, स्तंभन वृद्धि, बर्थ कंट्रोल के साधन, नग्न तस्वीरें, सौंदर्य वृद्धि, सिनेमा संबंधी अनेक प्रकार के दूषित विज्ञापन पतनोन्मुख-समाज का खाका हमारे सामने प्रस्तुत कर रहे हैं।

सभ्यता के आवरण में जिस मनोरंजन ने सबसे अधिक कामुकता, अनैतिकता, व्यभिचार की अभिवृद्धि की है, वह है दूरदर्शन तथा हमारे मन में गंदे विचारों को उत्तेजित करने वाली फिल्म, उनकी अर्द्धनग्न तस्वीरें और गंदे गाने। अमेरिकन फिल्मों के अनुकरण पर हमारे यहाँ ऐसे चित्रों की सृष्टि बृहत् संख्या में हो रही है, जिनमें चुंबन, आलिंगन आदि कुचेष्टाओं एवं उत्तेजक गीतों, प्रेम संबंधी वार्तालाप की भरमार है। दूरदर्शन द्वारा गंदे संगीत से कामुकता का प्रचार हम सहन कर लेते हैं और घर-घर में बच्चे-बूढ़े, युवक-युवतियाँ गंदे गीत माता-पिताओं के सामने सुनते रहते हैं। फिल्म संगीत इतने निम्नस्तर का होता है कि उसके उद्धरण देना भी महापाप है। जहाँ बालकों को रामायण, गीता, तुलसी, सूर, कबीर, नानक के सुरुचिपूर्ण भजन याद होने चाहिए, वहाँ हमें यह देखकर नतमस्तक होना पड़ता है कि अबोध बालक वेश्याओं के गंदे-अश्लील गाने स्वच्छंदतापूर्वक गाते फिरते हैं। न कोई उन्हें रोकता है और न उन्हें मना करता है। ज्यों-ज्यों यौवन की उत्ताल

तरंगें उनके हृदय में उठती हैं, इन गीतों तथा फिल्मों के गंदे स्थलों की कुत्सित कल्पनाएँ उन्हें अनावश्यक रूप से उत्तेजित कर देती हैं। वे व्यभिचार की ओर प्रवृत्त होते हैं, समाज में व्यभिचार फैलाते हैं, गंदे अनैतिक प्रेम संबंध स्थापित करते हैं। गलियों में लगे हुए चित्र, लिखी हुई अश्लील गालियाँ, कुत्सित प्रदर्शन, स्त्रियों को कामुकता की दृष्टि से देखना प्रत्यक्ष विष तुल्य है। उगती पीढ़ी के लिए यह कामांधता खतरनाक है। बचपन के गंदे-दूषित संस्कार हमारे जीवन को कामुक और चरित्रहीन बना देंगे।

फिल्मों से लोगों ने चोरी की नई-नई कलाएँ सीखी, डाके डालने सीखे, शराब पीना सीखा, निर्लज्जता सीखी और भीषण व्यभिचार सीखा। फिल्मों के कारण हमारे युवक-युवतियों में किस प्रकार स्वेच्छाचार बढ़ रहा है, इसके कई सच्चे उदाहरण हमारे सामने हैं। लाखों-करोड़ों तरुण-तरुणियों पर इसका जहरीला असर हुआ है। फिर भी हम इसे मनोरंजन मानते हैं। मनोरंजन वह है, जिससे मन प्रसन्न होता है, हँसी आती है, आनंद मिलता है। मनोरंजन का प्रभाव स्थायी रूप से मन पर नहीं होता है। थोड़ी देर में ही हम उसे भूल जाते हैं। सिनेमा व दूरदर्शन इसलिए मनोरंजन नहीं हैं, क्योंकि इसके गंदे गाने, अश्लील नृत्य एवं मनोविकृति पैदा करने वाले कथानक का स्थायी प्रभाव हमारे मन पर पड़ता है। दूरदर्शन के सीरियल देखकर बच्चे उनके कलाकारों की नकल करते हैं और छत से कूद पड़ते हैं। मार-पीट, लड़ाई, खून-खच्चर, हत्या, लूटपाट, अपहरण, बलात्कार के दृश्यों का बालकों के मन पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है। वे भयभीत, कायर और क्षीण मनोबल वाले हो जाते हैं। देश की भावी पीढ़ी साहस, शौर्य एवं वीरता से हीन होती जा रही है। जहाँ बालकों को देशभक्ति, वीरता, नैतिकता, चरित्रबल बढ़ाने वाले सीरियल दिखाए जा सकते थे, वहाँ राष्ट्र के भविष्य को गर्त में ले जाने वाले सीरियल राष्ट्र द्रोही कहे जा सकते हैं। समाज के इस पाप को दूर करना चाहिए अन्यथा

अनैतिकता, व्यभिचार, स्वच्छंदता तमाम सामाजिक मर्यादाओं का अतिक्रमण कर देगी। बालकों, किशोरों एवं युवाओं को चाहिए कि वे मात्र स्वस्थ मनोरंजन वाले सीरियल देखें अथवा ऐसे सीरियल देखें, जिनसे ज्ञान की प्राप्ति होती हो। मनोरंजन और ज्ञान प्राप्त करना ही दूरदर्शन देखने का उद्देश्य होना चाहिए। पारिवारिक सीरियलों के नाम पर कुत्सित मानसिकता फैलाने वाले विकृत कथानकों से युक्त सीरियल किसी को भी नहीं देखने चाहिए।

इन दिनों शहरों में साइबर कैफे कुकरमुत्तों की भाँति खुलते जा रहे हैं, जहाँ युवा छात्र-छात्राएँ कॉलेज जाने की अपेक्षा इनमें चले जाते हैं और वहाँ अश्लील फिल्मों से व्यभिचारपूर्ण आचरण करके नैतिकता को नष्ट किए दे रहे हैं। युवा वर्ग को इस विष से स्वयं को बचाकर रखना चाहिए।

जीवन का अर्थ है–'समय'। जो जीवन से प्यार करते हों, वे आलस्य में समय न गँवाएँ।

सच्चे मित्र बनें-बनाएँ

सच्ची मित्रता कैसी हुआ करती है, इस संबंध में संस्कृत के नीतिशास्त्र की एक प्रसिद्ध पंक्ति है कि ''राजद्वारे च श्मशाने यो तिष्ठति सः बान्धवः'' अर्थात राजद्वार और श्मशान घाट में जो साथ-साथ कंधे-से-कंधा मिलाकर साथ खड़ा होता है, वही सच्चा मित्र हुआ करता है। यहाँ राजद्वार वास्तव में सुख-संपत्ति का प्रतीक है और श्मशान विपत्ति का। केवल सुख-संपत्ति के दिनों में मौजमस्ती करके दुःख-विपत्ति पड़ने पर आँखें चुराकर मुँह फेर लेने वाले मित्रता के नाम पर कलंक हैं।

मित्रता तो विशुद्ध हृदय की अभिव्यक्ति है। उसमें छल-कपट या मोह-भावना नहीं। जिसके हृदय में मैत्री-भावना विराजमान रहती है, उसके हृदय में प्रेम, सहानुभूति, दया, करुणा आदि दैवी गुणों का विकास होता रहता है। जिसने मैत्री भावनाएँ प्राप्त कर लीं उसके लिए संसार परिवार हो गया। स्वामी रामतीर्थ अमेरिका की यात्रा कर रहे थे। उनके पास अपने शरीर और उस पर पड़े हुए थोड़े से वस्त्रों के अतिरिक्त कुछ भी नहीं था। किसी सज्जन ने उनसे पूछा-आपका अमेरिका में कोई संबंधी नहीं है, आपके पास धन भी नहीं है, वहाँ किस तरह निर्वाह करेंगे। रामतीर्थ ने आगंतुक की ओर देखकर कहा-मेरा एक मित्र है। वह कौन है? उस व्यक्ति ने पूछा। आप हैं वो मित्र, जिनके यहाँ मुझे सारी सुविधाएँ मिल जाएँगी और सचमुच रामतीर्थ की वाणी और उनकी आत्मीयता का कुछ ऐसा प्रभाव पड़ा कि व्यक्ति स्वामी रामतीर्थ का घनिष्ठ मित्र बन गया। मित्रता

की चाह प्रत्येक मनुष्य को होती है, पर वह ठहरती उन्हीं के पास है, जिनका हृदय शुद्ध होता है। जिसे सच्ची मैत्री उपलब्ध हुई, उसे सौभाग्यशाली ही कहेंगे। अमेरिका के किसी पत्रकार ने धन-कुबेर हेनरी फोर्ड से पूछा-क्या आपके जीवन में ऐसी भी वस्तु है, जिसे आप प्राप्त न कर सके हों? हेनरी फोर्ड ने उत्तर दिया-यदि मुझे अपना जीवन फिर से शुरू करना पड़े तो मैं मित्रों की तलाश करूँगा। मेरे धन ने मुझे मित्रों से नहीं मिलने दिया। धन या कोई और वस्तु देकर मैत्री खरीदी नहीं जा सकती। मनुष्य के गुण देखकर वह स्वयं मिल जाती है।

मनुष्यों के लिए एकाकी जीवन बहुत कठिन है। सामान्य स्तर के व्यक्ति के लिए मित्रों की आवश्यकता रहेगी। उनके बिना वह अपने मन का भार हलका न कर सकेगा। दुःख दूसरों के सहारे बिना बहुत भारी पड़ता है। मित्रता व्यक्ति-समाज की व्यवस्था एवं प्रगति के लिए एक आवश्यक तत्त्व है। एकाकीपन के कष्ट से बचने के लिए, जीवन-व्यापार में सहयोग देने के लिए, सुख-दुःख में अभिन्न साथ के लिए मनुष्य को मित्रों, दोस्तों तथा साथियों की आवश्यकता रहती है। मित्रता के लिए एक महत्त्वपूर्ण गुण है-हृदय की विशालता, उदारता और महानता। इसके कारण विपत्ति और गरीबी में भी मनुष्य को मित्रों की कमी नहीं रहती। हृदय की इस विकसित अवस्था में जंगल में भी मित्र मिल जाते हैं। पशु-पक्षी भी मित्र बन जाते हैं।

प्रसिद्ध दार्शनिक सिसरो ने लिखा है-इस संसार में मित्रता से अधिक कुछ भी मूल्यवान नहीं है मनुष्य के लिए। महात्मा गाँधी के शब्दों में सच्चे मित्र मिल जाना मनुष्य के लिए दैवी वरदान है। मित्रता जितनी बहुमूल्य है, उतना ही इसे पैदा करना, स्थिर रखना, सदा-सदा कायम रखना भी कठिन है। मित्रता को स्थिर रखने के लिए एक-दूसरे के व्यक्तिगत, स्वाभाविक दोषों को गौण समझना पड़ेगा अन्यथा दोष-दर्शन, आपसी छींटाकसी, आरोप-

प्रत्यारोप से तो मित्रता की मूर्ति ही टूट-फूट जाएगी। मित्रता को स्थिर रखने का पूर्ण आधार है, मित्र के सद्‌गुणों की खोज करना, उन्हें प्रोत्साहन देना और सबसे महत्त्वपूर्ण आवश्यकता है, सहिष्णुता और उदारता की।

अंग्रेजी की एक प्रसिद्ध कहावत है–A friend in need is a friend indeed अर्थात मुसीबत के समय काम आने वाला, साथ निभाने वाला व्यक्ति ही वास्तविक मित्र या आदर्श साथी हुआ करता है। इस से स्पष्ट है कि आदर्श मित्र और मित्रता को परखने वाली वास्तविक कसौटी मुसीबत या आपातकाल ही हुआ करती है। इस संबंध में रहीम का दोहा विशेष रूप से उल्लेखनीय है–

सुख संपदा में सगे, बनत बहुत बहु रीति।
विपति कसौटी जे कसे , ते ही साँचे मीत॥

मित्रता के संबंध में दूसरी महत्त्वपूर्ण बात है कि एक-दूसरे के मतभेदों को मैत्री संबंधों के बीच उत्पन्न न होने दिया जाए। मैत्री संबंधों में परस्पर का व्यवहार-बरताव इतना खुला हुआ होना चाहिए कि किसी को भी एक-दूसरे पर शंका न हो सके। मित्रता दो व्यक्तियों का हार्दिक संगम है। उनका आंतरिक जीवन अत्यंत नजदीक होता है तो उससे प्रेरित बाह्य जीवन भी। सच्चे और आत्मीय मित्रों का पाना वास्तव में सच्ची संपत्ति है। हजारों-लाखों मेल-मुलाकातियों में आदर्श मित्र तो कोई एक-आध ही हो सकता है। शेष सभी तो मात्र दुनियादारी निभाने वाले ही हुआ करते हैं।

आज के प्रतिकूल युग में मनुष्य को मित्रों से सदा सावधान रहना चाहिए। किसी अनुभवी ने ठीक ही कहा है–हे परमात्मा! मुझे मित्रों से बचा, शत्रुओं से मैं अपनी रक्षा आप कर लूँगा। आज का मित्र मित्रता के रूप में शत्रुता का व्यवहार करता है। शत्रु से अपनी रक्षा कर लेना सरल है, किंतु मित्र वेश में छिपे हुए शत्रु से रक्षा करना कठिन है। कोई भी बेचारा भावुक एवं भोला व्यक्ति उनके इंद्रजाल में फँसकर मारा जाता है।

आज की दुनिया में जहाँ हर चीज नकली होती जा रही है, मित्र भी नकली होने लगे हैं। इसलिए मित्रता स्थापित करने में लोगों को आवेगपूर्ण भावुकता से काम नहीं लेना चाहिए। जहाँ तक हो कम-से-कम मित्र बनाएँ। उन्हें अच्छी प्रकार से समझ-परख लें। मित्र बनाने में एक सीमा से ज्यादा उदारता बरतना, अपने चारों ओर छद्मवेश में छिपे हुए शोषकों तथा शत्रुओं को इकट्ठा करना है।

अनेक चालाक लोग अपना मतलब बनाने के लिए संपन्न, सुशील, भावुक तथा उदारमना व्यक्तियों के मित्र बन जाया करते हैं। अपना वक्त काटने तथा मनोरंजन करने के लिए उनके पास जा पहुँचते हैं। ऐसे लोग भी होते हैं, जो मित्र बनकर निर्व्यसनी व्यक्तियों को व्यसनी बना डालते हैं और इस प्रकार भोले-भावुक व्यक्तियों को न जाने कितनी चारित्रिक तथा आर्थिक हानि पहुँचाया करते हैं। जीवन में मित्रों का होना अनिवार्यता है, किंतु इससे भी बड़ी आवश्यकता इस बात की है कि किसी से मित्रता स्थापित करने में अधिक-से-अधिक सावधानी तथा सतर्कता रखी जाए। शत्रु की घात एक बार विफल हो सकती है, किंतु आस्तीन के साँप बने मित्र की घात कभी विफल नहीं होती। इस पवित्र तथा हार्दिक संबंध के लिए वे ही व्यक्ति उपयुक्त माने जा सकते हैं, जो स्वभावतः सज्जन हों।

युवको! हमें अपने को भी इसी स्तर का बनाना चाहिए कि जो हमसे मित्रता करे, उसे अपने सौभाग्य की सराहना करनी पड़े। सज्जनता और शालीनता ही सच्ची मित्रता का प्रयोजन पूरा करती है। इसलिए मैत्री का आनंद एवं लाभ लेने अथवा देने वाले व्यक्ति में इन श्रेष्ठताओं का होना अनिवार्य रूप से आवश्यक है।

पारिवारिकता, सामाजिकता एवं राष्ट्रीयता

व्यक्ति और समाज के बीच की कड़ी परिवार है। परिवार वह खदान है, जिसके सही होने पर उसमें से नर-रत्न निकल सकते हैं और देश को हर दृष्टि से गौरवान्वित कर सकते हैं। समाज का विशाल स्वरूप परिवार की छोटी-छोटी इकाइयों का समूह ही है।

परिवार एक छोटा समाज एवं राष्ट्र है। उसकी सुव्यवस्था एवं शालीनता उतनी ही महत्त्वपूर्ण है, जितनी बड़े रूप में संपूर्ण समाज की। परिवार को आत्मविस्तार की छोटी किंतु सशक्त प्रयोगशाला माना जा सकता है। इस छोटे कुटुंब से स्नेह, सद्भाव, सहकार, आत्मीयता का प्रारंभिक पाठ पढ़कर मनुष्य विश्व-कुटुंब की ओर बढ़ता है। इस छोटी प्रयोगशाला में उपर्युक्त सारे गुणों का विकास कर मनुष्य आत्मोन्नति के मार्ग की ओर अग्रसर होता है। यह एक ऐसी पाठशाला है, जिसमें उसके प्रत्येक सदस्य को कर्त्तव्यों एवं सामाजिक उत्तरदायित्वों को समझने और निबाहने की शिक्षा मिलती है।

हमें अपने परिवार में सुव्यवस्था रखने में पूरी-पूरी दिलचस्पी रखनी चाहिए और यथासंभव स्वयं समय देना चाहिए। हर व्यक्ति और हर वस्तु स्वच्छ रहे, प्रत्येक सामान यथास्थान साफ-सुथरा और कायदे से रखा होना चाहिए, टूट-फूट सुधारने, मरम्मत करने एवं रंगाई-पुताई, सुसज्जा की कला घर के सब वयस्कों को आनी चाहिए और छोटे-छोटे कामों में बच्चों का सहयोग लेना चाहिए।

दिनचर्या बनाकर घर के काम निपटाए जाएँ। घर के किसी छोटे-बड़े सदस्य पर श्रम का अनावश्यक दबाव न पड़े। छोटे बच्चों को खासकर जब वे अपनी छात्रावस्था में हों, उन्हें स्कूल-कॉलेज

की पढ़ाई के साथ सद्गुणी और स्वावलंबी बना देना ही अभिभावकों का कर्त्तव्य है।

जो परिवार त्याग, उदारता, सहयोग एवं स्नेह के आधार पर एक ही मत, एक ही भावना की डोरी से मजबूती के साथ बँधे रहते हैं और जिनमें अनुशासन, शिष्टाचार, सदाचार, नियम एवं मर्यादाओं का यथोचित पालन किया जाता है, उनमें सभी सदस्य सुख-शांति के साथ अपने उद्देश्यों को पूरा कर सकने का अवसर पा सकते हैं। जिन परिवारों में दिन-रात कलह-क्लेश और स्वार्थपूर्ण हाय-तोबा मची रहती है, वे स्वभावतः पतन की ओर जाएँगे ही। परिवार में सद्ज्ञान की अभिवृद्धि की आवश्यकता पूरी की जानी चाहिए। परिजनों को कूप-मंडूक नहीं रहने देना चाहिए। घर में आस्तिकता का वातावरण रहना चाहिए। यहाँ एक देवस्थान अवश्य हो, जहाँ सभी सदसय नमन-वंदन करें।

घर के सदस्य अपने-अपने कामों में ही व्यस्त न रहें, वरन एक-दूसरे को सुनने-समझने तथा सहयोग देने की स्थिति में भी रहें, ऐसी परंपराएँ पुनः प्रचलित करनी चाहिए। अधिक पढ़े कम पढ़ों को पढ़ाएँ। साथ खेलें, साथ टहलें। जिसे जो आता हो, वे दूसरों को सिखाएँ, भोजन साथ-साथ करें, बीमारी सुख-दुःख में एक-दूसरे का पूरा ध्यान रखें। शिष्ट संबोधन हो, मतभेद और विरोध संघर्ष के अवसर आने पर भी शिष्टाचार का उल्लंघन न होने दिया जाए। अपव्यय किसी को न करने दिया जाए, स्वास्थ्य एवं शिक्षा के लिए चाहे जितना खरच करो, किंतु विलासिता, ऐय्याशी और शान-शौकत के नाम पर फिजूलखरची न हो। विचार स्वतंत्रता का सम्मान किया जाए, न किसी पर अवांछनीय प्रतिबंध लगे और न कोई उद्धत उच्छृंखलता बरते, तभी परिवार में सुसंतुलन रह सकता है।

परिवार को एक सहयोगी-समिति के रूप में विकसित करना चाहिए। बड़े-बूढ़े भी खाली बैठना अपना अधिकार एवं सम्मान न

समझें, वरन सामर्थ्यभर श्रम करते हुए परिवार के विकास में समुचित योगदान करें। उत्तराधिकार में प्रचुर संपदा छोड़ मरना, अपने बच्चों का पतन-हनन करना है। उन्हें सुयोग्य स्वावलंबी बनाया जाए और अपने परिश्रम की कमाई पर गुजारा करने पर स्वाभिमान अनुभव करने दिया जाए।

सामाजिकता

मनुष्य सामाजिक प्राणी है। समाज के सहयोग से ही व्यक्तियों को सुखी-समुन्नत बनने का अवसर मिलता है। एकाकी उन्नति अपनी ही क्यों न कर ली जाए, विकृत परिस्थितियों में घिरे समाज में रहकर कोई भी सुख-चैन से नहीं रह सकता। हमें अपने को समाज रूपी घड़ी का एक पुरजा भर मानना चाहिए और ध्यान रखना चाहिए कि अपनी गतिविधियाँ ऐसी रखें, जिसमें घड़ी की गतिशीलता ठीक बनी रहे। इसके लिए हमें सामाजिक मर्यादाओं और नागरिक कर्त्तव्यों का सतर्कतापूर्वक पालन करना चाहिए।

दूसरों के साथ वही व्यवहार किया जाए, जो हम दूसरों से अपने प्रति किए जाने की अपेक्षा करते हैं। इस कसौटी पर जो भी कार्य खरे उतरें, उन्हें नैतिक एवं सामाजिक कहा जा सकता है। हमें किसी के नागरिक अधिकारों का हनन नहीं करना चाहिए। शोषण, दबाव, छल की नीति किसी के प्रति भी न अपनाई जानी चाहिए। अनैतिक और असामाजिक कार्यों के विरोध से संगठित चेतना उत्पन्न की जानी चाहिए।

प्रचलित अनैतिकताओं, कुरीतियों एवं मूढ़ मान्यताओं को निरस्त करने के लिए आंदोलन करते रहा जाए। मताधिकार का प्रयोग बहुत सोच-समझकर मात्र उपयुक्त व्यक्तियों के पक्ष में ही किया जाए। यह चेतना लोकतंत्र के हर मतदाता में पैदा की जानी चाहिए। शिष्टाचार, सद्व्यवहार, मनुजता, सामूहिकता और नागरिकता की प्रवृत्तियाँ सभ्य समाज के प्रत्येक सदस्य को अपनानी चाहिए।

व्यक्तिवाद के प्रति उपेक्षा और समूहवाद के प्रति निष्ठा रखने वाले व्यक्तियों का समाज ही समुन्नत होता है और उसके सदस्य सुखी रह सकते हैं। व्यक्ति को समाज के प्रति अपने दायित्वों, कर्त्तव्यों तथा निजी व्यक्तित्व के स्तर को भी साधना-सँभारना चाहिए। व्यक्ति न तो अकेला रह सकता है और न उसका स्वतंत्र कोई व्यक्तित्व ही हो सकता है। समाज में रहना और समाज में रहकर अपना तथा समाज का विकास करना ही उसकी नियति है और समाज में रहते हुए ही उसका व्यक्तित्व गठित होता है।

स्मरण रखा जाना चाहिए कि स्वास्थ्य, शिक्षा, धन, पद, मनोरंजन की जो भी सुविधाएँ हमें उपलब्ध हैं, उसके लिए हम समाज के ऋणी हैं। समाज का सहयोग यदि न मिला होता तो एकांगी रहकर इन विभूतियों को प्राप्त कर सकना कदाचित संभव नहीं होता। इस दशा में प्रत्येक व्यक्ति का यह कर्त्तव्य हो जाता है कि दूसरों ने, समाज ने उसके विकास में जो सहयोग दिया है, उसका बदला चुकाने के लिए समाजनिष्ठा का विकास करें।

निरंतर स्वार्थ और लालच की संकीर्णताओं में रहते हुए यदि अमीरी और संपन्नता प्राप्त कर भी ली जाती है तो अहितकारी ही सिद्ध होती है। उससे व्यक्तिगत जीवन में अशांति और सामाजिक जीवन में अस्तव्यस्तता के परिणाम ही पनपते देखे जाते हैं। अतएव आवश्यक है कि अपने साथ रहने वाले स्वजनों के प्रति कर्त्तव्यों का निर्वाह करते हुए समाज के प्रति भी कौटुंबिकता की भावना जगाई जाए और संकीर्णता के दायरे से बाहर निकला जाए।

राष्ट्रीयता

कर्त्तव्य धर्मों में तीन प्रमुख माने गए हैं-वैयक्तिक धर्म, समाज धर्म और राष्ट्र धर्म। वैयक्तिक धर्म व्यक्ति की सुख-सुविधा और विकास हेतु होता है। समाज धर्म में व्यक्ति और समाज की प्रगति की बात सोची जाती है, जबकि राष्ट्र धर्म में व्यक्ति, समाज और राष्ट्र तीनों की उन्नति निहित होती है। अत:

सिर्फ एक राष्ट्र धर्म के पालन से शेष दोनों धर्मों का निर्वाह स्वत: होता रहता है। इसलिए तीनों धर्मों में राष्ट्र धर्म को सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण माना गया है। अस्तु, तन, मन, धन, श्रम, साधन, व्यवसाय, विचार, कला, विज्ञान और धर्म-अध्यात्म के प्रसार द्वारा राष्ट्र की सेवा करना, उसकी सुख-शांति और समृद्धि-प्रगति बढ़ाने का निष्ठापूर्वक प्रयास करना, यह राष्ट्र धर्म है। इसे आज का सबसे बड़ा धर्म कहा गया है।

मनुष्य जिस राष्ट्रभूमि की गोद में पलता, बढ़ता, विकास करता है, जिसकी संस्कृति से जीवन को सभ्य-सुसंस्कृत बनाता है, जन्म से लेकर मृत्युपर्यंत जिसके अनेकानेक उपकारों अनुदानों से अनुग्रहीत होता व प्रगति करता है, उस राष्ट्र के प्रति हमारा भी कर्त्तव्य होता है कि उसके उन्नयन-विकास की बात सोचें और ऐसी रीति-नीति अपनाएँ जिसमें सबका हित समाहित हो, तभी हम सच्चे अर्थों में राष्ट्र के उस ऋण से उऋण हो सकते हैं, जो जीवनभर हम पर लदते रहते हैं। ऋण किसी प्रकार का हो, उसे चुकाने में ही कृतज्ञता मानी जाय।

मातृभूमि को जननी के समतुल्य माना गया है। जिस दो के हम नागरिक हैं, जिस धरती ने हमें जन्म दिया, साधन-सुविधाएँ दीं और मनुष्य कहलाने योग्य बनाया, वह भूमि निश्चय ही ''माँ'' कहलाने योग्य है, तभी तो अपने देश को हम ''भारतमाता'' कहकर पुकारते हैं। माँ की मदद यदि शिशु को आरंभ में न मिले, तो क्या वह जीवित रह पाएगा? कदचित रह भी जाए, तो वह अनगढ़ और असभ्य होगा। यही बात मातृभूमि के संबंध में भी कही जा सकती है। मनुष्य जिस देश का नागरिक होता है, वहीं उसे प्रथम शिक्षा मिलती है। उसके निर्माण, प्रगति, समृद्धि में उस राष्ट्र की ही साधन-संपदा काम आती है और उसी से वह एक सुयोग्य नागरिक बन पाता है। इस दृष्टि से देखा जाए तो जननी और जन्मभूमि को एक ही श्रेणी में रखते हुए उन्हें स्वर्ग से भी महान बताया गया है,

क्योंकि स्वर्ग में तो सिर्फ आनंद लाभ की प्राप्ति होती है, जबकि माँ और मातृभूमि के समीप रहना स्वयं में आनंददायक तो होता ही है, वह सुयोग्य संतान और नागरिक भी गढ़ती हैं।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि जिन कार्यों से युग-धर्म का निर्वाह होता हो, देश प्रगतिशील बनता हो, समाज में एकता-समता, स्नेह, प्रेम की आधारशिला खड़ी होती हो, उन सबको राष्ट्रधर्म माना गया है। हर व्यक्ति को ऐसे कार्यों में संलग्न होकर सेवा धर्म का निर्वाह और राष्ट्रधर्म का परिपालन करना चाहिए। इसे आपत्तिकाल का सबसे बड़ा पुण्य-परमार्थ माना गया है। कमाने, खाने और उलझनों को सुलझाने में लोग पूरी जिंदगी ही समाप्त कर देते हैं। ऐसे अवसर किन्हीं विरलों के ही जीवन में आते हैं, जिनमें जीवन की सार्थकता का सौभाग्य प्राप्त होता हो। मौत हर किसी की आती है, देर-सबेर में सभी को मरना पड़ता है, पर लोक और परलोक को प्रशस्त करने वाली, यश को अमर बनाने वाली, कर्त्तव्य पालन के आदर्श संसार के सामने उपस्थित करने वाली मौत किसी भाग्यवान को ही मिलती है। जिनके नाम शहीदों की स्वर्णिम पंक्तियों में इतिहासकारों ने लिखे हैं, उन्हें पढ़ते समय हर भावनाशील अंत:करण में ये विचार उठते हैं कि काश, हमें भी ऐसा अवसर मिला होता, तो मनुष्य शरीर धारण करना धन्य हो जाता।

सदियों की गुलामी की जंजीरों को तोड़कर हम स्वतंत्र हुए हैं। स्वतंत्रता का लाभ तभी है, जब हम प्रत्येक दिशा में विकास की समुचित व्यवस्था जुटाएँ। प्रसन्नता की बात है कि उस दिशा में कुछ प्रयत्न हो भी रहे हैं। आवश्यकता इसी बात की है कि औद्योगिक विकास से खूब अच्छी-अच्छी वस्तुओं के उत्पादन की व्यवस्था होने लगे, कृषि में विकास हो, उपज बढ़े, स्वास्थ्य और आरोग्य के साधन बढ़ें, वैज्ञानिक शोधों में हिस्सा लें। साथ ही एक बात इनसे भी आवश्यक है और वह है-राष्ट्र के चरित्र उत्थान की। भौतिक समृद्धि के साथ नैतिकता का अवगाहन न किया गया,

तो वह स्थिति हमारे लिए विनाश का कारण बन सकती है। व्यक्ति-व्यक्ति से ही समाज बनता है। जिस समाज के लोग परिश्रमी, ईमानदार, सत्यनिष्ठ एवं आदर्शप्रिय होंगे, वह अपने आप उत्तरोत्तर उन्नत होता चला जाएगा और राष्ट्र के विकास का वातावरण निखरता हुआ चला जाएगा। ''समाज एवं राष्ट्र के हित में व्यक्ति का हित भी सुरक्षित है'' समाज शास्त्र का यह सिद्धांत शत-प्रतिशत सही है। उतना ही सच यह भी है कि व्यक्तिगत स्वार्थों के समक्ष सामूहिक एवं राष्ट्रीय हितों को बलि देने वाले समाज का अधःपतन सुनिश्चित है। ऐसा राष्ट्र, समाज जहाँ सहानुभूति से पूर्ण हृदयों की गंगा बह रही हो, वहाँ का मानव जीवन कभी बंजर नहीं हो सकता। प्रेम और दया के उच्चस्तरीय वातावरण में राष्ट्र फलते-फूलते हैं। हमारे लिए तो वह समय इतिहास है। भारत का अतीत सौजन्यता, दया और प्रेम की प्रतिकृति रहा है। इसी से वहाँ का राष्ट्रीय जीवन भी खुशहाल रहा है। आज की परिस्थितियों में उन शक्तियों का अवतरण पुनः संभाव्य है, जो पहले थी और विकास तथा विश्व शांति के लिए अब जिनकी सर्वोच्च आवश्यकता है।

दूसरों के साथ वह व्यवहार न करें, जो तुम्हें अपने लिए पसंद नहीं।

प्रतिभा संवर्द्धन हेतु निर्धारित

विज्ञान सम्मत प्रयोग-उपचार

प्रतिभा का आशय सदैव आदर्शोन्मुख बुद्धि व भावना के समन्वित विकास से लिया जाना चाहिए। ऐसे प्रतिभा-संपन्न ही स्वयं को प्रेरणा पुंज आदर्शों के प्रतीक रूप में उभारते एवं स्वयं को ही नहीं, समय को भी निहाल करते हैं। यहाँ चरचा इसी प्रतिभा के विकास से संबंधित उपचारों की चल रही है।

क्या ऐसा भी संभव है कि बालकों को लिखने की पट्टी पर मनके सरकाकर गिनती सिखाने अथवा तीन पहिए की गाड़ी का सहारा लेकर चलना सिखाने की तरह, किन्हीं अभ्यासों के माध्यम से जनसाधारण को भी प्रतिभा संपादित करने की दिशा में अग्रसर किया जा सके? उत्तर "हाँ" में भी दिया जा सकता है। जनसामान्य शारीरिक अंग-अवयवों की पुष्टाई के लिए अखाड़े जाने की विधि व्यवस्था बताते हैं। अखाड़ों में निर्धारित अभ्यासों को अपनाना, शारीरिक अंगों को सशक्त बनाने के लिए व्यायामों का उपक्रम एवं आहार में परिवर्तन अभीष्ट माना जाता है। ऐसे ही कतिपय साधना उपक्रम प्रतिभा-परिष्कार के संदर्भ में भी निर्धारित हैं और वे बहुत हद तक सफल होते भी देखे गए हैं। ऐसे कुछ आधारों का, जिनका ब्रह्मवर्चस की शोध प्रक्रिया में प्रयोग किया जाता है अथवा जिन्हें वर्तमान या संशोधित रूप में प्रयुक्त किए जाने की संभावना है, उनका उल्लेख यहाँ किया जा रहा है।

(१) स्वसंकेत (ऑटोसजेशन) : शांत वातावरण में स्थिर शरीर और एकाग्र मन से बैठा जाए। भावना की जाए कि अपने मस्तिष्क केंद्र से निःसृत प्राण विद्युत का समुच्चय शरीर के अंग-अवयवों में अपेक्षाकृत अधिक मात्रा में प्रवाहित हो रहा है। शिथिलता का स्थान समर्थ सक्रियता ग्रहण कर रही है। उस आधार पर प्रत्येक अवयव पुष्ट हो रहा है। इंद्रियों की क्षमता का अभिवर्द्धन हो रहा है। चेहरे पर चमक बढ़ रही है। बौद्धिक स्तर में ऐसा उभार आ रहा है, जिसका अनुभव प्रतिभा परिवर्द्धन के रूप में अपने को तथा दूसरों को हो सके।

वस्तुतः स्वसंकेतों में ही मानसिक कायाकल्प का मर्म छिपा पड़ा है। श्रुति की मान्यता है–**''यो यच्छ्रद्धः स एव सः''** अर्थात जो जैसा सोचता और अपने संबंध में भावना करता है, वह वैसा ही बन जाता है। **''ईशानः वधं यवय''** अर्थात जो जैसा सोचता और करता है, वह वैसा ही बन जाता है। विधेयात्मक चिंतन, महापुरुषों के गुण अपने अंदर समावेश होने की भावना से, सजातीय विचार खिंचते चले आते हैं व वांछित विद्युत प्रवाहों को जन्म देने लगते हैं।

एक प्रकार से स्व-संकेतों द्वारा अपने आभामंडल को एक सशक्त चुंबक में परिणत किया जाता है। मनोवैज्ञानिक कहते हैं– ''थिंक एण्ड ग्रो रिच'' अथवा ''एडाप्ट पाजिटिव ट्रूडे''। आशय यह है कि सोचिए, विधेयात्मक सोचिए एवं अभी इसी क्षण सोचिए, ताकि आप स्वयं को श्रेष्ठ बना सकें। सारे महामानव स्व-संकेतों से ही महान बने हैं। गाँधीजी ने हरिश्चंद्र के नाटक को देखकर स्वयं को संकेत दिया कि सत्य के प्रयोगों को जीवन में उतारो व उसके परिणाम देखो। उनकी प्रगति में इस चिंतन की कितनी महान भूमिका थी, यह सभी जानते हैं। स्व-संकेत साधना के विषय में विस्तार से जानने के लिए आगे नए लेख में पढ़िए।

(२) दर्पण-साधना : यह मूलतः आत्मावलोकन की, आत्मपरिष्कार की साधना है। बड़े आकार के दर्पण को सामने

रखकर बैठा जाए। सुखासन में जमीन पर या कुरसी पर बैठा जा सकता है। खुले शरीर के प्रत्येक भाग पर विश्वास भरी दृष्टि से अवलोकन किया जाए। पहले अपने आपके बारे में चिंतन करें, अंत: के दोष-दुर्गुणों से मुक्त होते रहने की भावना की जाए। वह परम सत्ता बड़ी दयालु है। भूत को भुलाकर अब यह अनुभूति की जाए कि भीतरी संरचना में प्राण विद्युत शक्ति ही छाई हुई है। विकास क्रम में उभार आ रहा है। प्रतिभा परिवर्द्धन के लक्षण निश्चित रूप में दीख पड़ रहे हैं एवं सामने बैठी आकृति में अपना अस्तित्व पूर्णत: विलीन हो रहा है। यह ध्यान प्रक्रिया लय योग की ध्यान साधना कहलाती है और व्यक्ति का भाव-कल्प कर दिखाती है।

(३) रंगीन वातावरण का ध्यान : हर रंग में सूर्य किरणों के अपने-अपने स्तर के रसायन, धातु तत्त्व एवं विद्युत प्रवाह होते हैं। वे शरीर और मस्तिष्क पर अतिरिक्त प्रभाव छोड़ते हैं। इनमें से किसी का अनुपात घट-बढ़ जाता है अथवा विकृत असंतुलित हो जाता है, तो कई प्रकार के रोग-उत्पात उठ खड़े होते हैं। इस हेतु रंगीन पारदर्शी काँच के माध्यम से अथवा विभिन्न रंगों के बल्वों द्वारा पीड़ित अंग पर अथवा अंग विशेष पर उसकी सक्रियता बढ़ाने के लिए रंगीन किरणों को आवश्यकतानुसार निर्धारित अवधि तक लेने का विधान है। प्रतिभा परिवर्द्धन हेतु उचित रंग विशेष का आँखें बंद करके ध्यान भी किया जाता है। कुछ देर तक सप्त वर्णों के क्रम में से निर्धारित रंग (बैंगनी, नीला, आसमानी, हरा, पीला, नारंगी, लाल) के फ्लेशेज स्ट्रोबोस्कोप यंत्र द्वारा चमकाए जाते हैं एवं आँख पर पहने चश्मे में वही वर्ण विशेष सतत दीखता रहता है। इसका प्रभाव मस्तिष्क के सूक्ष्म केंद्रों, चक्र संस्थानों आदि पर पड़ता है। नियमित रूप से कुछ देर के ध्यान के क्रमश: अभ्यास करते रहने पर वांछित परिवर्तन प्रक्रिया आरंभ हो जाती है। ध्यान यह किया जाता है कि संसार में सर्वत्र उसी एक रंग की सत्ता है, जो

अपने शरीर में प्रवेश करके अभीष्ट विशेषताओं की ऊर्जा शरीर में प्रवाहित करती है। यह ध्यान पाँच से दस मिनट तक किया जाता है। विशेषज्ञों के द्वारा भिन्न-भिन्न प्रकृति के साधकों के लिए भिन्न-भिन्न वर्णों का निर्धारण करके ही यह प्रक्रिया आरंभ की जाती है। बिना किसी यंत्र के केवल ध्यान द्वारा की यह क्रिया की जा सकती है। सफेद रंग में सभी रंग समाए हुए हैं, अत: सफेद रंग का ध्यान करना सभी के लिए उपयोगी है।

(४) प्राणाकर्षण प्राणायाम : प्रतिभा संवर्द्धन के लिए एक विधान प्राणाकर्षण प्राणायाम का है। इसकी विधि यह है कि कमर सीधी, सरल आसन में हाथ गोदी में, मेरुदंड सीधा रखकर बैठा जाए। ध्यान किया जाए कि श्वेत बादलों जैसी शकल के प्राण का उफान हमारे चारों ओर उमड़ता चला आ रहा है और हम उसके बीच निश्चिंत प्रसन्न मुद्रा में बैठे हैं। नासिका के दोनों छिद्रों से धीरे-धीरे साँस खींचते हुए भावना की जाए कि साँस के साथ प्रखर प्राण की मात्रा भी घुली हुई है और वह शरीर में प्रवेश कर रही है। अंग-अवयवों द्वारा वह धारण की जा रही है। खींचते समय प्राण के प्रवेश करने की व साँस रोकते समय अवधारण की भावना की जाए। धीरे-धीरे साँस बाहर निकालने के साथ यह विश्वास किया जाए कि जो भी अवांछनीयताओं के, दुर्बलताओं के तत्त्व भीतर थे, वे साँस के साथ घुलकर बाहर जा रहे हैं। फिर लौटने वाले नहीं हैं। इस प्राणायाम को आरंभ में पाँच से दस मिनट ही करना पर्याप्त है। क्रमश: यह अवधि बढ़ाई जा सकती है।

(५) सूर्यवेधन प्राणायाम : ध्यान मुद्रा में बैठा जाए। कपड़े शरीर पर कम-से-कम रहें। मुख पूर्व की ओर हो, समय अरुणोदय का। ध्यान किया जाए कि आत्मसत्ता शरीर में से निकलकर सीधे सूर्य लोक तक पहुँच रही है। जिस प्रकार सुई में पिरोया हुआ धागा कपड़े से होकर जाता है, जलती अग्नि में से छड़ आर-पार जा रही है। सूर्य ऊर्जा से अपनी चेतना भर रही है। दायीं नासिका से खींचा

श्वाँस अंदर तक जाकर सूर्यचक्र को आंदोलित, उत्तेजित कर रहा है। ओजस्, तेजस्, वर्चस् की बड़ी मात्रा अपने में धारण करके वापस बायीं नासिका से सारे कल्मष निकल रहे हैं। पहले की अपेक्षा अब अपने में प्राण ऊर्जा की मात्रा भी अधिक बढ़ गई है, जो प्रतिभा संवर्द्धन के रूप में अनुभव में आती है। क्रिया को गौण व भावना को प्रधान मानते हुए यह अभ्यास नियमित रूप से किया जाए, तो निश्चित ही फलदायी होता है।

(६) चुंबक स्पर्श : चुंबक का चिकित्सा में बड़ा योगदान माना गया है। एक्युपंचर, एक्यूप्रेशर, शरीर के सूक्ष्म संस्थानों को मुद्रा एवं बंध द्वारा प्रभावित करना एवं चुंबक चिकित्सा में अद्‌भुत साम्य है। हमारी धरती एक विराट चुंबक है व निश्चित मात्रा में प्राण उत्तरी ध्रुव से फेंक देती है। चुंबक स्पर्श में भी यही सिद्धांत प्रयुक्त होता है। लौह चुंबक का सहज क्षमता वाला पिंड लेकर धीरे-धीरे मस्तिष्क, रीढ़ और हृदय पर बाएँ से दायीं ओर गोलाई में घुमाया जाता है। गति धीमी रहे। कंठ से लेकर नाभि छिद्रों के ऊपर होते हुए जननेंद्रियों तक उस चुंबक को पहुँचाया जाए। स्पर्श कराने, घुमाने के उपरांत उसे धो दिया जाए, ताकि उसके साथ कोई प्रभाव न जुड़ा रहे। चुंबक से प्रभावित जल तथा विद्युत चुंबक का प्रयोग भी इसी क्रम में किया जा सकता है। किस कमी के लिए, किस रूप में, किस प्रकार प्रयोग किया जाता है, उसका निर्धारण विशेषज्ञों द्वारा किया जाता है।

(७) प्राणवानों का सान्निध्य : शक्तिपात की तांत्रिक क्रिया तो करने कराने में कठिन है व जोखिम भरी थी, किंतु यह सरल है कि किन्हीं वरिष्ठों, प्राण चेतना संपन्न व्यक्तियों के यथा संभव निकट पहुँचने का प्रयत्न किया जाए। चरण स्पर्श जैसे समीपता वाले उपक्रमों से लाभ उठाया जाए। अप्रत्यक्ष रूप से यह ध्यान किया जा सकता है कि हनुमान, भगीरथ जैसे किसी प्राणवान के साथ अपनी भावनात्मक एकता बन रही है और पारस्परिक आदान-

प्रदान का सिलसिला चल रहा है। साबुन जिस प्रकार अपनी सफेदी प्रदान करता है और कपड़े से मैल हटा देता है, उसी प्रकार की भावना इस सघन संपर्क की ध्यान-धारणा में की जा सकती है। दृश्य चित्र व उन महामानवों के कर्त्तव्यों के गुणों का चिंतन भी उसमें सहायक होता है। इस आधार पर भी प्राण चेतना बढ़ती है, उसी प्रकार जिस प्रकार माँ के स्तनपान से बालक एवं गुरु की शक्ति से शिष्य लाभान्वित होता है।

(८) नाद योग : वाद्य यंत्रों और उनकी ध्वनि लहरियों के अपने-अपने प्रभाव हैं। उन्हें कोलाहल रहित स्थान में सुनने का अभ्यास भी प्रतिभा संवर्द्धन में सहायक होता है। यह कार्य, शब्द शक्ति (जो चेतना का ईंधन है) के श्रवण से अंत: के ऊर्जा केंद्रों को उत्तेजित व जगाकर संभव है। टेपरिकार्डर से संगीत सुनकर भी यह कार्य संभव है एवं स्वयं उच्चारित मंत्रों या संगीत पर ध्यान लगाकर भी। अपने लिए उपयुक्त संगीत का चयन भी इस विषय के विशेषज्ञों द्वारा ही निर्धारित करना चाहिए। एक ही वाद्य व समयानुकूल राग का चयन किया जाना चाहिए। यह श्रवण आरंभ में पाँच से दस मिनट तक ही किया जाए। क्रमश: अभ्यास के साथ बढ़ाया जा सकता है। युग निर्माण योजना, मथुरा द्वारा नादयोग की कैसेट तैयार कराई गई हैं, यह कैसेट मँगाकर साधनात्मक मनोभूमि बनाकर कैसेट सुनना चाहिए।

(९) प्रायश्चित : व्यभिचार, छल, धन अपहरण जैसे दुष्कर्मों से भी प्राण शक्ति क्षीण होती है और प्रतिभा का अनुपात घट जाता है। इसके लिए दुष्कर्मों के अनुरूप प्रायश्चित किया जाए। क्रिश्चियन धर्म में ''कन्फेशन'' की बड़ी महत्ता बताई गई है। दुष्कर्मों की भरपाई कर सकने जैसे कोई सत्कर्म किए जाएँ। चांद्रायण साधना एवं हेमाद्रि संकल्प जैसे विधान भी इस भार को उतारने में सहायक होते हैं। इन विधानों की विस्तृत जानकारी 'गायत्री महाविज्ञान' एवं 'कर्मकांड भास्कर' पुस्तकों से अथवा पत्र व्यवहार अथवा व्यक्तिगत

परामर्श से प्राप्त की जा सकती है। कौन किन दोषों के बदले क्या प्रायश्चित करे, इसके लिए गुरु सत्ता जैसे विशेषज्ञों से अपनी पूरी बात कहकर काफी हलकापन आ जाता है व आगे कुछ नया करने की दिशा मिलती है। प्रायश्चित धुलाई की मनोवैज्ञानिक आवश्यकता पूरी करता है। प्रतिभा संवर्द्धन हेतु अंतरंग की धुलाई जरूरी भी है।

(१०) अंकुरों का कल्क एवं वनौषधि सेवन : अन्न-धान्यों एवं जड़ी-बूटी वनस्पतियों के अपने-अपने प्रभाव हैं। वे जब अंकुरित स्थिति में फूटते हैं, तब उनमें अभिनव एवं अतिरिक्त गुण होता है। जो अपनी आवश्यकता के अनुकूल निर्धारित हो, उसके सात गमले एक-एक दिन के अंतर से उगाए जाएँ। सातवें दिन अंकुरों को पीसकर उसका कल्क तीन ग्राम व पानी १० ग्राम लेकर छान लें। इसे प्रातःकाल खाली पेट मधु या उचित अनुपान के साथ लें। ये टॉनिक तेजस् की अभिवृद्धि, मेधा वृद्धि, जीवनी शक्ति के संवर्द्धन में सहायक होते हैं। इसी प्रकार हरी जड़ी-बूटियों या उन औषधियों के सूखे चूर्णों का भी कल्क बनाकर ग्रहण किया जा सकता है। निर्धारण विशेषज्ञ करते हैं। किन्हीं स्थितियों में वाष्पीभूत रूप में अग्निहोत्र प्रक्रिया से नासिका मार्ग द्वारा ग्रहण किए जाने का भी प्रावधान है। ब्राह्मी, शंखपुष्पी, जटामाँसी, अश्वगंधा, बच, तुलसी, ज्योतिष्मती आदि वनौषधियों का सेवन प्रतिभा संवर्द्धन में अत्यंत उपयोगी है।

स्व-संकेत साधना, रंगीन वातावरण का ध्यान, प्राणाकर्षण प्राणायाम एवं नादयोग के लिए साधनात्मक मनोभूमि बनाना अत्यंत आवश्यक है। साधना के लिए उपयुक्त स्थान का चयन करना चाहिए। हिमालय को देवात्मा हिमालय कहा गया है। जहाँ अनेक ऋषि-मुनियों ने कठोर साधनाएँ की हैं, वहाँ की भूमि में साधना के संस्कार गहराई के साथ समाहित हैं। वहाँ की गई साधनाएँ शीघ्र एवं अधिक फलदाई सिद्ध होती हैं, लेकिन युवकों को अपने अन्य कार्यों को छोड़कर हिमालय पर जाकर साधना करना किसी प्रकार

युक्तियुक्त नहीं है, इस अभाव की पूर्ति के लिए हिमालय के वातावरण में मन एवं अंत:करण के द्वारा पहुँचा जाए। मनोभूमि और भावभूमि बनाकर वहाँ के वातावरण में साधना की जा सकती है। स्थूल शरीर एकांत शांत कमरे में रहेगा, लेकिन सूक्ष्म एवं कारण शरीर से हिमालय पहुँचा जाए और मनभावन वातावरण की कल्पना की जाए। भावभूमि बनाई जाए कि आप हिमालय की सर्वोच्च चोटी पर आसन बिछाकर सुखासन में बैठे हैं। शरीर स्थिर, शांतचित्त, नेत्र बंद करके भावना करें कि आपके चारों ओर दूर-दूर तक जहाँ तक दृष्टि जाती है, हिमालय की ऊँची-ऊँची चोटियाँ सफेद बरफ से ढकी हुई दिखाई दे रही है। हरे-हरे बड़े-बड़े वृक्ष दिखाई दे रहे हैं। पुष्पों की झाड़ियाँ हैं जिनसे वातावरण में सुगंध आ रही है। एक ओर निर्मल जल की पतली धारा कल-कल करती बह रही है। खरगोश, हिरन जैसे अहिंसक सुंदर जंतु एवं श्वेत हंस, बगुला, बतख जैसे पक्षी दिखाई दे रहे हैं, ऐसे सुंदर मनोरम स्थल पर आप साधना हेतु बैठे हैं, इसी स्थान पर बैठकर पहले स्व-संकेत साधना करें, फिर रंगीन वातावरण का ध्यान करें। रंगीन वातावरण के ध्यान में भावना करें कि आपके चारों ओर हर वस्तु सफेद है। आपके वस्त्र, शरीर, आसन, हिमालय की चोटियाँ, आकाश, बादल आदि हर वस्तु सफेद है, ऐसी भावना करें। प्राणाकर्षण प्राणायाम एवं नादयोग की साधना भी इसी स्थान पर करनी चाहिए।

जो अपनी सहायता आप करने को तत्पर हैं, ईश्वर केवल उन्हीं की सहायता करता है।

स्व-संकेत साधना

हमें दूसरों के विचारों से प्रभावित न होकर स्वयं अपने ही विचारों से अपने भविष्य का निर्माण करना चाहिए। अपने आपको समझाना सबसे जरूरी है। आत्मप्रेरणा के अनुसार चलकर ही हम विश्वास और साहस प्राप्तकर सकते हैं। मनुष्य अपना निर्माणकर्त्ता स्वयं है। आत्मावलंबन की भावना को बढ़ाने का प्रयास करते रहने से जीवन में नया उत्साह और आनंद प्राप्त होता रहता है। इससे विपत्तियों को सहन करने की सामर्थ्य और बल भी मिलता है। हमें अपने अंतर्जगत को सब ओर से प्रकाशित करना चाहिए। जीवन की यथार्थता हमारे विचारों पर निर्भर है। दूसरों से प्राप्त संकेत हमारे मन पर स्थाई प्रभाव नहीं डालते, परंतु बार-बार मिलने वाले स्व-संकेत ग्रंथि का रूप ले लेते हैं। स्वयं का अध्ययन करके मनःक्षेत्र की दुर्बलताओं को निकालना और उच्च आदर्शों का बीजारोपण करते रहना लाभप्रद होता है। आकांक्षाओं को जिस ओर बढ़ाना हो, उसके लिए स्व-संकेत निर्मित कर अपनी आत्मा और शक्तियों को उस ओर चलने का आदेश देते रहें। अपने साथ मित्रवत् व्यवहार करते हुए सद्गुणों के निर्माण में लगे रहें।

हमारे मन के दो स्वरूप हैं। एक चेतन और दूसरा अचेतन। मन की शक्ति इन दोनों पर निर्भर है। चेतन हमारी बौद्धिक प्रगतिशीलता पर निर्भर है। जो कार्य हम नित्यप्रति सोच-समझकर करते हैं, वे चेतन मन द्वारा संपन्न होते हैं। यह मन हमारी जाग्रत अवस्था पर आश्रित है। अचेतन मन हमारी चेतना का दास नहीं है। वह सर्वथा

उन्मुक्त और स्वाधीन है। बिना चेतना की आज्ञा तथा आदेश के वह जो चाहे कर सकता है। मन का यह भाग हमारे अधिकार में नहीं। कभी-कभी इसके कार्य हमारी इच्छा के विपरीत होते हैं। यह सोते-जागते प्रत्येक अवस्था में क्रियाशील रहता है। न चुपचाप बैठता है, न थकता है और हमें निर्देश देता है कि तुम अपना काम करो, हमें अपना कार्य करने दो। हमारी प्रेरणाएँ यहीं से उत्पन होती हैं। अचेतन मन हमारी मूल प्रवृत्तियों और अनुभवों से जुड़ा है।

संकेतों का प्रभाव हमारे अचेतन मन पर, जहाँ मानसिक ग्रंथियों का जाल बिछा रहता है, पड़ता है। वास्तव में अचेतन मन ही हमारी शक्ति का भंडार है। इसमें समाई गुत्थियों को जड़ से काटना और नवीन उत्साह प्रदान करने वाली उत्कृष्ट ग्रंथियों का निर्माण करना ही संकेतों का कार्य है। संकेतों द्वारा विपरीत ग्रंथियों को सहज ही हटाया जा सकता है। तत्पश्चात नवीन ग्रंथियों का इच्छानुसार बीजारोपण किया जा सकता है।

बुरे वातावरण, कठोर व्यवहार एवं परिस्थितियों के कारण हमारे अचेतन मन का निर्माण उचित रीति से नहीं हो पाता। हम उसमें तुच्छता, नीचता या दीनता की ग्रंथियाँ अनजाने में ही बना डालते हैं। जब माँ अपने पुत्र को कहती है-"तू कपूत है, तेरा भाग्य खराब है, तुझे संसार में कोई भी न पूछेगा।" तो ये विचार अचेतन मन के गहरे भाग में उतर जाते हैं और वहाँ उनकी ग्रंथि बन जाती है। इन्हीं कारणों से हजारों युवक आत्महीनता की ग्रंथियों से ग्रसित रहकर अपना नसीब फोड़ा करते हैं। दूषित संकेतों से अचेतन मन का निर्माण भी दूषित ही होता है। यदि आप विरोधी विचार, प्रतिकूल परिस्थिति, अपनी त्रुटियों पर मानसिक क्रिया केंद्रीभूत करेंगे, तो वे अमिट रूप से मानसिक स्तर पर अंकित हो जाएँगी। अचेतन मन के संसार की रूपरेखा हमारे विचारों द्वारा ही निश्चित होती है।

जिन भावनाओं, विचारों, कल्पनाओं का हम दृढ़तापूर्वक चिंतन करते हैं, जिन आदर्शों पर हम अधिक काल तक विचार करते हैं, वे अचेतन में उतर जाते हैं और स्थिरता धारण करते हैं। यदि इन्हें एक-दो बार करके विचार क्रिया को छोड़ दिया जाए, तो पुनः उनका क्षय हो जाता है। अपने स्मृति पट पर एक शुभ चित्र अंकित किया जाए और तत्पश्चात उसे मिटने न दिया जाए, उसकी रूपरेखा और अधिक स्पष्ट और रंगीन बनाई जाए। जिन श्रेष्ठ भावनाओं का उदय होता रहता है, वे मर न जाएँ। उनकी सिद्धि की अग्नि शांत न हो जाए।

चर्म चक्षुओं को मूँदकर अंतर्पट को खोलो। अपनी अंतरात्मा का निरीक्षण करो, देखो, वहाँ कौन-कौन से असत् विचार, दुर्बल मन्तव्य, निर्बल कल्पनाओं की घास-फूस उग आई है। कौन-कौन सी चिंताएँ तुम्हें उद्विग्न कर रही हैं। कौन-सी स्मृति तुम्हें शूल की तरह चुभ रही है। हजारों भ्रांतियाँ, भय, संशय इस प्रदेश में मिलेंगे। ये तुम्हारी आत्मशक्ति का क्षय करते हैं। तुम्हारे शरीर को जर्जर और मन को निर्बल बनाते हैं। ये व्यर्थ के भूत तुम्हें भयंकर प्रतीत होते हैं। इनका दृढ़ता से विरोध करो। इनसे डरना नहीं है। व्यग्र या किंचित चलायमान नहीं होना है। आप में इतनी शक्ति है कि इन शत्रुओं पर पूर्ण विजय प्राप्त कर सकते हैं।

स्व-संकेतों का आधार हमारी श्रद्धा है। इन पर हमारा जितना विश्वास होगा, उतनी ही तीव्रता से कार्य करेंगे। अपनी शक्तियों में अविश्वास करना विषपान करना है। श्रद्धा आपकी शक्तियों की जान है। वह आपके अणु-अणु को नवजीवन प्रदान करती है। बिना आत्मश्रद्धा के ज्ञान निष्फल है, क्रिया शक्ति रहित है, संकल्प निर्जीव है और मनुष्य क्षुद्र प्राणी है।

सर्वप्रथम छोटे-छोटे संकल्प लेकर सफलता प्राप्तकर आत्मश्रद्धा को बढ़ने का अवसर दीजिए। तत्पश्चात कार्यों को बढ़ाते जाइए। ऐसा करने से आत्मविश्वास में पर्याप्त अभिवृद्धि हो जाएगी। ज्यों-

ज्यों हमारी आत्मश्रद्धा बढ़ेगी, ईश्वरीय सत्ता से हमारा संबंध स्थापित होता जाएगा। पहली बार ही कोई दुष्कर कार्य न ले बैठो, जो आपकी पहुँच के बाहर हो। ऐसा करने से कई दिन का एकत्रित आत्मविश्वास नष्ट हो जाएगा।

अभ्यास के प्रारंभ में एक ऐसे कमरे का चयन करें, जहाँ एकांत हो। सामने एक बड़ा शीशा रख लें। उसमें अपनी आकृति को ध्यानपूर्वक देखें। आपके नेत्रों से तीव्र प्रकाश झलक रहा है। आपके चेहरे से सफल पुरुषों जैसा आत्मप्रकाश आ रहा है। सफलता की आधारशिला यही है कि आप इन संकेतों पर पूर्ण विश्वास कर लें। यदि इन पर थोड़ा भी संशय करेंगे, तो आपकी मनोवांछाएँ अंदर ही घुटकर मर जाएँगी। शीशे के सामने अपने मुख के अंग-प्रत्यंगों को विश्वासपूर्वक देखते हुए अपनी आवाज में भरी हुई ऑडियो कैसेट चला दें, जिससे निम्नलिखित संकेत सुनाई देते रहें। प्रत्येक रात्रि में सोने से पूर्व कुछ समय के लिए यह प्रोग्राम निश्चित करें। हमारा अचेतन मन रात्रि में अधिक तीव्रता से कार्य करता है। जिन भावनाओं को दृढ़ता से लेकर हम सोते हैं, वे ही निद्रा की अवस्था में अचेतन मन में प्रवेश कर जाती हैं। हमारा संकल्प जितना दृढ़ होगा, उतनी ही दृढ़तापूर्वक इन भावनाओं की जड़ें जमेंगी।

"मैं अपनी सोई हुई शक्तियों को जगा रहा हूँ। आज मेरी आत्मा का जागरण दिवस है। मैं अपनी अलौकिक शक्तियों को प्रकट कर रहा हूँ। अपनी गुप्त सामर्थ्य को प्रकाश में ला रहा हूँ। मैं परम पवित्र सत् चित् आनंद स्वरूप चेतन घन अविनाशी आत्मा हूँ। मैं अपने आत्मस्वरूप में स्थिर रहता हूँ। मैं प्रत्येक क्षण ऊँचा उठ रहा हूँ। प्रत्येक क्षण का उत्तम उपयोग करता हूँ। मुझे ज्ञान हो गया है कि मैं असाधारण प्रतिभा संपन्न महान पुरुष हूँ। मैं अपूर्व विचारों का वृहद् भंडार हूँ। मैं अपने विचारों से संसार को चकित करूँगा। मैं एक दिन महामानव बनकर रहूँगा। मेरी उन्नति का मार्ग खुल

गया है। संसार की समस्त शक्तियाँ मेरी रक्षा कर रही हैं। मुझे सच्चा ज्ञान प्राप्त हो गया है कि सत्य का उपदेश देने वाला, सीधा रास्ता दिखाने वाला सच्चा गुरु मेरी अंतरात्मा है। मैं अपनी शक्ति का अनुभव करता हूँ। मेरी नस-नस में शक्तिशाली रक्त दौड़ रहा है। मेरे भाग्य का निर्माण अत्यंत शुभ मुहूर्त में हुआ है। मैं अपने विचारों का स्वामी हूँ। स्वयं विचार करना जानता हूँ। अपने जीवन को उच्च बनाने का निश्चय कर मैं जीवन संग्राम में प्रविष्ट हो रहा हूँ। प्रतिकूलता से युद्ध करने की शक्ति मुझ में है। मैं साहस से प्रतिकूल परिस्थितियों पर अधिकार कर सकता हूँ। मैं अपनी शक्तियों का स्वामी हूँ। मुझे अपने जीवन में कितने ही महत्त्वपूर्ण कार्य करने हैं और बहुत ऊँचा उठना है। मैं दृढ़ निश्चय करता हूँ कि अपने आदर्शों और प्रेरणाओं के प्रति सच्चा रहूँगा। जो क्रम मैंने निश्चित किया है, उसी पर जमा रहूँगा। ईश्वर ने मुझे आत्मशक्ति प्रदान की है। उन दिव्य शक्तियों का विकास करूँगा। मेरे हृदय में उज्ज्वल भाव ही प्रवेश करते हैं। मेरा विवेक जाग्रत हो गया है। उचित कर्म में लगाने वाली सद्बुद्धि मेरे हृदय में जाग्रत हो चुकी है। मन विशुद्ध हो चुका है। मेरे हृदय में परमात्मा के प्रति अटूट श्रद्धा है। मैंने अनुभव कर लिया है कि वास्तविक सुख का भंडार मेरे भीतर है। मैं भीषण-से-भीषण विपत्ति में भी प्रफुल्लित रहता हूँ। मेरी आत्मा में सुप्त शक्तियाँ सजग हो उठी हैं। मैं विपत्तियों का प्रसन्नता से स्वागत करता हूँ। मैं शांत वातावरण में स्थिर शरीर से एकाग्र मन से बैठा हूँ। मेरे मस्तिष्क से प्राण विद्युत शरीर के अंग-अवयवों में अधिक मात्रा में प्रवाहित हो रहा है। प्राणविद्युत शिथिलता को दूर कर रही है और उसका स्थान सक्रियता लेती जा रही है। मेरा शरीर सक्रिय होता जा रहा है। शरीर के प्रत्येक अंग-अवयव पुष्ट होते जा रहे हैं। शरीर स्वस्थ और सबल होता जा रहा है। इंद्रियों की क्षमता बढ़ती जा रही है। चेहरे पर चमक बढ़ती जा रही है। शरीर और चेहरा पहले से अधिक सुंदर होता जा रहा है। बौद्धिक स्तर

बढ़ता जा रहा है। मेरी स्मरण शक्ति बढ़ती जा रही है। मैं जो कुछ याद करता हूँ, पढ़ता हूँ, वह मुझे याद रहता है। मेरी प्रतिभा बढ़ती जा रही है। प्रतिभा का विकास होता जा रहा है। इसका अनुभव मैं स्वयं भी कर रहा हूँ और दूसरों को भी हो रहा है। मैं सदा सकारात्मक विचार करता हूँ। महापुरुषों के गुणों को ग्रहण करता हूँ। मेरे महान विचार सजातीय विचारों को अपनी ओर खींचते हैं। मैं संसार का सबसे श्रेष्ठ प्राणी हूँ। मेरी बुद्धि विकसित है। मन स्वस्थ, तन स्वस्थ और अंत:करण पवित्र है। मेरी प्रगति निश्चित है। मुझे हर कार्य में सफलता मिलती है। ॐ शांति।''

दोनों हाथों की हथेलियों को रगड़कर नेत्रों पर रखें। धीरे-धीरे नेत्र खोलें और सामान्य अवस्था में आ जाएँ।

सभ्यता का स्वरूप है सादगी, अपने लिए कठोरता और दूसरों के लिए उदारता।

स्वस्थ रहें-मजबूत बनें

'स्वस्थ' शब्द का अर्थ है-स्व में स्थित। जो व्यक्ति अपने में स्थित, आत्मा में स्थित होगा, तो वह आत्मा के शांति, प्रेम, आत्मीयता, प्रसन्नता, संतोष, कर्त्तव्यपालन, आदि गुणों से युक्त होगा, सही आहार-विहार का पालन करेगा और निरोगी रहेगा। मोटे तौर पर दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि जो बिना किसी कष्ट के अपनी सब क्रियाओं का संपादन कर ले, वह स्वस्थ व्यक्ति हैं। इन क्रियाओं में सबसे पहले उन क्रियाओं का स्थान है, जो शरीर के निर्वाह के लिए आवश्यक है। जैसे भूख, पाचन एवं मल निष्कासन।

रोग क्यों होता है?

प्रकृति ने हमारे शरीर के विजातीय द्रव्य बाहर निकालने के लिए चार मार्ग दिए हैं। फेफड़े प्राणवायु ऑक्सीजन ग्रहण करते तथा कार्बनडाइऑक्साइड के रूप में विजातीय तत्त्व बाहर निकालते हैं। त्वचा पसीना के रूप में, गुर्दे मूत्र के रूप में तथा बड़ी आँत मल के रूप में विजातीय तत्त्व बाहर निकालने का कार्य करते हैं।

हमारी गलत आदतों के कारण आहार-विहार एवं आचार-विचार में विकृति आने पर जब प्रकृति प्रदत्त ये चार मार्ग कार्य नहीं कर पाते, तब प्रकृति पाँचवाँ मार्ग सुनिश्चित करती है। वह पाँचवाँ मार्ग प्रकृति का असाधारण उपाय है। वह बुखार, उलटी, दस्त, फोड़ा-फुंसी या सरदी-जुकाम-खाँसी के रूप में हो सकता है। प्रकृति शरीर की रक्षा के लिए पाँचवाँ मार्ग चुनकर शरीर को निरोग रखना चाहती है। जब हम दवा द्वारा इन रोगों को दबाने का प्रयास करते हैं तो प्रकृति की सफाई प्रक्रिया में हम बाधक बन जाते हैं। विजातीय द्रव्य बाहर नहीं निकल पाता फलतः जीर्ण रोग पैदा हो

जाता है, जिसका नाम दमा, कोलायटिस, संधिवात, गठिया, बवासीर, एक्जिमा आदि हो सकता है।

प्राकृतिक चिकित्सा विज्ञान ने गहराई से प्रकृति की आवाज को समझकर सरदी-जुकाम, बुखार, दस्त, फोड़ा-फुंसी आदि तीव्र रोग होने पर दवाएँ लेकर रोग को न दबाने के लिए जन-जन को प्रेरणा दी है। ऐसे अवसर पर रोगी को ठोस आहार न दें। मौसमी, संतरा, अनार, नींबू का रस पानी में निचोड़कर दो चम्मच शहद मिलाकर बार-बार पिलाते रहें। एक या दो दिन में ही रोग की तीव्रता कम होगी। शरीर को स्वच्छ-स्फूर्तिमय बनाकर तीव्र रोग चला जाएगा। सही आहार-विहार का ध्यान रखना स्वस्थ रहने के लिए जरूरी है।

किसी ईमानदार चिकित्सक ने कहा है-

दवा दबाए रोग को, क्यों करते हो भूल।
चतुर चिकित्सक ठग रहे, करो न ऐसी भूल॥

हमारे शरीर में रोगों से लड़ने की शक्ति को रोग प्रतिरोधक क्षमता (जीवनी शक्ति) कहते हैं। जब भी यह शक्ति हमारे गलत तौर-तरीकों से कम होती है या नष्ट होती है तो शरीर रोगग्रस्त हो जाता है। जब तक यह शक्ति यथेष्ट मात्रा में रहती है, तब तक शरीर को स्वस्थ रखने के लिए जीवनी शक्ति ही प्रयास करती है। विजातीय द्रव्य (तत्त्व) को बाहर निकालने का कार्य जीवनी शक्ति पर निर्भर करता है।

स्वस्थ रहने के लिए क्या करें?

गीता में लिखा है-

युक्ताहारविहारस्य, युक्तचेष्टस्य कर्मसु।
युक्तस्वप्नावबोधस्य, योगो भवति दुःखहा॥

अर्थात उचित आहार-विहार (रहन-सहन), उचित कर्म व्यवहार तथा सही समय पर सोना और प्रातः जल्दी उठना, यह योग दुःख दूर करने वाला है। गीताकार ने एक ही श्लोक में समग्र

स्वास्थ्य रक्षा का सूत्र एवं जीवन जीने की कला का शिक्षण दिया है।

प्रातःकाल क्या करें?

(१) सूर्योदय के एक-डेढ़ घंटे पूर्व जग जाएँ तथा उठते समय दोनों हथेलियों के दर्शन करते हुए ईश्वर से जीवन के लिए कृतज्ञता प्रकट करें। फिर धरती माँ को प्रणाम करें। अब दो गिलास पानी पीएँ। ठंढ के दिनों में गरम पानी पीएँ। यदि अम्ल-पित्त की शिकायत न हो तो पानी में आधा नींबू निचोड़कर पानी पी लें। पानी में दो चम्मच शहद मिलाकर भी ले सकते हैं।

(२) शौच से निवृत्त होने के बाद दांतुन या ब्रुश से दाँत साफ करें। दांतुन को प्राथमिकता दें।

(३) इसके पश्चात खुले मैदान में घूमने निकल जाएँ। तेज चाल से चलते हुए, गहरी साँस लेते हुए लगभग चार-पाँच किलोमीटर तेज चाल से टहलें या यथाशक्ति दौड़ें।

(४) टहलकर आने के पश्चात तीस मिनट योगासन, प्राणायाम, ध्यान करें।

(५) दस मिनट शिथिलीकरण के बाद ठंढे पानी से शरीर को रगड़-रगड़कर स्नान करें।

(६) स्नान के बाद थोड़ा समय प्रार्थना, ईश्वरोपासना, जप, ध्यानादि के लिए सुनिश्चित करें।

(७) अच्छी पुस्तकों का जीवन में सकारात्मक दृष्टिकोण पैदा करने में बड़ा महत्त्व है। शांति, संतोष, प्रसन्नता, सद्भावना, सत्साहस पैदा करने वाले विचारों से युक्त साहित्य नियमित पढ़ें।

भोजन और स्वास्थ्य :

वर्तमान समय में सबसे समझदार माने जाने वाला मनुष्य अपने स्वास्थ्य के मामले में मूर्खतापूर्ण आहार ले रहा है। यह सबसे बड़े अचम्भे की बात मानना चाहिए कि बड़े-बड़े आविष्कार वाले युग में समझदारों में नासमझी कैसे पनपी?

देर रात तक जागना, चाय, मैदा, चीनी, टॉफी, बिस्कुट, ब्रेड, पिज्जा, बरगड़, चाऊमीन, डिब्बा बंद, पैकेट बंद खाद्य पदार्थों का प्रचलन, बोतलबंद ठंढे पेय पदार्थों को सभ्यता मानना कहाँ की समझदारी है? केंसर जैसे खतरनाक रोगों तथा एलर्जी, दमा, उच्च रक्तचाप, अनिद्रा, माइग्रेन, हृदयरोग, डायबिटीज, बवासीर आदि रोगों को जन्म देने वाले इन खाद्यों का बाल्यावस्था से ही सेवन करने की बुरी लत पैदा हो रही है। यही आदत आज सभ्य लोगों की पहचान बनने से जो भी सभ्य कहलाना चाहता है, यही भोजन अपनाता है। होता यह है कि जो भी डिब्बा बंद खाद्य हैं, उनके संरक्षण (प्रिजर्वेशन) के लिए उनमें कीटनाशकों (घातक रसायनों) का प्रयोग किया जाता है। कृत्रिम रंगों, कृत्रिम गंध तथा कृत्रिम स्वाद के लिए तरह-तरह के रसायनों का प्रयोग कर मानव जाति के लिए एक बड़ा स्वास्थ्य संकट पैदा कर दिया है।

जब जागे तब सबेरा :

युवको! उठो!! जागो!!! आप उज्ज्वल भविष्य के रचनाकार हैं। आप स्वस्थ रहेंगे तो राष्ट्र सबल रहेगा। मिर्च-मसालेदार खाद्य, अचार, शर्बत, रंग-बिरंगी मिठाईयाँ, चाय, चीनी, मैदा, वनस्पति घी, तथा तले खाद्यों को छोड़कर प्रकृति की शरण में लौटिए। प्रकृति की आवाज सुनिए, आपको चिर स्वास्थ्य मिलेगा।

प्रकृति ने पेड़ों पर मिठाइयाँ लगाई हैं। खजूर, अमरूद, अनार, नाशपाती, आम आदि के प्राकृतिक स्वाद का आनंद लें। इसी में स्वास्थ्य है। कृत्रिम बनावटी पदार्थों में रोग लिपटा हुआ है। रंग-बिरंगे पैकेटों द्वारा बच्चों का, युवकों का स्वास्थ्य एवं जीवनी शक्ति (रोगों से लड़ने की शक्ति) का ह्रास हो रहा है। अंकुरित गेहूँ, मूँग, चना, मूँगफली में सारे जीवन तत्त्व हैं। आप नियमित पच्चीस-पचास ग्राम प्रातःकाल सेवन करें। नाश्ते को स्वास्थ्यनाशक न बनाकर रोगनाशक बनाएँ। नाश्ते में

अंकुरित अन्न, संभव हो तो ताजा शुद्ध गाय का दूध तथा ढाई सौ ग्राम फल (जो आपको अपने आसपास सरलता से उपलब्ध हों) लेते रहें।

भोजन क्या और कैसे?

(१) जीने के लिए भोजन करें न कि भोजन के लिए जिएँ।

(२) बिना कड़ी भूख लगे कुछ भी न खाएँ।

(३) सबेरे के नाश्ते में दूध, अंकुरित अनाज तथा फल लें।

(४) दोपहर एवं रात्रि के भोजन में रोटी, छिलके वाली दाल, सब्जी एवं सलाद लें।

(५) रोटी चोकर युक्त आटे की हों। सब्जी में मिर्च-मसालों का प्रयोग न हो। बारीक आटा आँतों से चिपककर कब्ज पैदा करेगा, जो सब रोगों को जन्म देने वाला है।

(६) भोजन खूब चबा-चबाकर धीरे-धीरे करें। ठीक तरह से चबाकर भोजन करने से लार भोजन में मिलती है, जिससे भोजन में स्थित कार्बोज का पाचन ठीक ढंग से होता है। कहावत भी है-बत्तीस दाँत हैं तो बत्तीस बार चबाएँ। यह भी कहते हैं कि भोजन को पिएँ, पानी को खाएँ। तात्पर्य यही है कि ठोस भोजन को इतना चबाएँ कि पानी की तरह पतला हो जाए, तभी निगलें। पानी यूँ ही गटागट न पीएँ। पानी को धीरे-धीरे एक-एक घूँट पीएँ। भोजन को अच्छी तरह चबाने से पाचक रसों का उचित मात्रा में स्राव होता है तथा आँतों की सर्पिल गति भी संतुलित रहती है, जिससे कब्ज या पतले दस्त नहीं होंगे। खूब चबा-चबाकर खाने से मस्तिष्क के हाइपोथैलेमस केंद्र में स्थित भूख का केंद्र कम भोजन से ही तृप्त हो जाता है। मस्तिष्क के तृप्तिदायक (संतुष्टि प्रदान करने वाला) हार्मोन सेरेटोनिन का स्राव बढ़ जाता है, जिससे दिन भर ठूँसते रहने की, पेटूपन की बुरी आदतों पर नियंत्रण होता है। अग्न्याशय (पेंक्रियास) की बीटा कोशिकाएँ सक्रिय होकर इंसुलिन का स्राव बढ़ जाता है,

जिससे झूठी भूख का नियंत्रण होता है। भूख खुलकर लगती है तथा डायबिटीज रोग पैदा नहीं होता है।

(७) जापान की एक यूनिवर्सिटी के केंसर विशेषज्ञों ने बताया है कि खूब चबा-चबाकर खाने से लार में स्थित टायलिन (सलाइवा एमाइलेज) एन्जाइम में एंटीकार्सिनोजेबिक फैक्टर पाया जाता है, जो भोजन में मिलता है, जो केंसर रोधी फैक्टर है।

(८) भोजन के बीच में पानी न पीएँ। भोजन करने के आधा घंटे पूर्व से भोजन के डेढ़ घंटे बाद तक पानी न पीएँ। शेष समय में पानी पर्याप्त मात्रा में घूँट-घूँटकर धीरे-धीरे पीएँ।

(९) भोजन के बाद दूध न पीएँ। भोजन करने या दूध पीने और सोने के बीच दो घंटे का अंतराल रखें।

(१०) भोजन के तत्काल बाद १० मिनट वज्रासन में बैठना लाभकर है।

(११) भोजन के तत्काल बाद न सोएँ। तुरंत सोने से पाचन क्रिया बाधित होती है तथा नींद पूरी होने पर भी ताजगी नहीं आती है।

(१२) दिन भर में कम-से-कम ढाई-तीन लीटर पानी पीएँ।

(१३) पॉलिश किया हुआ चावल न खाएँ। दाल छिलका समेत खाएँ। हरी सब्जियाँ, सलाद एवं फल का सेवन अन्न से तिगुनी मात्रा में करें।

(१४) जिस मौसम में जो फल मिले, उसका भरपूर सेवन करें। सड़े-गले या कच्चे फलों का सेवन न करें। पके फल का सेवन करें।

(१५) मन क्रोध, चिंता, तनाव, शोक आदि तीव्र उद्वेग से ग्रसित हो, तो उस वक्त भोजन न करें।

(१६) हमारे भोजन में कचौड़ी, पूड़ी, पकौड़ी, समोसा, अचार आदि न हों। टमाटर, पालक, नारियल, आँवला आदि की ताजी चटनी ले सकते हैं।

(१७) गरिष्ठ, बासे, तले खाद्यों से बचे रहेंगे तो पाचन शक्ति दुरुस्त रहेगी।

(१८) सप्ताह में एक दिन का उपवास करें, जिसमें केवल नींबू अथवा नींबू-शहद का सेवन पानी के साथ करें।

(१९) स्वस्थ चित्त, प्रसन्न मन से किया गया भोजन आसानी से पचता है।

(२०) भोजन के साथ सलाद लेने से आवश्यक खनिज लवण (मिनरल्स) मिल जाते हैं। अत: गाजर, मूली, हरा धनिया, पके टमाटर, पत्ता गोभी, ककड़ी, खीरा आदि सलाद के रूप में लेना चाहिए।

क्या-क्या न करें?

(१) रात्रि में जागरण न करें।

(२) मुँह ढककर न सोएँ।

(३) रात को सोते समय खिड़कियाँ बंद न करें।

(४) तंग पोशाक न पहनें।

(५) ऊँची ऐड़ी के चप्पल-जूते न पहनें।

(६) कृत्रिम वस्त्र को प्रधानता न दें। यथाशक्ति सूती वस्त्र पहनें।

(७) छींक, पेशाब, जम्हाई एवं पाखाना का वेग न रोकें।

(८) टी.वी. नजदीक से न देखें।

(९) लेटे हुए न पढ़ें।

(१०) चाय, काफी, फास्ट फूट, चाकलेट, आइसक्रीम, कोल्ड ड्रिंक्स न लें।

(११) बीड़ी, सिगरेट, पान-मसाला, जर्दा, तम्बाकू आदि नशों का सेवन न करें।

(१२) मांस-मछली, अंडे, शराब का सेवन न करें।

(१३) साबुन, शैम्पू, नेल पॉलिश, लिपस्टिक जैसे हानिकर सौंदर्य प्रसाधनों का प्रयोग न करें।

हितकारी भोजन क्या है?

जिस भोजन में क्षार का अंश अधिक होगा एवं अम्ल का अंश कम होगा वही हितकारी भोजन है। हमारे खून में ८०% क्षार एवं २०% अम्ल शरीर को स्वस्थ रखने के लिए जरूरी है। जो व्यक्ति क्षार उत्पन्न करने वाले खाद्य कम खाते हैं और अम्लीय खाद्य अधिक खाते हैं, वे रोगों को निमंत्रण देते हैं।

क्षार तत्त्व कैसे प्राप्त करें?

शाक-भाजियों के छिलकों और अनाज के चोकर में क्षार की मात्रा अधिक होती है। हमारी सभ्यता ने हमें उलटा ही पाठ पढ़ा दिया है। हम काम की चीजों को फेंक देते हैं और सार हीन पदार्थ ग्रहण करते जाते हैं। हम अपने स्वास्थ्य के साथ खिलवाड़ कर रहे हैं। मोटे पिसे गेहूँ के आटे में (यदि उसे छाना न जाए) क्षार का अंश पर्याप्त मात्रा में रहता है। जब उसे खूब बारीक पीसकर या पिसवाकर मैदा बना लिया जाता है तो उसको खाने से सिर्फ अम्लता पैदा करने वाला अंश ही अंदर जाएगा। इसी प्रकार शाक-भाजियों के छिलके उतारकर फेंकने से अधिकांश क्षार फेंक दिया जाता है। थोड़ा-सा क्षार का अंश दालों के छिलकों में भी होता है। पॉलिश की हुई दालें एवं चावल में अम्ल का अंश अधिक रहता है।

क्षारीय बहुल पदार्थ कौन-कौन से हैं?

(१) सभी मीठे फल।

(२) हरी पत्तीदार शाक-भाजी।

(३) चोकर सहित गेहूँ का आटा।

(४) हाथ के कुटे चावल।

(५) गुड़ और शहद।

(६) नींबू। स्मरण रखें कि नींबू की खटास में अम्ल का तत्त्व है, परंतु पेट में जाकर वह खटास भी क्षार में बदल जाती है।

अम्लीय खाद्य कौन-कौन से हैं?

(१) मांस-मछली-अंडा।

(२) मैदे से बनी मठरी, समोसा, कचौड़ी, पूड़ी आदि।

(३) मशीन से कुटे सफेद और पॉलिश वाले चावल।

(४) छिलका रहित दालें।

(५) अचार, डिब्बा बंद खाद्य, चाय, काफी, चीनी, कृत्रिम नमक।

(६) मिठाइयाँ।

□ *अपनी रोटी मिल-बाँटकर खाओ, ताकि तुम्हारे सभी भाई सुखी रह सकें।*

□ *सबसे बड़ा दीन-दुर्बल वह है, जिसका अपने ऊपर नियंत्रण नहीं।*

प्रज्ञायोग-व्यायाम

इसे बाल-वृद्ध, नर-नारी सभी प्रसन्नतापूर्वक कर सकते हैं। इसमें सभी प्रमुख अंगों का व्यायाम संतुलित रूप से होता है। फलतः अंगों की जकड़न, दुर्बलता दूर होकर उनमें लोच और शक्ति का संचार होता है। योग व्यायाम की इस पद्धति में आसनों, उप आसनों, मुद्राओं, श्वास-प्रश्वास क्रम तथा शरीर संचालन की लोम-विलोम क्रियाओं का सुंदर समन्वय है। आसनों और प्राणायाम का यह संयुक्त प्रयोग शरीर और मस्तिष्क, स्थूल और सूक्ष्म दोनों के लिए बहुत ही लाभदायक है।

व्यायाम शृंखला की हर मुद्रा के साथ गायत्री मंत्र के अक्षरों-व्याहृतियों को जोड़ देने से, शरीर के व्यायाम के साथ मन की एकाग्रता और भावनात्मक पवित्रता का भी अभ्यास साथ-ही-साथ होता रहता है।

प्रज्ञायोग व्यायाम की मुद्राएँ चित्र सहित समझाई गई हैं। १६ निर्देशों (काशन) में व्यायाम की एक शृंखला पूरी होती है। चित्रों के साथ शब्दों में चित्र संख्या छपी है। इसी क्रम से व्यक्तिगत अथवा सामूहिक रूप में व्यायाम किया जाना चाहिए।

क्र. १ ॐ भूः (ताड़ासन)

विधि : धीरे-धीरे श्वास खींचना प्रारंभ करें। दोनों हाथों को ऊपर की ओर उठाएँ, दोनों पैर के पंजों के बल खड़े होते हुए शरीर को ऊपर की ओर खीचें। दृष्टि आकाश की ओर रखें। यह चारों क्रियाएँ एक साथ होनी चाहिए। यह समूचा व्यायाम ताड़ासन (चित्र नं०-१) की तरह संपन्न होगा। सहज रूप से जितनी देर में

(चित्र नं-१)

यह क्रिया संभव हो, कर लेने के बाद अगली क्रिया (नं०-२) की जाए।

लाभ : हृदय की दुर्बलता, रक्तदोष और कोष्ठबद्धता दूर होती है। यह मेरुदंड के सही विकास में सहायता करता है। स्नायु तंत्र लचीला बनता है तथा शरीर जकड़न (आलस्य) शीघ्र दूर होती है।

क्र. २ ॐ भुवः (पाद हस्तासन)

(चित्र नं-२)

विधि : श्वास छोड़ते हुए सामने की ओर (कमर से ऊपर का भाग, गरदन, हाथ साथ-साथ) झुकना। हाथों को 'हस्तपादासन' चित्र नं० २ की तरह नीचे की ओर ले जाते हुए दोनों हाथों से दोनों पैरों के समीप भूमि स्पर्श करें, सिर को पैर के घुटनों से यथासंभव स्पर्श कराने का प्रयास करें (घुटने से पैर मुड़ने न पाए)। इसे सामान्य रूप से जितना हो सके उतना ही करें। क्रमशः अभ्यास से सही स्थिति बनने लगती है।

लाभ : इससे वायु दोष दूर होते हैं। इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना को बल मिलता है। पेट व आमाशय के दोषों को रोकता तथा नष्ट करता है। आमाशय प्रदेश की अतिरिक्त चर्बी भी कम करता है। कब्ज को हटाता है। रीढ़ को लचीला बनाता एवं रक्त संचार में तेजी लाता है।

(चित्र नं-३)

क्र. ३ ॐ स्वः (वज्रासन)

विधि : हस्तपादासन की स्थिति में सीधे जुड़े हुए पैरों को घुटनों से मोड़ें, दोनों पंजे पीछे की ओर ले जाकर उन पर वज्रासन (चित्र नं०-३) की तरह बैठ जाएँ। दोनों हाथ दोनों घुटनों पर, कमर से मेरुदंड तक शरीर सीधा, श्वास सामान्य। यह एक प्रकार से व्यायाम से पूर्व की

आरामदेह या विश्राम की अवस्था है।

लाभ : भोजन पचाने में सहायक, वायु दोष, कब्ज, पेट का भारीपन दूर करता है। यह आमाशय और गर्भाशय की मांसपेशियों को शक्ति प्रदान करता है, अत: हार्निया से बचाव रहता है। गर्भाशय, आमाशय आदि में रक्त व स्नायविक प्रभाव को बदल देता है।

क्र. ४ तत् (उष्ट्रासन)

(चित्र नं-४)

विधि : घुटनों पर रखे दोनों हाथ पीछे की तरफ ले जाएँ। हाथ के पंजे पैरों की एड़ियों पर रखें। अब धीरे-धीरे श्वास खींचते हुए 'उष्ट्रासन' (चित्र नं०-४) की तरह सीने को फुलाते हुए आगे की ओर ऊर्ध्वमुखी खींचे। दृष्टि आकाश की ओर हो। इससे पेट, पेड़ू, गरदन, भुजाओं सबका व्यायाम एक साथ हो जाता है।

लाभ : हृदय बलवान, मेरुदंड तथा इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना को बल मिलता है। पाचन, मल निष्कासन और प्रजनन प्रणालियों के लिए लाभप्रद है। यह पीठ के दरद व अर्द्ध-वृत्ताकार (झुकी हुई) पीठ को ठीक करता है।

क्र. ५ सवितुः (योग मुद्रा)

विधि : अब श्वास छोड़ते हुए पहले की तरह पंजों पर सीधे बैठने की स्थिति में आएँ, साथ ही दोनों हाथ पीछे पीठ की ओर ले जाएँ, व दोनों हाथ की अँगुलियाँ आपस में फँसाकर धीरे-धीरे हाथ ऊपर की ओर खीचें और मस्तक भूमि से स्पर्श कराने का प्रयास 'योगमुद्रा' (चित्र नं०-५) की तरह करें।

(चित्र नं-५)

लाभ : वायुदोष दूर करता है। पाचन संस्थान को तीव्र तथा जठराग्नि को तेज करता है। कोष्ठबद्धता को दूर करता है। यह आसन मणिपूरक चक्र को जाग्रत करता है।

क्र. ६ वरेण्यं (अर्द्ध ताड़ासन)

विधि : अब धीरे-धीरे सिर ऊपर उठाएँ तथा श्वास खींचते हुए दोनों हाथ बगल से आगे लाते हुए सीधे ऊपर ले जाएँ। बैठक में कोई परिवर्तन नहीं। दृष्टि ऊपर करें और हाथों के पंजे देखने का प्रयत्न करें। (चित्र नं०-६) यह 'अर्द्धताड़ासन' की स्थिति है।

(चित्र नं-६)

लाभ : हृदय की दुर्बलता को दूर कर रक्तदोष हटाता है और कोष्ठबद्धता दूर करता है। जो लाभ ताड़ासन से होते हैं, वे ही लाभ इस आसन से भी होते हैं।

क्र. ७ भर्गो (शशांकासन)

(चित्र नं-७)

विधि : श्वास छोड़ते हुए कमर से ऊपर के भाग आगे (कमर, रीड़, हाथ एक साथ) झुकाकर मस्तक धरती से लगाएँ। दोनों हाथ जितना आगे ले जा सकें, ले जाकर धरती से सटा दें। 'शशांकासन' (चित्र नं०-७) की तरह करना है।

लाभ : उदर के रोग दूर होते हैं। यह कूल्हों और गुदा स्थान के मध्य स्थित मांसपेशियों को सामान्य रखता है। साइटिका के स्नायुओं को शिथिल करता है और एड्रिनल ग्रंथि के कार्य को नियमित करता है। कब्ज को दूर करता है।

क्र. ८ देवस्य (भुजंगासन)

विधि : हाथ और पैर के पंजे उसी स्थान पर रखते हुए, श्वास खींचते हुए, कमर उठाते हुए धड़ आगे की ओर ले जाएँ। घुटने जंघाएँ भूमि से छूने

(चित्र नं-८)

दें। सीधे हाथों पर कमर से पीछे धड़ को ऊपर की ओर मोड़ते हुए सीना उठाएँ, गरदन को ऊपर की ओर तानें। चित्र नं०-८ की तरह 'भुजंगासन' जैसी मुद्रा बनाएँ।

लाभ : हृदय और मेरुदंड को बल देता है, वायु दोष को दूर करता है। यह भूख को उत्तेजित करता है तथा कोष्ठबद्धता और कब्ज का नाश करता है। यह जिगर और गुर्दे के लिए लाभदायक है।

क्र. धीमहि (तिर्यक् भुजंगासन बाएँ)

विधि : चित्र नं०-८ की मुद्रा में कोई परिवर्तन नहीं, केवल गरदन पूरी तरह बाएँ ओर मोड़ते हुए दाएँ पैर की एड़ी देखें।

लाभ : भुजंगासन जैसे लाभ अभ्यासकर्त्ता को प्राप्त होते हैं।

क्र. १० धियो (तिर्यक् भुजंगासन दाएँ)

विधि : शरीर की स्थिति पहले जैसे रखते हुए गरदन दाहिनी ओर मोड़ते हुए बाएँ पैर की एड़ी देखें।

लाभ : भुजंगासन जैसे लाभ अभ्यासकर्त्ता को मिलते हैं।

क्र. ११ यो नः (शशांकासन)

विधि : हाथ-पैर के पंजे अपने स्थान पर ही रखे रहें। श्वास छोड़ते हुए घुटना से पैर मोड़ते हुए चित्र क्र० ७ की भाँति शशांकासन की स्थिति में आएँ।

(चित्र नं-९)

लाभ : शशांकासन के अनुसार ही (नंबर ७) लाभ प्राप्त होते हैं।

(चित्र नं-१०)

क्र. १२ प्रचोदयात् (अर्द्ध ताड़ासन)

विधि : यह मुद्रा, मुद्रा क्रमांक ६ की तरह 'अर्द्ध ताड़ासन' की होगी। गहरी श्वास लेते हुए कमर, गरदन, दोनों हाथ उठाएँ। चित्र नं० १० की स्थिति में आएँ।

लाभ : ताड़ासन जैसे लाभ।

क्र. १३ भूः (उत्कटासन)

विधि : इस मुद्रा में पैर के पंजों के बल उत्कट आसन (चित्र नं० ११) की तरह बैठते हैं। सीना निकला हुआ, हाथ पंजे के समीप भूमि छूते हुए, हाथ सीधे या नमस्कार की मुद्रा में रखें। श्वास की गति सामान्य रखें।

(चित्र नं-११)

लाभ : पिंडली मजबूत बनती हैं। शरीर संतुलित होता है।

क्र. १४ भुवः (पाद हस्तासन)

(चित्र नं-१२)

विधि : तलवा धरती से पूरी तरह लगाएँ। घुटने से पैर सीधा करें। कूल्हे उठाएँ। हाथ के पंजों को पैर के पंजों के समीप रखें। श्वास बाहर निकालें। चित्र नं० २ की भाँति पाद हस्तासन में आएँ।

लाभ : मुद्रा नं० २ की तरह वायु दोष दूर होते हैं।

क्र. १५ स्वः (ताड़ासन)

विधि : धीरे-धीरे श्वास खींचते हुए कमर के ऊपर का हिस्सा गरदन, हाथ एक साथ उठाएँ। चित्र नं० १३ की भाँति शरीर को ऊपर की ओर खीचें। दृष्टि आकाश की ओर रखें। यह चारों क्रियाएँ एक साथ होनी चाहिए। यह समूचा व्यायाम चित्र नं० १३ पूर्व ताड़ासन की तरह संपन्न होगा। सहज रूप से जितनी देर में यह क्रिया संभव हो, कर लेने के बाद अगली क्रिया के लिए अगला नं० बोला जाए।

(चित्र नं-१३)

लाभ : मुद्रा नं० १ की तरह हृदय दुर्बलता को दूर कर रक्तदोष ठीक करता है। आलस्य (शरीर का जकड़ना) मिटाता है।

क्र. १६ ॐ : बल की भावना करते हुए सावधान की स्थिति में आना।

(चित्र न-१४)

विधि : ॐ का गुंजन करते हुए हाथों की मुट्ठियाँ कसते हुए बल की भावना के साथ कुहनियाँ मोड़ते हुए, मुट्ठियाँ कंधे के पास से निकालते हुए हाथ के नीचे सावधान की स्थिति में लाना। यह क्रिया श्वास छोड़ते हुए संपन्न करें।

इन सोलहों मुद्राओं के योग से योग व्यायाम का एक चक्र पूरा होता है। पहले क्रमशः एक-एक मुद्रा का अभ्यास कराया जाए। फिर क्रमशः पूरा योग व्यायाम किया-कराया जाए। प्रारंभ में एक-दो बार ही किया जाए। पीछे क्रमशः संख्या बढ़ाई जाती रहेगी। अंत में शवासन (शिथिलीकरण) करें। सामूहिक अभ्यास में एक साथ गति से ड्रिल के अनुशासन का पूरी तरह पालन कराते हुए व्यायाम कराया जाए। जो उस अनुशासन में फिट न बैठते हों, वे व्यक्तिगत अभ्यास करें। सामूहिक समस्वरता नष्ट न करें।

योग व्यायाम की सावधानियाँ

१. शरीर और वस्त्र स्वच्छ रखें।

२. योग व्यायाम शुद्ध हवा में करें, मकान के अंदर करें तो देख लें कि स्थान साफ-सुथरा और हवादार है या नहीं।

३. आसन करते समय किसी का अनावश्यक रूप से उपस्थित होना ठीक नहीं। ध्यान दूसरी ओर खींचने वाली चर्चा वहाँ पर नहीं होनी चाहिए और आसन करने वाले का प्रसन्नचित्त रहना बहुत जरूरी है। प्रातः संध्या स्नान करने के बाद योग व्यायाम करना चाहिए।

४. योगाभ्यास करने वाले को यथासमय प्रातः चार बजे बिस्तर से उठने और रात को दस बजे तक सो जाने की आदत डालनी चाहिए।

५. भोजन अपनी स्थिति के अनुरूप सुसंस्कारी, स्वास्थ्यवर्द्धक और आयु के हिसाब से नियत समय पर प्रसन्न भाव से करना चाहिए। स्वाद के लोभ से अधिक भोजन हानिकारक है।

६. भोजन सादा होना चाहिए, उसमें मिर्च-मसाला न डालें तो अच्छा है। यदि डालना ही हो, तो कम-से-कम डालें। शाक, सब्जी उबली हुई गुणकारी होती है। आटा चोकर सहित और चावल हाथ का कुटा लाभप्रद है।

७. योग व्यायाम करते समय कसे हुए कपड़े नहीं पहनने चाहिए, ढीले कपड़े ही लाभप्रद रहते हैं। अधोवस्त्र चुस्त पहनना उचित है।

८. योग-व्यायाम करने के बाद आधा घंटा विश्राम करके दूध या फल खाए जा सकते हैं। चाय, कॉफी आदि नशीली चीजें हानिकारक हैं।

९. प्रातः या सायं शौच करने के बाद ही योग का अभ्यास करना चाहिए। स्नान के बाद भी कर सकते हैं। किसी भी स्थिति में भोजन के कम-से-कम तीन घंटे पश्चात ही आसन करना उचित है।

१०. अनिद्रा निवारण के लिए शवासन का सतत भाव पूर्ण अभ्यास करना चाहिए।

११. आसनों के चुनाव में आगे झुकने वाले आसनों के साथ पीछे झुकने वाले आसन आवश्यक हैं। जिन्हें पेचिश का रोग हो, उन्हें मेरुदंड को पीछे झुकाकर करने वाले आसन नहीं करने चाहिए। जिनकी आँखें दुःख रही हों या लाल हों उन्हें शीर्षासन नहीं करना चाहिए।

१२. योगाभ्यासरत व्यक्ति को ब्रह्मचर्य (संयम) का पालन दृढ़ता के साथ करना चाहिए। योगाभ्यास के तुरंत ही भारी कार्य नहीं करना चाहिए। योगाभ्यास नियमित रूप से करना चाहिए। ब्रह्मचर्य के लिए स्वाध्याय व सेवा-परायण जीवन

बनाएँ। व्यस्त रहें-मस्त रहें। विचार-भावना का परिष्कार आवश्यक है।

१३. हर साधक को अनेकानेक आसनों में से अपने लिए उपयुक्त आसनों का निर्धारण विशेषज्ञों से करवा लेना चाहिए और उन्हें नियमित करते रहना चाहिए।

कुछ महत्त्वपूर्ण प्राणायाम

ऋषियों की महान देन में से प्राणायाम मनुष्य की प्राणशक्ति को बढ़ाने-अभिवर्द्धन करने हेतु एक महत्त्वपूर्ण विद्या है। प्राणशक्ति के अभिवर्द्धन से सामान्य व्यक्ति भी असाधारण कार्य कर सकता है। संतों-महापुरुषों में प्राण की अधिकता ही उन्हें महान बनाती है। विश्व ब्रह्मांड में प्राण का अनंत सरोवर लहरा रहा है। सामान्य रूप से श्वास-प्रश्वास के साथ काया में उतने ही प्राण का संचार होता है, जिससे शरीर में प्राण टिका रह सके। जीवन में प्राण का विशेष संचार हो, इसके लिए प्राणायाम के प्रयोग किए जाते हैं। प्राणायाम के बहुत प्रकार प्रचलित हैं। प्रतिभा संवर्द्धन के प्रयोगों में प्राणाकर्षण प्राणायाम तथा सूर्यवेधन प्राणायाम की चर्चा की गई है। यहाँ शरीर को स्वस्थ बनाए रखने तथा रोगों के निवारण में अत्यंत लाभकारी कुछ महत्त्वपूर्ण प्राणायामों की चर्चा कर रहे हैं। इन प्राणायामों को किसी प्रशिक्षित व्यक्ति से सीखकर करना ही उचित रहता है। गलत विधि से प्राणायाम करने पर हानि की संभावना भी रहती है।

प्राणायाम हेतु सावधानियाँ :

१. प्राणायाम के लिए स्वच्छ स्थान तथा शुद्ध वायु का होना आवश्यक है। जल के समीप बैठकर प्राणायाम करना अधिक लाभदायक है। पूर्व दिशा में मुँह करके बैठना चाहिए। नगरीय वातावरण में जहाँ वायु प्रदूषित होती है, वहाँ गोघृत अथवा गुग्गुलु जलाकर स्थान को सुगंधित कर लेना चाहिए।

२. सिद्धासन, वज्रासन, पद्मासन या सुखासन में बैठना उपयुक्त रहता है। बैठने के लिए आसन विद्युत का कुचालक होना चाहिए,

जैसे कंबल या कुशा का आसन।

३. खाली पेट प्राणायाम करना चाहिए। भोजन के कम-से-कम पाँच घंटे बाद प्राणायाम करना चाहिए।

४. प्राणायाम के समय मन शांत और प्रसन्नचित्त होना चाहिए। प्राणायाम के बाद शवासन करना चाहिए।

५. गर्भवती महिला, ज्वर रोगी को प्राणायाम नहीं करना चाहिए। दूध, दही, घी एवं फलों का प्रयोग करना चाहिए।

६. श्वास को रोकने और निकालने में हठ नहीं करना चाहिए। सामान्य रूप से प्राणायाम करना चाहिए।

७. प्राणायाम के समय रीढ़ की हड्डी, वक्ष, कमर तथा गरदन सीधा रखकर बैठना चाहिए। प्राणायाम में जल्दबाजी नहीं होनी चाहिए।

भस्त्रिका प्राणायाम

इस प्राणायाम में दोनों नासिका के छिद्रों से श्वास को पूरे वेग के साथ डायाफ्राम तक भरना चाहिए और फिर पूरी शक्ति के साथ उसे बाहर निकालना चाहिए। जिनके फेफड़े और हृदय कमजोर हों उन्हें धीमी गति से प्राणायाम करना चाहिए। इस प्राणायाम में प्राण का संचार केवल वक्ष में होता है। पेट में प्राण का संचार नहीं होना चाहिए। इस प्राणायाम को तीन से पाँच मिनट तक कर सकते हैं। प्राणायाम करते समय जब श्वास अंदर लें तो भावना करें कि ब्रह्मांड में व्याप्त दिव्य शक्ति, प्राण ऊर्जा, पवित्रता, शांति व आनंद हमारे शरीर में प्रवेश पा रहा है और दिव्य शक्तियाँ शरीर के कण-कण में समाहित हो रही हैं। श्वास बाहर निकालते समय भावना करें कि शरीर के कषाय-कल्मष बाहर निकलकर दूर जा रहे हैं।

लाभ :

इस प्राणायाम के करने से फेफड़े, हृदय और मस्तिष्क को शुद्ध प्राणवायु अधिक मात्रा में मिलने से श्वास, दमा, एलर्जी आदि

रोग दूर होते हैं। शरीर से विजातीय द्रव्य बाहर निकलते हैं अत: रक्त शुद्ध होता है। मन शांत रहता है। श्रम की करने की इच्छा करती है। जीवनी शक्ति की वृद्धि होती है।

कपालभाति प्राणायाम

इस प्राणायाम के करने से माथे पर ओज और तेज बढ़ता है। इस प्राणायाम में श्वास को पूरी शक्ति से बाहर फेंका जाता है। श्वास लेने का प्रयास नहीं किया जाता। स्वत: सहज रूप से जो श्वास अंदर आता है, उसे आने देते हैं। इस प्राणायाम को पाँच मिनट तक किया जा सकता है। इस प्राणायाम के साथ भावना करें कि मेरे शरीर के सभी रोग श्वास के साथ बाहर निकल रहे हैं। मानसिक विकार नष्ट हो रहे हैं। इस प्राणायाम में प्राण का संचार केवल पेट में होता है। वायु पेट में भरती है और बाहर निकलती है। अत: पेट बार-बार बाहर-भीतर होता है।

लाभ :

इस प्राणायाम से मुखमंडल के चारों ओर ओज और तेज बढ़ता है तथा सौंदर्य की वृद्धि होती है। मोटापा, मधुमेह, कब्ज, अम्ल-पित्त, वृक्क तथा प्रोस्टेट के अनेक रोगों में लाभ होता है। शरीर का वजन कम करने में यह प्राणायाम अत्यंत लाभकारी है। मन शांत और प्रसन्न रहता है। विरोधी विचार नष्ट होते हैं और रोगी अवसाद से मुक्ति पाता है। पाचन तंत्र को सबल बनाने में यह प्राणायाम अत्यंत लाभदायक है।

अनुलोम-विलोम प्राणायाम

दाहिने हाथ का अँगूठा दाएँ नासा छिद्र पर तथा तर्जनी और मध्यमा उँगलियाँ मिलकर बाएँ नासा छिद्र पर रखते हैं। पहले बाएँ नासा छिद्र से श्वास अंदर भरते हैं और दाहिने नासा छिद्र से बाहर निकालते हैं। फिर दाहिने नासा छिद्र से श्वास अंदर भरते हैं और बाएँ नासा छिद्र से बाहर निकाल देते हैं। अर्थात जिस नासा छिद्र से श्वास निकाली जाती है, उसी से ली जाती है। नासा छिद्रों को

खोलने और बंद करने का काम एक ओर अँगूठा और दूसरी ओर तर्जनी व मध्यमा मिलकर करते रहते हैं। प्रारंभ में यह प्राणायाम धीमी गति से फिर अभ्यास के बाद मध्यम गति से और फिर तीव्र गति से भी करते हैं। प्राणायाम करते समय भावना करें कि बाईं ओर स्थित इड़ा नाड़ी तथा दाहिनी ओर स्थित पिंगला नाड़ियों में श्वास का घर्षण तीव्र गति से हो रहा है और मध्य में स्थित सुषुम्ना नाड़ी जाग्रत हो रही है। मूलाधार से लेकर सहस्रार चक्र तक एक दिव्य ज्योति का संचार हो रहा है, जो कुंडलिनी में स्फुरणा पैदा कर रहा है। भावना करें कि हमारे चारों ओर परमात्मा की दिव्य शक्ति और दिव्य ज्ञान समाहित है। यह शक्ति हमारे शरीर, मन और आत्मा को आलोकित कर रही है।

लाभ :

इस प्राणायाम से संपूर्ण नाड़ियाँ शुद्ध होती हैं और शरीर स्वस्थ और मजबूत बनता है। तीनों दोषों का नाश होता है। आम-वात, गठिया, स्नायु-दुर्बलता, वात रोग, धातु रोग, अम्ल-पित्त, पुराना नजला, श्वास आदि कफ रोग दूर होते हैं। रक्त की शिराओं में आया हुआ अवरोध दूर होता है। कोलेस्ट्रॉल, एच. डी. एल. या एल. डी. एल. नियमित हो जाते हैं।

भ्रामरी प्राणायाम

मध्यमा और अनामिका उँगलियों को मिलाकर नासिका की जड़ में आँख के पास रखकर थोड़ा दबाते हैं। अँगूठों से दोनों कानों को बंद कर लेते हैं फिर भौंरे की तरह गुंजन करते हैं। पहले श्वास पूरा भर लेते हैं फिर गुंजन करते हुए श्वास बाहर निकाल देते हैं। भावना करते हैं कि परमात्मसत्ता के साथ हमारी चेतना एक रूप होती जा रही है। परमात्मा की करुणा और आनंद बरस रहा है। आज्ञा चक्र में प्रकाश उत्पन्न होकर अज्ञान को दूर कर रहा है। गुंजन की ध्वनि मस्तिष्क में आज्ञा चक्र एवं सहस्रार चक्र को जाग्रत कर रही है।

लाभ :

इस प्राणायाम के करने से मन की चपलता दूर होती है। मानसिक तनाव, उत्तेजना, उद्विग्नता, उच्च रक्तचाप में लाभ होता है।

ॐकार ध्वनि

ॐ परमात्मा का प्रकृति द्वारा स्वतः उच्चारित नाम है। यह ध्वनि ब्रह्मांड में हर समय गूँजती रहती है। यही ब्रह्मांड का संचालन करती है। यह एक दिव्य शक्ति है। यह प्राणायाम करते समय पहले धीरे-धीरे श्वास को पूरा भर लेते हैं और फिर ॐ का स्वर उच्चारित करते हुए श्वास को बाहर निकालते हैं। यह क्रिया पाँच बार करनी चाहिए। भावना करें कि ॐ की ध्वनि हमारे मस्तिष्क में घूम रही है। मस्तिष्क को बलवान बना रही है, स्मरण शक्ति को बढ़ा रही है और मन को दिव्य संकल्प से ओत-प्रोत कर रही है। साधक दिव्य आनंद को प्राप्त करता हुआ समाधि की ओर अग्रसर हो रहा है। सोते समय इसी प्रकार ध्यान करते हुए सोने से बुरे स्वप्नों से छुटकारा मिलता है और नींद शीघ्र आती है।

नाड़ी शोधन प्राणायाम

नाड़ी शोधन प्राणायाम के लिए बाएँ नासिका से श्वास ग्रहण करें और उसी से छोड़ें। श्वास लेना पूरक, अंदर रोकना अंतःकुंभक, श्वास बाहर निकालना रेचक और बाहर रोकना बाह्यकुंभक कहलाता है। इनमें क्रमशः २ : १ : २ : १ के अनुपात में समय लगना चाहिए। यह क्रम तीन बार दोहराना चाहिए। फिर यही क्रम दाहिने स्वर से अपनाएँ। फिर दोनों नासिका छिद्रों से पूरक और मुँह से रेचक करना चाहिए। यह एक प्राणायाम माना जाता है। इस प्रकार यह क्रिया ३ बार करें।

लाभ :

इस प्राणायाम से इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना नाड़ी में प्राण का प्रवाह संतुलित किया जाता है। फलस्वरूप समस्त नाड़ी तंत्र

का शोधन हो जाता है। हर श्वास के साथ दिव्य प्राण संचार और प्रश्वास के साथ विकारों के बाहर फेंके जाने की धारणा की जाती है।

नोट : उच्चस्तरीय योग साधना, प्राणायाम, आसन की विस्तृत जानकारी हेतु किसी भी संजीवनी विद्या शिविर में शांतिकुंज, हरिद्वार आकर प्रशिक्षण ले सकते हैं। यहाँ आने से पूर्व पत्राचार द्वारा स्वीकृति अवश्य प्राप्त कर लें। योगासन तथा प्राणायामों से कई बार साधकों को लाभ प्राप्त नहीं होता है। उसका कारण महर्षि पतंजलि द्वारा बताए गए अष्टांग योग के प्रथम और द्वितीय चरण यम और नियम की जानकारी न होना है। साधकों को युग ऋषि परमपूज्य पं० श्रीराम शर्मा द्वारा रचित पुस्तक 'यम और नियम' अवश्य पढ़नी चाहिए। पाँच यम और पाँच नियमों का पालन करने पर आसन और प्राणायाम निश्चय ही चमत्कारी प्रभाव दिखाते हैं। आसन और प्राणायाम में निष्णात व्यक्तियों को योग की अगली क्रियाओं प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि के संबंध में जानकारी करने के लिए पूज्यवर द्वारा रचित पुस्तक 'प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि' का अध्ययन अवश्य करना चाहिए।

न तो कभी निराश हो और न कभी हार मानो। उठो, खड़े हो जाओ और संघर्ष करो, जब तक विजयी न हो जाओ।

भारतीय संस्कृति का स्वरूप और उसकी विशेषताएँ

जीवन जीने की कला का नाम संस्कृति है। भारतीय संस्कृति से हमारा तात्पर्य उन मूलभूत विचारों से है, जिन पर आचरण करने से मनुष्य सभ्य, शिष्ट और संस्कारवान बन सकता है। मनुष्य के अच्छे-बुरे संस्कार ही उसकी उन्नति और अवनति का कारण बनते हैं। अच्छे संस्कारों से मनुष्य में सद्भावना और सद्गुणों का विकास होता है। कुसंस्कारों की चपेट में मनुष्य पतन के गर्त में गिरता चला जाता है। संस्कृति मनुष्य के सामाजिक व्यवहारों को निश्चित करती है तथा जीवन के आदर्शों को प्रकाश देती है। निष्काम भाव से पूर्णता की ओर बढ़ चलने की दिशा बताती है। जो सभ्य है, वह सुसंस्कृत है। सभ्यता और संस्कृति परस्पर पूरक हैं। मनुष्य के अच्छे-बुरे, शुभ-अशुभ विचार उसकी सभ्यता के परिचायक होते हैं और व्यवहार उसकी संस्कृति का परिचय देते हैं। इस प्रकार एक ओर तो संस्कृति सभ्यता का परिणाम है और दूसरी ओर सभ्यता प्रत्येक समाज और राष्ट्र की संस्कृति का व्यावहारिक पहलू है।

वस्तुतः संस्कृति ही किसी समाज या राष्ट्र की अमूल्य निधि होती है। इसी के आधार पर चरित्रवान व्यक्तित्व ढलते हैं, जो प्रकाश स्तंभ की तरह सदैव जीवन के भटकावों में रास्ता दिखाते हैं। वह राष्ट्र सचेत होता है, जिसमें बहुसंख्यक नागरिक चरित्रवान और सुसंस्कृत होते हैं।

मनुष्य काल-कवलित होते रहते हैं। समाज बनते और बिगड़ते रहते हैं, किंतु संस्कृति समय की गोद में पलती रहती है। वह अनेक उत्थान-पतन, आघात-अवरोधों के बीच से गुजरती है। एक लंबी यात्रा में उसका रूप निखर पाता है। शनैःशनैः उसके मूल्य इतने शाश्वत और प्रगाढ़ हो जाते हैं कि फिर बड़े-से-बड़े झंझावात भी इसे डिगा नहीं सकते। कितने ही क्रूर-धर्मी शासकों ने भारत पर धावा बोला। वे राज्य तो कर गए, पर भारत की संस्कृति में सेंध नहीं लगा पाए, बल्कि इसका गुणगान ही करते रहे और न जाने कितने तो इसी में समाविष्ट हो गए। इसी के रंग में रँग गए। इस महानता के कारण ही भारत की संस्कृति अजेय बनी रही। वस्तुतः संस्कृति किसी राष्ट्र का प्राण है। उसी से वह जीवंत और जाग्रत बनता है। किसी भी समाज और राष्ट्र की सामाजिक प्रथाएँ, आचार-विचार, व्यवहार, पर्व-त्योहार, सामुदायिक जीवन का संपूर्ण ढाँचा संस्कृति की नींव पर ही खड़ा रहता है। जब संस्कृति में विकृति आने लगती है, तब उस राष्ट्र का आंतरिक और बाह्य ढाँचा भी चरमरा जाता है।

भारत की संस्कृति प्राचीन है। भारत से ही समूचे विश्व को आध्यात्मिक प्रकाश मिला है। आचार्य पं० श्रीराम शर्मा जी द्वारा लिखित पुस्तक **'समस्त विश्व को भारत के अजस्र अनुदान'** इसकी साक्षी है। भारतीय संस्कृति के अवशेष आज भी समुद्र पार तक अनेक देशों में देखे जा सकते हैं। भारत में अध्यात्म की जड़ें बहुत गहरी हैं। खान-पान, सोना-उठना, बैठना, शौच-स्नान, यात्रा, विवाह, तीज-त्योहार, पर्व-उत्सव, जन्म-मरण सबका आधार अध्यात्म ही है। जीवन का कोई ऐसा पहलू नहीं, जिसमें अध्यात्म का समावेश न हो।

जहाँ तक ईश्वर विषयक मान्यताओं का प्रश्न है। भारतीय संस्कृति में किसी मान्यता पर कोई प्रतिबंध नहीं है। यह इसकी विशालता ही है कि यहाँ बहुदेववाद को भी स्वीकार किया गया है।

प्रत्येक व्यक्ति अपने निजी तौर-तरीकों से कोई भी उपासना-पद्धति अपनाने के लिए पूर्ण स्वतंत्र है। विशेषता यह है कि सब अलग-अलग रास्तों से एक ही लक्ष्य (परमात्मा) की ओर अग्रसर होते हैं। किसी-से-किसी का कोई विरोध नहीं।

प्राचीन तत्त्वदर्शी ऋषियों ने एक ऐसी विचार-पद्धति और कार्य-प्रणाली विकसित की थी, जिसे अपनाकर मनुष्य स्वयं अमन-चैन से रहकर अपने संपर्क में आने वाले व्यक्तियों की सुख-शांति में भी वृद्धि कर सकता है। यह तत्त्वज्ञान समस्त विश्व के लिए था। चूँकि इसका अन्वेषण भारत में हुआ, इसलिए इसे भारतीय संस्कृति कहा गया। भारत की यह संस्कृति किसी देश, जाति अथवा संप्रदाय तक सीमित नहीं है, अपितु मानव मात्र के लिए समान रूप से कल्याणकारी है।

सुख-शांति—भारतीय संस्कृति ने मनुष्य को इंद्रियों की उछलकूद और विषय-वासनाओं की तृप्ति में सुख खोजने की झूठी तृप्ति से सदैव सचेत किया है। उसने वस्तुओं में सुख खोजने की अपेक्षा आंतरिक सुख-संतोष के ऐसे पाठ पढ़ाए हैं, जो उसे भौतिक सुख की अपेक्षा आंतरिक आनंद उपलब्ध कराने में सहायक हुए हैं। उसने सुख का आधार वस्तु नहीं, बल्कि व्यक्ति की अंत:स्थिति को माना है। वस्तुत: सुख मनुष्य की वह आंतरिक स्थिति है, जो उसे वर्तमान से संतुष्ट, पर भावी विकास के लिए संघर्षशील बनाती हुई उसमें आंतरिक श्रेष्ठता बढ़ाती है। इस मन:स्थितिके कारण ही वह मृगतृष्णा के भटकाव से बचता है और सदैव सदाचार में सुख की अनुभूति करता है।

उदारता—भारतीय ऋषि-मनीषियों, तत्त्वदर्शियों ने जीवन में त्याग को सर्वोपरि महत्त्व दिया, क्योंकि त्याग-भावना ही दूसरों के लिए उदारता का भाव पैदा करती है। इसीलिए जीवन में कृपणता के बजाय उदारता का महत्त्व समझा गया। इससे सहयोग के साथ-साथ आत्मीयता भी विकसित हुई। यही कारण है कि भारत में सदा

दूसरों के साथ उदारता का ही भाव विकसित होता रहा। जिन्होंने कभी कष्ट भी पहुँचाया, उन्हें भी क्षमादान ही मिलता रहा। प्राणीमात्र को प्यार करना, भारतीय संस्कृति की विशेषता है।

सद्भावना का विकास–भारतीय संस्कृति मनुष्य में सद्भावनाओं के विकास पर अधिक जोर देती है। उसका नारा है–हम दूसरों के साथ वह व्यवहार नहीं करेंगे, जो हमें अपने लिए पसंद नहीं। वस्तुतः भावनाएँ और आस्थाएँ ही विचारों को जन्म देती है और विचार ही मनुष्य के आचरण को प्रभावित करते हैं। इसलिए आचरण की श्रेष्ठता और पवित्रता बनाए रखने के लिए जीवन में सद्भावनाओं को विकसित करने पर सर्वाधिक बल दिया गया।

सबके दुःख में दुखी और सबके सुख में सुखी होना। मिल-बाँटकर खाना, पारमार्थिक जीवन जीना, सबके सुख की प्रार्थना करना। **सर्वे भवन्तु सुखिनः** इस प्रकार का सर्वहितकारी चिंतन और व्यवहार, भारतीय संस्कृति की मूल विशेषता है।

नैतिकता-सच्चरित्रता–चरित्रबल से संपन्न नागरिक ही किसी राष्ट्र की सच्ची संपत्ति होते हैं। उनका चरित्र ही समाज को श्रेष्ठ और समुन्नत बनाता है। भारतीय संस्कृति ने नर-नारी की पवित्र दृष्टि पर बहुत बल दिया, नारी को पूज्यभाव से देखा। हमारे ऋषियों ने यहाँ तक कहा कि जहाँ नारी के प्रति पूज्य भाव होता है, वहाँ देवता निवास करते हैं–'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः'।

इंद्रिय संयम को सच्चरित्रता की पुखता नींव कहा गया। ब्रह्मचर्य व्रत का पालन और आत्मिक विकास को श्रेष्ठ साधना माना गया। नागरिकता, नैतिकता और सच्चरित्रता के गुणों का निरंतर विकास करना भारतीय संस्कृति की अपनी निजी विशेषता है।

कर्मफल का सिद्धांत–भारतीय संस्कृति की मान्यता है कि जो जैसा करता है, वह वैसा ही फल भोगता है। दुष्कर्म से दुःख और सत्कर्म से सुख की प्रबल मान्यता है। **बोया पेड़ बबूल का आम कहाँ से खाय।** कर्मफल के इस सिद्धांत ने मनुष्य को

पापकर्म और जघन्य अपराधों से बचाया है। उसे श्रेष्ठ कर्मों के प्रति आस्थावान बनाया है।

अनेकता में एकता—भारतीय संस्कृति की यह एक ऐसी विशेषता है, जिसने तरह-तरह की वेश-भूषा, खान-पान, रहन-सहन, रीति-रिवाज, पूजा-स्थल, उपासना पद्धति और विभिन्न मान्यताओं में भी जीवन के शाश्वत सत्यों को पहचाना है और उनके प्रति सभी एक्य भाव से समर्पित हैं।

सर्वधर्म समभाव—यह भारतीय संस्कृति की ही देन है। यहाँ मंदिर, मस्जिद, गिरजाघर, गुरुद्वारा, काबा, काशी सबके प्रति सब में समान आदर का भाव है। यही वह देश है जहाँ अपने-अपने ढंग से पूजा-उपासना के लिए देवताओं का बँटवारा भले ही हुआ, परंतु हृदय का बँटवारा कभी नहीं हुआ। यही कारण है कि क्रिया-पद्धति के आधार पर बँटे हुए देवता हृदय के स्तर पर सब साझे के ही हैं। भारतीय संस्कृति भारत की ही नहीं अपितु पूरे विश्व की संस्कृति है, मानव मात्र की संस्कृति है।

प्रिय छात्रो एवं युवाओ,

आशा है यह पुस्तक आपको उपयोगी लगी होगी। इस पुस्तक से जो प्रेरणाएँ मिली हैं, उन्हें अपने स्वभाव का अंग बनाएँ। यह पुस्तक आप अपने मित्रों को उनके जन्मदिन, नववर्ष, होली-दीपावली, क्रिसमस, लोहड़ी, ईद आदि पर्वों पर उपहार में भेंट कर सकते हैं।

व्यवस्थापक

युग निर्माण योजना, मथुरा

मार्ग अनेक–मंजिल एक

मनुष्य सृष्टि का सर्वश्रेष्ठ प्राणी माना गया है, परंतु स्रष्टा ने उसके अंदर की इच्छाशक्ति को प्रबल कर, दो रास्ते बना दिए हैं। उसे इस बात में स्वतंत्र बना दिया गया है कि वह चाहे तो अधोगामी प्रवृत्ति अपनाकर पशुतुल्य जीवन जिए अथवा उत्कृष्ट जीवन अपनाकर देवोपम एवं सर्वश्रेष्ठ जीवन को अंगीकार करे। अतः विवेकशीलता ही मनुष्य का परम धर्म है। इसके आधार पर ही वह भले-बुरे के बीच अंतर समझकर श्रेष्ठता-महानता के मार्ग पर अग्रसर होता है। मनुष्य अपने विवेक के आधार पर ही जीवन के रहस्यों को समझता है। शरीर को ही सब कुछ न मानकर वह आत्मा के अस्तित्व को भी स्वीकार करता है। शरीर उपभोग हेतु मिला है, परंतु आत्मा आदर्श को ही अपनाती है। उपभोग और आदर्श दोनों में संतुलन बिठाना ही धर्म का लक्ष्य है, विवेक की परिणति है। दूसरे शब्दों में सदाचरण, आदर्शवादी व्यक्तित्व ही धर्म का पर्याय है।

मानव जीवन को देवोपम बनाने के लिए धर्म विशेषज्ञों व महामनीषियों ने कुछ सिद्धांतों, दर्शनों को प्रतिपादित किया है। उन्होंने वह मार्ग सुझाए हैं, जिससे व्यक्ति द्रुतगति से श्रेष्ठता की दिशा में अग्रसर हो सकता है। हर समाज में ऐसे व्यक्ति होते आए हैं। उन सबने प्रायः एक ही तरह के सिद्धांतों को पूरे विश्व समुदाय के लिए प्रस्तुत किया है। आंशिक विभिन्नताएँ मात्र कर्मकांडपरक हैं, जो विभिन्न परिस्थितियों व सामाजिक संरचनाओं के आधार पर निर्धारित की गई हैं। मुख्य उद्देश्य सबों का एक ही है।

आज संसार में प्रमुख ग्यारह मजहब अथवा धर्म मत हैं। वे इस प्रकार हैं–जापान का शिन्तो मत, चीन का ताओ मत, चीन का ही कन्फ्यूशियस मत, हिंदुस्तान का वैदिक मत, बौद्ध मत, जैन मत, सिक्ख मत, यहूदी मत, ईसाई मत तथा इस्लाम मत। ये सब वस्तुत: एक ही धर्म-संदेश को विभिन्न रूपों में समझाने का प्रयास हैं। ये सभी मत हैं, स्वयं धर्म नहीं। धर्म तो मूलत: व्यक्ति के मनुष्यत्व में, उसकी विवेकशीलता में सन्निहित है। धर्म का वास्तविक अर्थ है–कर्त्तव्यनिष्ठा, उत्कृष्ट चिंतन, आदर्श कर्त्तव्य। प्रकारांतर से इन्हीं सिद्धांतों की पुष्टि विभिन्न मतों के माध्यम से की जाती है।

जापान का शिन्तो मत पवित्रता को धर्म का प्रधान गुण मानता है। उसके अनुसार निश्छलता पवित्रता का प्रमुख अंग है तथा ईश्वर प्राप्ति का राजमार्ग भी। इस मतानुसार निर्धारित दैनिक प्रार्थना का भाव इस प्रकार है–"हमारी आँखें भले ही अपवित्र वस्तु देखें, किंतु हे भगवान! हृदय में अपवित्र बातों का उदय न हो। हमारे कान भले ही अपवित्र बात सुनें, किंतु हमारे चित्त में अपवित्र बातों का अनुभव न हो।" अपनी पूजा पद्धति में भी शिन्तो संप्रदाय ने मनोनिग्रह हेतु ध्यान तथा पवित्रता हेतु मंत्रोच्चार को व्याहृत किया है।

ताओ मत के अनुसार ईश्वर को प्राप्त करने के लिए पवित्रता, विनय, संतोष, करुणा, प्राणि मात्र के प्रति दया, सच्चा ज्ञान और आत्मसंयम मुख्य माध्यम हैं। इनकी प्राप्ति हेतु ध्यान और प्राणायाम उपयोगी प्रक्रियाएँ हैं। ताओ मत में लोगों के लिए संदेश इस प्रकार प्रकट किए गए हैं–"मेरे पास तीन वस्तुएँ हैं, जिन्हें मैं दृढ़तापूर्वक सँजोता रहता हूँ–सौम्यता (दयालुता), मितव्ययता तथा नम्रता।"

कन्फ्यूशियस चीन के सुविख्यात धर्म प्रचारक एवं सिद्ध पुरुष हो चुके हैं। उन्होंने अपने दर्शन में मुख्यत: मानव-जीवन को उत्कृष्टतम बनाने की बात कही है। वे प्राय: कहा करते थे–"जब तुम्हें यह ज्ञान नहीं कि मनुष्य की सेवा किस प्रकार की जाए, तब

देवों की सेवा के संबंध में कैसे पूछ सकते हो?'' उनका एकमात्र संदेश मानव मात्र के प्रति यही था कि वैयक्तिक उन्नति जीवन का लक्ष्य नहीं, वह तो सामाजिक उन्नति का फल है। उसके अनुसार पूर्ण धर्म वह है, जब तुम बाहर निकलो तो प्रत्येक से यह समझकर मिलो मानो वह तुम्हारा अतिथि है। उनका उपदेशामृत यह था कि सदाचार के प्रति निष्ठा, सौंदर्य के प्रति अनुराग हृदय से होना चाहिए। मनुष्य का हृदय आइने के सदृश होना चाहिए, जिस पर समस्त वस्तुओं का प्रतिबिंब पड़ता है, किंतु उससे उसमें मैलापन नहीं आता।

वेदांत दर्शन यह सिद्धांत प्रतिपादित करता है कि मूल में सारा जगत एक है, जिसे इस एकत्व का दर्शन हो जाता है, उसकी दृष्टि में स्वार्थ और परमार्थ में भेद नहीं रह जाता है। इस दिव्य दृष्टि की परिणति सबको अपने में तथा अपने को सब में देखने के रूप में होती है। उसके हृदय से 'आत्मवत सर्वभूतेषु तथा वसुधैव कुटुंबकम्' का अंतर्नाद गुंजित होने लगता है। वह व्यष्टि से समष्टि की ओर अग्रसर हो जाता है तथा सबके कल्याण में अपना कल्याण समझने लगता है। तभी तो वैदिक काल के ऋषियों ने यह घोषणा की थी।

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखमाप्नुयात्।

भगवान बुद्ध ने स्वयं के जीवन को उदाहरण रूप में प्रस्तुत करके लोगों को पवित्र व श्रेष्ठ जीवन जीने की प्रेरणा दी थी। दुःख के निरोध हेतु वे तृष्णा को सर्वतोभाव से परित्याग करने का संदेश देते थे। उनका कहना था कि राग के समान आग नहीं, द्वेष के समान ग्रह नहीं, मोह के समान जाल नहीं और तृष्णा के समान अगम नदी नहीं। अतः बुद्ध सदाचरण को ही महत्त्व देते थे। उन्होंने कहा भी था कि, ''धर्मग्रंथों का कितना ही पाठ करें, लेकिन यदि प्रमाद के कारण मनुष्य उनके अनुसार आचरण नहीं करता, तो

दूसरे की गौएँ गिनने वाले ग्वाले की तरह वह श्रमणत्व (ब्राह्मणत्व) का भागी नहीं होता।''

जैन मत का सिद्धांत मुख्य रूप से यह है कि किसी भी कार्य में सफलता प्राप्त करने के लिए तीन बातों की आवश्यकता होती है–श्रद्धा, ज्ञान और क्रिया। जैन शास्त्रों में इसे सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान और सम्यक् चरित्र के रूप में उल्लेखित किया है।

गुरुनानक देव ने सिक्ख धर्म रूपी ऋषि परंपरा का शुभारंभ किया था तथा गुरु गोविंदसिंह जी ने इसे प्रगतिशील बनाया था। तत्कालीन राष्ट्रीय समस्या को देखते हुए गुरु गोविंदसिंह जी ने सभी अनुयायियों को राष्ट्र व मानवता हेतु अपनी आहुति, अपना बलिदान प्रस्तुत करने को कहा था। उस परंपरा को आगे भी बनाए रखने के लिए उन्होंने प्रत्येक सिक्ख को 'माला और भाला' साथ रखने का, अनीति से सदैव जूझते रहने का संदेश दिया।

पारसी धर्म के प्रवर्त्तक जरथ्रुस्त्र हुए हैं। उनके द्वारा प्रतिपादित धर्मनीति के मुख्य चरण हैं–हुमत अर्थात उत्तम विचार, हुख्त अर्थात उत्तम वचन और हुश्वर्त अर्थात उत्तम कार्य। ईश्वर के साक्षी व प्रेरक रूप हेतु उन्होंने अग्नि को स्वीकृत किया तथा अग्नि की तरह प्रखर, प्रकाशवान, ऊर्ध्वगामी व परोपकारी वृत्ति का बनने की प्रेरणा दी।

यहूदी मत का मूल दर्शन–ईश्वर के एकत्व, ईश्वर की पवित्रता तथा उसकी निराकारिता में सन्निहित है। संसार के दो मुख्य मत–ईसाई और इस्लाम इसी से प्रस्फुटित हुए हैं।

ईसाई मत के अनुसार प्रेम ही परमेश्वर है। प्रेम ही पूजा-आराधना है, उसकी परिणति है। अपनी प्रार्थना में हर ईसाई यह कहता है–''परमात्मन! मुझे अपनी राह दिखा। अपने संबंध में ज्ञान करा और सत्य मार्ग पर मुझे चला। मेरी मुक्ति का ईश्वर तू ही है। मेरा ज्ञानचक्षु खोल, जिससे मैं तेरी प्रेमपूर्ण आश्चर्यजनक कृतियों को समझ सकूँ।'' ईसाई मत के मूलाधार

तो स्वयं ईसा हैं, जिन्होंने मानवता एवं आदर्श हेतु अपना बलिदान प्रस्तुत किया था।

इस्लाम मत के संस्थापक हजरत मुहम्मद ने प्रत्येक मुसलमान को सदाचारी, कर्त्तव्यपरायण बनने का उपदेश जीवन भर दिया। 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की तरह उनकी घोषणा थी कि हर इंसान अल्लाह का कुनवा है। तभी तो वे पुनः यह कहते पाए जाते हैं कि आओ! तुम और हम मिलकर उन चीजों पर मेल कर लें, जो हम दोनों में एक-सी हैं।

इन तथ्यों के आधार पर धर्म के मूलभूत दर्शन में कहीं भी कोई भिन्नता नहीं नजर आती। आज धार्मिक मान्यताओं के नाम पर होने वाले संघर्ष तथा आपाधापी को अज्ञानताजन्य कृत्य ही कहा जा सकता है। यह एक विडंबना ही है कि लोग अपने मतों तथा धर्म-प्रवर्तकों की दुहाई देते हैं, पर उनके दर्शन तथा आदर्श को अपने जीवन में ढाल नहीं पाते। यदि चिंतन में उत्कृष्टता, चरित्र में आदर्शवादिता तथा व्यवहार में शालीनता का समन्वय किया जा सके तो धर्म का वह स्वरूप प्रकट होगा जहाँ विभेद नहीं, एकत्व स्थापित होगा। संघर्ष नहीं वरन सर्वत्र प्रेम, सहकार, उदारता व समर्पण का साम्राज्य होगा।

अपना मूल्यांकन भी करते रहें

अपना मूल्यांकन करने के लिए प्रत्येक छात्र/युवक को स्वयं से निम्न प्रश्न पूछने चाहिए। प्रश्नों के उत्तर नोट करें, उन पर बार-बार विचार करके जो त्रुटियाँ दृष्टिगोचर हों उन्हें सुधारने का प्रयत्न नित्य ही करना चाहिए।

(१) समय जैसी जीवन की बहुमूल्य निधि का सदुपयोग करते हैं। हाँ/नहीं

(२) आलस्य और प्रमाद में समय की बरबादी करते हैं। हाँ/नहीं

(३) अपना अमूल्य समय शरीर की सजावट में नष्ट करते हैं। हाँ/नहीं

(४) अपने लक्ष्य की प्राप्ति का आपको ध्यान है। हाँ/नहीं

(५) सफलता के दो सूत्र, दृढ़ संकल्प और कठिन परिश्रम को स्मरण रखते हैं। हाँ/नहीं

(६) स्वयं अपने, परिवार, समाज, देश, धर्म और संस्कृति के प्रति अपने कर्त्तव्य का पालन करते हैं। हाँ/नहीं

(७) अपनी विचारधारा और गतिविधियों को विवेक के अनुसार निर्धारित करते हैं। हाँ/नहीं

(८) अपने मनोविकारों और कुसंस्कारों के शमन करने के लिए स्वयं से संघर्ष करते हैं। हाँ/नहीं

(९) कटु भाषण, छिद्रान्वेषण और अशुभ कल्पनाएँ छोड़कर सदा संतुष्ट, प्रयत्नशील और हँसमुख रहते हैं। हाँ/नहीं

(१०) शरीर, वस्त्र, घर तथा वस्तुओं को स्वच्छ एवं सुव्यस्थित रखने का अभ्यास करते हैं। हाँ/नहीं

(११) श्रम को देवता मानकर श्रम से कभी जी नहीं चुराते हैं। हाँ/नहीं

(१२) आहार सात्त्विकता प्रधान होता है। माँस, मछली, अंडा जैसे अखाद्य पदार्थों का सेवन नहीं करते हैं। हाँ/नहीं

(१३) चटोरपन की आदत छोड़ी जा रही है। हाँ/नहीं

(१४) सप्ताह में एक समय का उपवास, जल्दी सोना, जल्दी उठना, आवश्यक ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं। हाँ/नहीं

(१५) ईश्वर उपासना, आत्मचिंतन एवं स्वाध्याय को अपने नित्य नियम में स्थान देते हैं। हाँ/नहीं

(१६) फिजूलखर्ची की आदत को छोड़ रहे हैं। हाँ/नहीं

(१७) तम्बाकू, शराब, चाय, कॉफी, ताश, ज्यादा टी.वी. देखना आदि दुर्व्यसनों से ग्रस्त हैं। हाँ/नहीं

(१८) नियमित आसन-प्राणायाम का अभ्यास करते हैं। हाँ/नहीं

(१९) प्रतिभा संवर्द्धन के अभ्यास नियमित करते हैं। हाँ/नहीं
(२०) इस पुस्तक को स्वयं पढ़ते हैं एवं दूसरों को पढ़ने के लिए उपलब्ध कराते हैं। हाँ/नहीं
(२१) अगले पृष्ठ पर मुद्रित युग निर्माण सत्संकल्प का पाठ धीरे-धीरे चिंतन-मनन के साथ प्रायः करते रहते हैं। हाँ/नहीं
(२२) प्रतिदिन स्वाध्याय के लिए 'ऋषि चिंतन के सान्निध्य में' ग्रंथ का एक पृष्ठ पढ़ते हैं। युग निर्माण सत्संकल्प के सूत्रों की विस्तृत व्याख्या हेतु 'इक्कीसवीं सदी का संविधान' पुस्तक पढ़ते हैं। हाँ/नहीं

□

हमारा युग निर्माण सत्संकल्प

- हम ईश्वर को सर्वव्यापी, न्यायकारी मानकर उसके अनुशासन को अपने जीवन में उतारेंगे।
- शरीर को भगवान का मंदिर समझकर आत्मसंयम और नियमितता द्वारा आरोग्य की रक्षा करेंगे।
- मन को कुविचारों और दुर्भावनाओं से बचाए रखने के लिए स्वाध्याय एवं सत्संग की व्यवस्था रखे रहेंगे।
- इंद्रिय संयम, अर्थ संयम, समय संयम और विचार संयम का सतत अभ्यास करेंगे।
- अपने आपको समाज का एक अभिन्न अंग मानेंगे और सबके हित में अपना हित समझेंगे।
- मर्यादाओं को पालेंगे, वर्जनाओं से बचेंगे, नागरिक कर्त्तव्यों का पालन करेंगे और समाजनिष्ठ बने रहेंगे।
- समझदारी, ईमानदारी, जिम्मेदारी और बहादुरी को जीवन का एक अविच्छिन्न अंग मानेंगे।

- चारों ओर मधुरता, स्वच्छता, सादगी एवं सज्जनता का वातावरण उत्पन्न करेंगे।
- अनीति से प्राप्त सफलता की अपेक्षा नीति पर चलते हुए असफलता को शिरोधार्य करेंगे।
- मनुष्य के मूल्यांकन की कसौटी उसकी सफलताओं, योग्यताओं एवं विभूतियों को नहीं, उसके सद्विचारों और सत्कर्मों को मानेंगे।
- दूसरों के साथ वह व्यवहार नहीं करेंगे, जो हमें अपने लिए पसंद नहीं।
- नर-नारी के प्रति परस्पर पवित्र दृष्टि रखेंगे।
- संसार में सत्प्रवृत्तियों के पुण्य प्रसार के लिए अपने समय, प्रभाव, ज्ञान, पुरुषार्थ एवं धन का एक अंश नियमित रूप से लगाते रहेंगे।
- परंपराओं की तुलना में विवेक को महत्त्व देंगे।
- सज्जनों को संगठित करने, अनीति से लोहा लेने और नवसृजन की गतिविधियों में पूरी रुचि लेंगे।
- राष्ट्रीय एकता एवं समता के प्रति निष्ठावान रहेंगे। जाति, लिंग, भाषा, प्रांत, संप्रदाय आदि के कारण परस्पर कोई भेदभाव न बरतेंगे।
- मनुष्य अपने भाग्य का निर्माता आप है-इस विश्वास के आधार पर हमारी मान्यता है कि हम उत्कृष्ट बनेंगे और दूसरों को श्रेष्ठ बनाएँगे, तो युग अवश्य बदलेगा।
- ''हम बदलेंगे-युग बदलेगा'' ''हम सुधरेंगे-युग सुधरेगा'' इस तथ्य पर हमारा परिपूर्ण विश्वास है। □

युग निर्माण योजना द्वारा प्रकाशित जीवनोपयोगी पुस्तकों की सूची युग निर्माण योजना, मथुरा-२८१००३ के पते पर पत्र डालकर निःशुल्क मँगा लें।

मुद्रक : युग निर्माण योजना प्रेस, मथुरा.

724

मिशन की पत्रिकाएँ

(१) अखण्ड ज्योति (मासिक)

(धर्म एवं अध्यात्म के तत्त्वज्ञान का विज्ञान एवं तर्क-तथ्य-प्रमाण की कसौटी पर खरा चिंतन)

वार्षिक शुल्क-96.00, आजीवन शुल्क-1800.00 रुपया।

अखण्ड ज्योति अंग्रेजी (द्वि-मासिक)

वार्षिक शुल्क-60.00 रुपया

पता : अखण्ड ज्योति संस्थान, घीयामण्डी, मथुरा-281003

फोन : (0565) 2403940

(२) युग निर्माण योजना (मासिक)

(व्यक्ति, परिवार, समाज निर्माण एवं सात आंदोलनों की मार्गदर्शक पत्रिका)

वार्षिक शुल्क-48.00, आजीवन शुल्क-900.00 रुपया।

युग शक्ति गायत्री (गुजराती मासिक)

(गायत्री महाविज्ञान, धर्म, अध्यात्म एवं युगानुकूल विचार परिवर्तन का मार्गदर्शन)

वार्षिक शुल्क-75.00, आजीवन शुल्क-1500.00 रुपया।

पता : युग निर्माण योजना, गायत्री तपोभूमि, मथुरा-281003

फोन : (0565) 2530128, 2530399

फैक्स : (0565) 2530200

(३) प्रज्ञा अभियान (पाक्षिक)

(युग निर्माण मिशन के क्रियाकलापों एवं मार्गदर्शन का समाचार-पत्र)

वार्षिक शुल्क-24.00 रुपया।

पाक्षिक वीडियो पत्रिका : युग प्रवाह

(युग निर्माण मिशन के प्रमुख क्रियाकलापों की दृश्य-श्रव्य जानकारी)

वार्षिक शुल्क-1500.00 रुपया।

पता : शांतिकुञ्ज, हरिद्वार (उत्तराखंड) फोन : 01334-260602